श्रीचारित्रस्मारक ग्रंथमाला पु० नं० १०

श्वेताम्बर-दिगम्बर ।

(समन्वय)

भाग. १–२

कर्त्ता—

मुनि दर्शनविजय.

प्रकाशक—

शा. मफतलाल माणेकचंद.

वी० सं० २४६९	मूल्यं	क० धा० सं० २५
वि० सं० २०००	२—४—०	ई० सं० १९४३

प्राप्ति-स्थान.
१ शा. मफतलाल माणेकचंद.
पत्ता—धोरडी बजार,
मु० वीरमगाम. (गुजरात)
२ पं. कांतिलाल दीपचंद देशाई.
पत्ता—पटेलका माढ, मादलपुरा
पो. एलीसब्रीज,
मु. अमदावाद. (गुजरात)

मुद्रक :—
A भाग १ ला
राजमलजी लोढा
भारत प्रीन्टींग प्रेस. अजमेर
*
B भाग २ रा
हीरालाल देवचंद शाह.
सारदा मुद्रणालय, सेन्ट्रल टॅाकीस के पास, पानकोर नाका-अमदावाद.

નાગજીભુદરની પોળના ઉપાશ્રયના જ્ઞાનખાતાની રકમમાંથી રૂા. ૩૬૯–૮–૦ ની મદદ આ પુસ્તકના બીજા ભાગના ખર્ચ પેટે મળેલ છે.

પ્રકાશક.

इस ग्रन्थके पूर्व ग्राहक

प्रति	नाम	स्थान
१००)	श्रीमती गोरटबहिन मारफत श्रीमान् शाह मनुभाई सलकचंद.	अहमदाबाद।
२५)	सेठ हमीरमलजी गोलेच्छा द्वारा,	जैन संघ, जयपुर।
११)	श्रीमती सेठाणी सरूपबाई द्वारा,	श्राविकागण, जयपुर।

प्राक् कथन

विक्रम सं. १९९५ के वैशाख–ज्येष्ठ महिनेमें हम देहलीमें अवस्थित थे। उस समय एक रोज एक बन्द लिफाफा मेरे पर आया। उसमें एक पत्र था, जिसे स्थानकमार्गी सम्प्रदायके माननीय प्र० व० पं० चौथमलजीस्वामी के साथवाले मुनि सुखमुनिजीने भेजवाया था। वह पत्र निम्न प्रकार है—

"बडौत (मेरठ) ता. ३–६–३८ ई.

"श्रीमान् दर्शनविजयजी महाराज !

"सादर वन्दन।

"निवेदन है कि + + + + + उस 'कल्पित कथा समीक्षा' नामक पुस्तक में जैनागमों के विरुद्ध जो जो बातें लिखी गई हैं उनका प्रयुत्तर क्या आपने दिया है ! यदि नहीं तो क्यों ? क्या उन बातों का प्रयुत्तर देनेका साहस नहीं है ? यदि है, तो कमर कस कर तैयार हो जाइयेगा। और आगमविरुद्ध तथा श्वेताम्बर समाज के विरुद्ध जो जो बातें उन्होंने लिखी हैं उनका मुंहतोड उत्तर अवश्य दीजिएगा। तभी पंडिताई सार्थक होगी। ऐसा महाराज श्री सुखमुनिजीने फरमाया है। पत्रोत्तर नीचे के पते पर दीजिएगा।

"लाला न्यायतसिंहजी मोतीराम जैन.
मंडी आनंदगंज बडौत (मेरठ)

+ + + + +

भवदीय, दीपचन्द सुराना"

उन मुनिओकी इच्छा थी कि मैं कुछ लिखुं। अतः मैंने, कुछ लिखुं उसके पहिले, दिगम्बरीय शास्त्रोका विशेष अध्ययन किया। और इस विशेष अध्ययनके फल स्वरूप, खण्डनमण्डन के रूपमें नहीं किन्तु पारस-

प्राप्ति-स्थान.

१ शा. मफतलाल माणेकचंद.
पत्ता-बोरडी बजार,
मु० वीरमगाम. (गुजरात)

२ पं. कांतिलाल दीपचंद देशाई.
पत्ता-पटेलका माद, मादलपुरा
पो. एलीसब्रीज,
मु. अमदावाद. (गुजरात)

मुद्रक :—

A भाग १ ला
राजमलजी लोढा
भारत प्रीन्टींग प्रेस. अजमेर

B भाग २ रा
हीरालाल देवचंद शाह.
शारदा मुद्रणालय, सेन्ट्रल टॉकीज
के पास, पानकोर नाका-अमदावाद.

નાગજીભુદરની પોળના ઉપાશ્રયના જ્ઞાનખાતાની રકમમાંથી રૂા. ૩૯૯-૮-૦ ની મદદ આ પુસ્તકના બીજા ભાગના ખર્ચ પેટે મળેલ છે.

પ્રકાશક.

इस ग्रन्थके पूर्व ग्राहक

प्रति	नाम	स्थान
१००)	श्रीमती गंगाबहिन मारफत श्रीमान् शाह मणुभाई मगनचंद.	अहमदाबाद।
२५)	सेठ हमीरमलजी गोलेच्छा द्वारा,	जैन संघ, जयपुर।
११)	श्रीमती सेठानी सरूपबाई द्वारा,	मोतिकागंज, जयपुर।

प्राक् कथन

विक्रम सं. १९९५ के वैशाख–ज्येष्ठ महिनेमें हम देहलीमें अवस्थित थे। उस समय एक रोज एक बन्द लिफाफा मेरे पर आया। उसमें एक पत्र था, जिसे स्थानकमार्गी सम्प्रदायके माननीय प्र० व० पं० चौथमलजीस्वामी के साथवाले मुनि सुखमुनिजीने भेजवाया था। वह पत्र निम्न प्रकार है—

"बडौत (मेरठ) ता. ३–६–३८ ई.

"श्रीमान् दर्शनविजयजी महाराज !

"सादर वन्दन।

"निवेदन है कि + + + + + + उस 'कल्पित कथा समीक्षा' नामक पुस्तक में जैनागमों के विरुद्ध जो जो बातें लिखी गई हैं उनका प्रत्युत्तर क्या आपने दिया है ! यदि नहीं तो क्यों ? क्या उन बातों का प्रत्युत्तर देनेका साहस नहीं है ? यदि है, तो कमर कस कर तैयार हो जाइयेगा। और आगमविरुद्ध तथा श्वेताम्बर समाज के विरुद्ध जो जो बातें उन्होंने लिखी हैं उनका मुंहतोड उत्तर अवश्य दीजिएगा। तभी पंडिताई सार्थक होगी। ऐसा महाराज श्री सुखमुनिजीने फरमाया है। पत्रोत्तर नीचे के पते पर दीजिएगा।

"लाला न्यायतसिंहजी मोतीराम जैन.
मंडी आनंदगंज बडौत (मेरठ)

+ + + + +

भवदीय, दीपचन्द सुराना"

उन मुनिओंकी इच्छा थी कि मैं कुछ लिखुं। अतः मैंने, कुछ लिखुं उसके पहिले, दिगम्बरीय शास्त्रोंका विशेष अध्ययन किया। और इस विशेष अध्ययनके फल स्वरूप, खण्डनमण्डन के रूपमें नहीं किन्तु पारस्प-

प्राप्ति-स्थान.
१ शा. मफतलाल माणेकचंद.
पत्ता—बोरडी बजार,
मु० वीरमगाम. (गुजरात)
२ पं. कांतिलाल दीपचंद देशाई.
पत्ता—पटेलका माढ, मादलपुरा
पो. एलीसब्रीज,
मु. अमदावाद. (गुजरात)

मुद्रक :—
A भाग १ ला
राजमलजी लोढा
भारत प्रीन्टींग प्रेस. अजमेर
*
B भाग २ रा
हीरालाल देवचंद शाह.
शारदा मुद्रणालय, सेन्ट्रल टॅकीझ
के पास, पानकोर नाका—अमदावाद.

નાગજીભુદરની પોળના ઉપાશ્રયના જ્ઞાનખાતાની રકમમાંથી રૂ. ૩૬૯—૮—૦ ની મદદ આ પુસ્તકના બીજા ભાગના ખર્ચ પેટે મળેલ છે.

પ્રકાશક.

इस ग्रन्थके पूर्व ग्राहक

प्रति	नाम	स्थान
१००)	श्रीमती पोपटबहिन मारफत श्रीमान् शाह सदुभाई तलकचंद.	अहमदावाद।
२५)	सेठ हमीरमलजी गोलेच्छा द्वारा,	जैन संघ, जयपुर।
१२)	श्रीमती सेठाणी सक्करबाई द्वारा,	श्राविकासंघ, जयपुर।

प्राक् कथन

विक्रम सं. १९९५ के वैशाख–ज्येष्ठ महिनेमें हम देहलीमें अवस्थित थे। उस समय एक रोज एक बन्द लिफाफा मेरे पर आया। उसमें एक पत्र था, जिसे स्थानकमार्गी सम्प्रदायके माननीय प्र० व० पं० चौथमलजीस्वामी के साथवाले मुनि सुखमुनिजीने भेजवाया था। वह पत्र निम्न प्रकार है—

"बडौत (मेरठ) ता. ३–६–३८ इ.

"श्रीमान् दर्शनविजयजी महाराज !

"सादर वन्दन।

"निवेदन है कि + + + + + उस 'कल्पित कथा समीक्षा' नामक पुस्तक में जैनागमो के विरुद्ध जो जो बातें लिखी गई हैं उनका प्रत्युत्तर क्या आपने दिया है ! यदि नहीं तो क्यों ! क्या उन बातों का प्रत्युत्तर देनेका साहस नहीं है ! यदि है, तो कमर कस कर तैयार हो जाइयेगा। और आगमविरुद्ध तथा श्वेताम्बर समाज के विरुद्ध जो जो बातें उन्होंने लिखी हैं उनका मुंहतोड उत्तर अवश्य दीजिएगा। तभी पंडिताई सार्थक होगी। ऐसा महाराज श्री सुखमुनिजीने फरमाया है। पत्रोत्तर नीचे के पते पर दीजिएगा।

"लाला न्यायतसिंहजी मोतीराम जैन.
मंडी आनंदगंज बडौत (मेरठ)

\+ + + + +

भवदीय, दीपचन्द सुराना"

उन मुनिओंकी इच्छा थी कि मैं कुछ लिखुं। अतः मैंने, कुछ लिखुं उसके पहिले, दिगम्बरीय शास्त्रोंका विशेष अध्ययन किया। और इस विशेष अध्ययनके फल स्वरूप, खण्डनमण्डन के रूपमें नहीं किन्तु पारस्प-

रिक समन्वयके रूपमें, यह 'श्वेताम्बर–दिगम्बर' ग्रन्थ तैयार हुआ, जिसका प्रथम–द्वितीय भाग आज श्रीसंघके करकमलमें समर्पित करता हूं। और अवशिष्ट ग्रन्थ तृतीय–चतुर्थ भाग के रूप में यथाशक्य शीघ्र प्रकाशित कराने की उम्मीद रखता हूं।

हिन्दी मेरी मातृ-भाषा नहीं है अतः इस ग्रन्थ में तद्विषयक गलतियोंका होना स्वाभाविक है। आशा है सुज्ञ पाठक उन्हें सुधार कर पढ़ेंगे।

और अनुपयोग या दृष्टिदोषसे इस ग्रन्थ में कुछ अनुचित लिखा गया हो तो उसके लिये मैं "मिच्छामि दुक्कडं" देता हूं।

वि. सं. २०००, अ. शु. १
ता. ८-७-४३ ई० गुरु
अहमदाबाद.

लेखक —
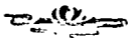
श्वेताम्बर–दिगम्बर

भाग पहिला की अनुक्रमणिका

नाम अधिकार

विश्वव्यापि धर्म १
आजीवक से उत्पत्ति २
कुछकुछ प्रमाण ४

मुनि–उपधि

परिग्रहण लक्षण ८
नग्नता १०
(पैवल-त्रिपीटक)
निर्ग्रन्थ (४२) १३
अचेल परिषद १६
जिनकल्प १७
उपधि त्याग १९
मोरपीच्छ आदि २२
पाँच जातिके वस्त्र २३
तीर्थं० नग्नता ही... २५
जितेन्द्रियता २८
आचेलक्य-कल्प २९
सामायिकमें वस्त्र ३१
(अतिथि संविभाग)
गुणस्थानमें वस्त्र ३३
केवलज्ञानमें वस्त्र ३५
उपधिके दि० पाठ ३७
ऊन-पींछे ४४
पात्र ४४
(रात्रिभोजन आदि)
दंड ४७
उपधि-उपाधि ४८
उपधि से लाभ ४८
द्रव्यलिंगके खिलाफ ५१

मुनि–आचार

स्कंदक सत्कार ५६
गणधर-घोड़ा ५६
गोचरी-भ्रमण ५६
अजैन से आहार ५७
(भ० शीतलनाथ)
शूद्रसे गौचरी ५७
शूद्रका पानी ५८
घड़े घड़े आहार ५८
(एकासन-आदि)
प्रत्याख्यान आव० ५९
एक दफे आहार ५९
(तप-परिभाषा)
मांस (अष्ट मूल गुण) ६०
मद्य-मांस ६२
(मयूरपीच्छ-चर्चा)
रात का पानी ६४
काम भोग ६४
उत्सर्ग-अपवाद ६७
कृत्रिम-जिनवाणी ७०
(विष्णुकुमार मुनि)
(धर्मद्वेषी को दण्ड)
धर्मलाभ-धर्मवृद्धि ७३

मोक्ष–योग्य

गृहस्थ ७५
(भरतचक्रवर्ती–पाठ)
(भावलिंग-प्रधानता)
आभूषण ७९
(पाण्डव-सामरण)

वेदनीय-भूख १४
उपचार-साक्षात १४
सताना १५
संक्रमण १५
आहार-कारण १६
चार आहार १६
(छद्म० योगधारण)
(उपवासमें पानी)
आहार के दि० प्रमाण १८
रोग, निहार २४
औदारिक-शरीर २५
सात धातुएँ-पाठ २६
(वज्रऋषभनाराच)
अग्निसंस्कार २९
तीर्थ-दाढाएँ ३०
उपसर्ग वध ३१
विनय ३१
(प्रदक्षिणा, आहारदान, गमन, सर्पनिवेदन, वंदन, नृत्य)
नाच (कपीश०) ३२
अनासक्ति (कूर्मापुत्र) ३२
मुद्रा-आसन ३३
(नेत्र-रंग आदि)
केवली वस्त्र ३५
भूमि-विहार ३५
(स्वर्ण-वस्त्र) ३६
वाणी-उपदेश ३६
(निरक्षरी, गणधर, मागधदेव, अतिशय, दशम द्वार, प्रश्नोत्तर, अपौरुषेय, सर्वांग)
साक्षरीवाणीप्रमाण ४०
मन ४३
द्रव्यमन प्रमाण ४४
सिद्ध अवगाहना ४६
फिर मना क्यों! ४८

अतिशय

जन्म से १० ४९
(निहार, दाढ़ी मूछ)
केवल से १० ५१
(जिन-केवली, भेद)
भूमि विहार ५१
बैठना ५२
गगन गमन ५२
(कमल संख्या)
भूविहार दि० प्रमाण ५३
कवलाहार-प्रमाण ५३
देवकृत १४ ५४
(आठ प्रातिहार्य)
(विषमता-व्यत्यय)
चोतीस अतिशय ५५
(केवल-प्रमाण)

तीर्थंकर

नाभिराजा-रानी ५७
(युगलिक व्यवस्था)
ऋषभदेव-पत्नी ५९
(१०० पुत्र २ पुत्री)
भरतसुन्दरी ५९
मातापिता निहार ६०
स्वप्न ६१
(जिनेन्द्र आगति)
(तीन कल्याणक)
(स्वप्न फल)
ऋषभदेव पुत्र ६३

धार्मिक दान ६३
ऋषभदेव-वैराग्य ६४
ऋषभदेव-भोजन ६४
देवदूष्य- ६४
ऋषभदेव लोच ६५
अनार्य विहार ६५
नग्नता ६६
मरुदेवा-मुक्ति ६७
(धनुष, गजासन)
कुमार-तीर्थंकर ६७
(पुराणों का मतभेद) ६९
ब्याह के दि० पाठ ७१
स्त्री तीर्थंकरी ७४
मुनि सुव्रत-गणधर ७४
(मल्लीनाथ-वर्ण)
(नेमि दीक्षाकाल)
वीर-२७ भव ७४
गर्भापहार ७६
वीर-अभिग्रह ७६
मेरु-कंपन ७७
वीर-लेखशाला ७८
वीर-विवाह ७८
(जमाली-निन्हव)
देवदुष्य-दान ७९
वीर-छींक ७९
वीर-उपसर्ग ८०
(आगमशैली, प्राणीवाचक वनस्पति, प्राणी जैसे नाम, वीर अहिंसा रेवती परिचय, रोग स्वरूप, मूल पाठ, कपोत-मज्जार-कुक्कुड-मंसए के अर्थ)
वीर निर्वाण पर्व १०७
दीवाली-तिथि १०७
२०-स्थानक १०७
कल्याणक-३, २ (६२) १०८
(१७० तीर्थंकर)

आश्चर्य

१ ओर स्थानमें जन्म १०९
२ पुत्री की प्राप्ति ११०
३ अवधि प्रकाशन ११०
४ जिन-उपसर्ग १११
५ ओर स्थान में मोक्ष १११
६ चक्री-मानभंग ११२
७ वासुदेव-मृत्यु ११२
८ शलाका '५९ ११३
९ नारद रुद्र ११४
१० कल्कि-उपकल्कि ११४
विच्छेद ११५
(आ० कुंदकुंद)
ब्राह्मण कुल ११८
बडी-आयू ११९
(भद्र० चंद्र) (आ०धरसेन)
१ अट्ठसयसिद्ध १२०
२ असंयत पूजा १२२
३ हरिवंश १२२
४ स्त्री तीर्थ १२४
५ अपरकंकागमन १२८
६ गर्भापहार (गर्भ विज्ञान) १२८
७ चमरोत्पात १३४
८ अभाविता परिषद् १३५
९ उपसर्ग १३७
१० सूर्य-चंद्रावतरण १३७
(मृगावती)

आधार-ग्रन्थ

जैन ग्रंथ

आचारांग
सूत्रकृतांग
ठाणांग
भगवतीसूत्र
उपासकदशांग
उववाई सूत्र
जीवाभिगम
पन्नवणा
अनुयोगद्वार
पयन्न
आवश्यक निर्युक्ति
विशेषावश्यक भाष्य
उत्तराध्ययन
दशवैकालिक
बृहद् कल्प भाष्य
तत्वार्थ सूत्र
,, भाष्य-टीका
,, भाषा-
ललित विस्तरा
षड्दर्शन समु०
बृहत्क्षेत्रसमास
पंच वस्तु
कल्याण मन्दिर
भक्तामर
प्रवचन सारोद्धार
त्रिषष्ठी० चरित्र
परिशिष्ट-पर्व
योग शास्त्र
अभिधान चिंतामणि
,, राजेन्द्र

कर्मग्रन्थ
प्रबंध चिंतामणि
लोक प्रकाश
तपगच्छ पट्टावली
हीमवंत स्थवीरावली
काल संबंधी विचारणा
सम्राट खारवेल लेख

अखबार

जैन
जैन धर्म प्रकाश
जैन सत्य प्रकाश

दिगम्बर-ग्रन्थ

अंगपन्नत्ति
अनगार धर्मामृत
आदिपुराण
आराधना (मूल)
,, विजयोदया
उत्तरपुराण
कथाकोष
बृहद् कथाकोष
पुण्याश्रव कथाकोष
आराधना कथाकोष
कल्याण आराधना
कार्तिकेयानुप्रेक्षा
कुंदकुंद चरित्र
कुंदकुंद गुटका
केवलिभुक्ति प्रकरण
गोम्मट सार
गौतम चरित्र
चारित्रसार

चर्चा सागर
चर्चा० समीक्षा
छेदपिंडम्
छेदशास्त्र
जैनसिद्धांत संग्रह
जैनधर्मकी उदारता
जैनाचार्योंका शासन
जंबूचरित्र
तत्वार्थाधिगम
, सर्वार्थसिद्धि
,, राजवार्तिक
,, श्लोकवार्तिक
,, सार
,, श्रुतसागरी
,, भाषा-टीका
तिलोयपन्नत्ति
तिलोय सार
त्रिवर्णाचार-३
दर्शन सार
दशभक्त्यादि
दि० पट्टावली
देवशास्त्र गुरुपूजा
द्रव्यसंग्रह
धर्म परीक्षा
नंदीश्वर भक्ति
नंदीश्वर० पूजा
निर्वाण कांड
निर्वाण भक्ति
नीतिसार
नीति वाक्यामृत
प्रवचन सार

प्रवचन चरणानुयोग
-चूलिका
प्रवचन सारोद्धार
पंचास्तिकाय
परमात्म प्रकाश
पद्म चरित्र
पद्मपुराण समीक्षा
पार्श्वपुराण
पुरुषार्थ सिद्धि
प्रायश्चित चूलिका
" संग्रह
बनारसी विलास
बाईस परिषह
ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति
भद्रबाहु संहिता
भ्रम निवारण
भाव संग्रह
मनोमति खंडन
महा पुराण
महावीर और बुद्ध
मुनिवंशाभ्युदय
मूलाचार
मोक्षमार्ग प्रकाशक
यशस्तिलक
रत्नमाला
राजावली
लब्धि सार
लाटी संहिता
वरांग चरित्र
वर्धमान पुराण
विद्वद् जन बोधक
शिलालेख संग्रह

विरंचीपुर सं०
श्रवणबेल्गोल सं०
श्रावकाचार
रत्नकरंड "
धर्मसंग्रह "
प्रश्नोत्तर "
आशाधरीय "
मेधाविकृत "
सकलकीर्ति० "
अमृतचन्द्र "
श्रुतसागरी टीकार्थ
श्रुतावतार
शूद्र मुक्ति
षट् खंडागम
" धवला
" जयधवला
" महाधवल
षट् प्राभृत
दर्शन "
चारित्र "
लींग "
बोध "
मोक्ष "
भाव "
सूत्र "
समयसार (प्राभृत)
समयसार प्रस्तावना
सम्यसमीक्षा
सम्यक्त्व कौमुदी
समाधि तंत्र
समाधि भक्ति
सागार धर्मामृत

सिद्धांतसार प्रदीप
सुअखंधो
सुदर्शन-चरित्र
सूर्य प्रकाश
सोमा रानी चरित्र
स्त्री मुक्ति प्रकरण
स्त्रीमुक्ति (हिंदी)
स्वामी समन्तभद्र
स्वयंभू स्तोत्र
हरिवंश पुराण
हरिवंश धत्तार्थव
हरिवंश वचनिका
ज्ञानार्णव

दि० अखबार

अनेकान्त
खंडेलवाल हितेच्छु
जीनविजय (कनडी)
जैन गजट
जैन जगत्
जैन दर्शन
जैन मित्र
जैनसिद्धांत भास्कर
वीर

बौद्ध-ग्रंथ

अवदान कल्प लता
दिव्यावदान
मज्झिम निकाय
महा सच्चक
महा सीहनाद
महा पुण्णमासी

विभीन्न-ग्रंथ

अभिधान संग्रह	वैद्यक शब्दसिंधु	मत्स्य पुराण
अभिधान निघण्टु	शब्द चिंतामणि	बैबल
अमर कोष	शब्द सागर	जीव-विज्ञान
कयदेव निघंटु	शब्द सिन्धु	कल्पित कथासमीक्षा
तामील शब्द कोष	शब्द स्तोम महानिधि	मोडर्नरीव्यु
निघंटु रत्नाकर	शालिग्राम निघंटु	एपिग्राफिका इन्डिका
भावप्रकाश निघंटु	पाणिनीय	एन् साईक्लोपीडिया
वाग्भट्ट	भागवत	ओफ रीलीजियन
	गीताजी	एन्ड एथिक्स वो०
		१ पृ०२५९

भाग १ पृष्ट १३४ के अनुसन्धानमें

स्त्रीदीक्षा–मुक्ति के पाठ.

पमत्तस्स उक्कस्संतरं उच्चदे । +++ तिण्णिअंतो मुहुत्तब्भहिय अट्ठवस्से णूण अट्ठेदालीस ४८ पुव्वकोडिओ पमत्तुक्कस्स अंतरं होदि । (पृ० ५२)

अपमत्तस्स उक्कस्संतरं उच्चदे ।

तीहिअंतो मुहुत्तेहिं अब्भहिय अट्ठवस्सेहिं ऊणाओ अट्ठेदालीस पुव्व कोडिओ उक्कस्स अंतरं । पज्जत्त मणुसिणीसु एवं चेव । णवरि पज्जत्तेसु चउवीस पुव्वकोडिओ, मणुसिणीसु अट्ठ पुव्वकोडिओत्ति वत्तव्वं (पृ० ५३)

इत्थी वेदेसु पमत्तस्स उच्चदे ।

अट्ठवस्सेहिं तीहिं अंतो मुहुत्तेहिं ऊणिया त्थीवेदट्ठिदी छदमुक्कस्संतरं। एवमपमत्तस्स वि उक्कस्संतरं भाणिदव्वं, विसेसा भावा (पृ० ९६)

(छक्खंडागमे जीवट्ठाणं–अंतराणुगमे अंतरप्ररूवणं पु० ५वाँ)

वेदाणुवादेण इत्थि वेदएसु दोसु वि अद्धासु (अपूर्व–अनिवृत्तिकरणेसु) उवसमा पवेसेण तुल्ला थोवा (१० होनेसे) ॥ सूत्र–१४४ ॥ (पृ० ३००)

खवा संखेज्जगुणा (२० होनेसे) ॥सूत्र–१४५॥

अप्पमत्त संजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥१४६॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥१४७॥

संजदा संजदा असंखेज्जगुणा ॥१४८॥

पमत्त अपमत्त संजदट्ठाणे सव्वथोवा खइय सम्मादिट्ठी ॥१५६॥ (पृ० ३०१)

उवसम सम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५७ ॥

वेदग सम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५८ ॥

एवं दोसु अद्धासु ॥ १५९ ॥

इसीप्रकार अपूर्व करण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्री–वेदियों का अल्प बहुत्व है ॥ १५९ ॥ (पृ० ३०३)

सव्व थोवा उवसमा ॥१६०॥ (प्रवेशसे नहीं, संचयसे (पृ० ३०४)

खवा संखेज्जगुणा ॥१६१॥

(षट् खंडागम–जीवस्थान–अल्पबहुत्वानुगम–श्री रेठी [illegible] प्रकाशन टीका मुद्रित पुस्तक पाँचवा)

अतएव दिगम्बर विश्वव्यापी होने के लायक है।

जैन—कसोटी के कसे बिना मनमानी रीति से किसी को सच्चा या झूठा कहदेना यह केवल ज्ञान की अराजकता है। श्वेताम्बर और दिगम्बर के वास्तविक सत्यों का एकीकरण करने से ही शुद्ध जैन धर्म का स्वरूप मालूम होता है। और ऐसी अनेकान्त दृष्टि वाला जैनधर्म ही विश्वव्यापी बनने के योग्य है।

दिगम्बर—क्या दिगम्बर मान्यतायें हैं, वे कल्पना मात्र ही हैं ? आप स प्रमाण खुलासा करें।

जैन—महानुभाव! क्रमशः प्रश्न करो! पूज्य गुरुदेव की कृपा से मैं उत्तर देता हूं आपको स्वयं निर्णय हो जायगा कि जो जो मान्यताएं प्रचलित हैं वे एकान्तिक हैं ? जिनवाणी से विरुद्ध हैं ? सर्वथा शून्य हैं ? पराभिन्न हैं ? अपने २ शास्त्र से भी विरुद्ध हैं ? कि ठीक हैं ?

दिगम्बर-यदि ऐसा है तो श्वेताम्बर दिगम्बर को एक बनाने की जो कोशिश होरही है उसमें बड़ी सफलता मिलेगी। अस्तु। पहिले तो यह तय हो जाना चाहिये कि श्वेताम्बर और दिगम्बर के वास्तव में एक है कि भिन्न है ?

जैन—दोनों सम्प्रदायों की जड़ तो एक ही है। परन्तु दोनों में कुछ २ ही मान्यता भेद हैं। जो इस प्रकार है।

भगवान महावीर के शासनकाल में चार तो मुनि संघ आकर सम्मिलित हुए थे।

१ भगवान पार्श्वनाथ का मुनि संघ, जो चातुर्याम धर्म वाला सप्रतिक्रमण धर्म वाला था। विविध रंग वाले वस्त्रों का धारक था। इस संघ के आचार्य केशीकुमार व स्थविर गणधर इन्द्रभूति गौतम-

किया। श्री उत्तराध्ययन सूत्र में इस मुनि संघ का विचारभेद पाया जाता है। और बौद्ध त्रिपटकों में भी इस संघ का 'चाउज्जामो धम्मो" इत्यादि शब्दों से उल्लेख मिलता है। इस संघ की मुनि परम्परा आज भी उपकेश गच्छ कवलागच्छ इत्यादि नामों में प्रख्यात है।

७. मंखलीपुत्र गोशाल का मुनि संघ, यह भगवान महावीर के छद्मस्थ अवस्था के एक शिष्य का संघ है जो प्रधानतया नग्न ही रहा करता था, इसका आचार्य लोहार्य या अन्य कोई था जिन्होंने अपने गुरु की अन्तिम आज्ञा को शिरोधार्य बनाकर अपने गुरुके भी गुरु भगवान महावीर स्वामी के संघ में प्रवेश किया।

श्री सूत्र कृतांग और भगवती सूत्र में इस मुनि संघ का विस्तृत वर्णन मिलता है।

दिव्यावदान (१२।१४२, १४३) अवदान कल्पलता (पल्लव १०।४११) मज्झिम निकाय के चूलसारोपम सुत्तंत १।३। १० सम्दक २।३।९ (पृष्ट ३०१, ३०४) महासुकुलदायी सुत्तंत २।३।७। महावग्ग १।४।९ (पृष्ट १४४) महासीहनाद १२।२।२ (पत्र ४८) वगैरह बौद्ध शास्त्रों में भी इस मत के विभिन्न उल्लेख हैं।

एनसाईक्लो पीडिया ओफ रीलिजियन एन्ड एथिक्स वॉल्यूम १ पृ० २५९ में बड़े लेख द्वारा इस मुनि संघ पर अच्छा प्रकाश डाला गया है उसके लेखक ए० एफ० आर होअर्नेल साहब वहीं छाल वीन के बाद बताते हैं कि उसके मत में १ शीतोदक २ बीजकाय ३ आधाकर्म और ४ स्त्री सेवन की मना नहीं है (सूत्र कृतांग) ये अचेलक हैं मुक्ता चार हैं हस्तावलेपन (कर पात्र) हैं। एकागारीक (एक घर से आधाकर्मी भिक्षा लेने वाले) हैं (मज्झिमनिकाय पृ० १४४ व ४८) यह मत पुरुषार्थ, पराक्रम का निषेध करता है और नीयति को ही प्रधान मानता है।

(मज्झिमनिकाय पृ० १०१ । १०४ उपासकदशांग) वगैरह वगैरह ।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस मुनि संघ ने उपरोक्त बातों में सुधार कर और भ० महावीर स्वामीकी आज्ञाको अपना कर उनके संघ में प्रवेश कीया था परन्तु यह संघ अनेकांत दृष्टि से अचेलक रहने में भी स्वतंत्र था ।

इस संघ की मुनि परम्परा आज भी आजीवक, त्रैराशिक और दिगम्बर इत्यादि नाम से विख्यात है ।

(हलायुधकृत अभिधान रत्नमाला, तिरुवीपुर का शिलालेख, तामिल शब्द कोष, सूत्रकृतांगटीका)

इस प्रकार ये दोनों संघ श्रमण संघ में सम्मिलित हो गये । उस समय यह श्रमण संघ अविभक्त था । उसमें न वस्त्र का एकांत आग्रह था ! न नग्नता का ! न पुरुष जाति से पक्षपात था ! न स्त्री जाति से ! इसी प्रकार ६०० वर्ष तक अविभक्तता जारी रही । बाद में किसी एक मुहूर्तकाल में दिगम्बरत्व को प्रधानता देकर, आजीवक संघ का कोई दल अलग होगया, और उसने आजीवक मत की शीतोदक ग्रहण वगैरह जो मान्यतायें थीं उनमें से कई को पुनः स्वीकार कर लिया । इस समय उसके नायक थे आ० शिव भूति नाम भूतबली और आ० कुंद कुंद वगैरह

दिगम्बर—उपलब्ध दिगम्बर शास्त्रों में भी शीतोदक ग्रहण आदि के प्रमाण मिलते हैं ?

जैन—हां ! आपकी जानकारी के लिये थोड़े से प्रमाण देता हूँ

१ पत्ताणं फ्लोटिने गांयं, पटी पंथम्मि तादिणं ।
मुणः मंतव्व वार्णीनां, प्राणुई भत्त भुण्णेय ॥

१ देवर्षिणां* मतोषाय, स्नानाय गृहमेधिनां।

(आ० शिव कोटि कृत रत्नमाला श्लोक ६१, ६४)

(जैन दर्शन व० ४ अं ३ पृ० १११-११९ अं ४ पृ १५५-५८)

२ मुहूर्तं गालितं तोयं, प्रासुकं प्रहर द्वयम् ।
उष्णोदक महोरात्र-मतः संमूर्छितं भवेत् ॥

(रत्न माला, जैन दर्शन वर्ष ४ अं० ३ पृ ११९)

३ वृक्षपर्णोपरि पतित्वा यज्जलं यन्मुपरि पतति तस्य प्रासुक त्वा द्विराधनाष्कायिकानां जीवानां न भवति

(आ० कुन्द कुन्द कृत भाव प्राभृत गा० १११ की टीका पृ० २६१)

४ विलोडितं यत्र तत्र विक्षिप्तं वस्त्रादि गालित जलं ।

पानी के विलोडित इत्यादि चार भेद हैं। विलोडित छना हुआ पानी अचित्त है। पाषाण स्फोटित इत्यादि पानी भी विलोडित मान जाते हैं।

(दि० आ० श्रुत सागर कृत तत्वार्थ सूत्र टीका)

५ अत्यक्तात्मीय समद्वर्ण-संस्पर्शादिक संज्ञया ।
अप्रासुकमथा तप्तं, नीरं त्याज्यं व्रतान्वितैः ॥

(प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, संधी २२, श्लो० ६१)

६ नमस्वता हतं ग्राव—पटी यन्त्रादि ताडितम्
तप्तं सूर्यांशुभिर्व्याप्यां मुनयः प्रासुकं विदुः ॥ ५३ ॥
स्नानादि ॥ ५४ ॥

(पं० मेधावि पं० कुल तिलक कृत धर्मसंग्रह श्रावकाचार)

---

* दिगम्बर मत में आकाश चारण सिद्धि प्राप्त मुनि देवर्षि माने जाते हैं। (चारित्र सार पृ० २२, प्रवचनसार पृ० ३७२ जैन दर्शन व० ४ पृ० ३३१)

अथवा एक विहारी या मासोपवासादिक धारक महामुनि देवर्षि हैं। (जैन दर्शन, व० ४ पृ १५९)

१ मल १४ हैं जिनमें कन्द, मूल, बीज, फल, कण और कुण्ड (भीतर से अपक्व चावल) ये भी सब मल हैं किन्तु ये अप्रासुक नहीं हैं याने इनके सद्भाव में सचित्त निक्षिप्त, सचित्त पिहित या सचित्त मिश्र का दोष नहीं है।

(पं० आशाधर कृत अनगार धर्मामृत अ० ५ श्लो० ३९)

२ कन्दादिषट्कंत्यागार्हं, इत्यन्नाद्विभजेन्मुनिः
न शक्यते विभक्तुं चेत्, त्यज्यतां तर्हि भोजनम्।

टीका-कन्दादिषट्कं मुनि पृथक् कुर्यात् माने ये सचित्त नहीं है अतः इनको दूर करके दिगम्बर मुनि आहार करें।

(पं० आशाधर कृत अनगार धर्मामृत अ० ५ श्लो० ४१)

३ मूलाचार पिण्ड विशुद्धि अधिकार गा० ६५ की टीका में भी उपरोक्त विधान आया है

विशेष जानकारी करनी हो तो ता० १६।८।१९३६ इसी० के खंडेलवाल हितेच्छु अंक २१ में प्रकाशित ब्यावर निवासी दि० ब्र० महेन्द्रसिंह न्यायतीर्थ का "वनस्पति आदि पर जैन सिद्धान्त" शीर्षक लेख पढ़ना चाहिये।

उपर के ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है कि-दिगम्बर श्वेता० इन दोनों का उद्-गम एक ही स्थान से है परन्तु दोनों में शुरु से ही साधेक्ष भेद है जो भेद आज अनेक शाखा प्रशाखाओं से अति विस्तृत हो उठा है।

दिगम्बर—यह भेद आचार्य भद्रबाहु स्वामी के बाद हुआ है दिगम्बर विद्वानों ने इस भेदका समय वि० सं० १३६ लीखा है।
(आ० देवसेन कृत दर्शनसार, और भाव संग्रह गा० १३७. पं० नेमिचन्द्रजी कृत सूर्यप्रकाश श्लो० १४० पृ० १३९, भट्टारक इन्द्रनन्दि कृत नीतिसार

जैन—ठीक है, दिगम्बर के दूसरे भद्रबाहु स्वामी
श्वेताम्बर मतानुसार वज्रस्वामी के बाद यह भेद पड़ा है। [
समय वि० सं० १३९ है। विचार भेद होना,जोर्दन का
करना और आखिर में अलग २ हो जाना, इसमें तीन वर्ष
हो जाय यह स्वाभाविक है। इस विषय के लिये दोनों में सा
भेद नहीं है।

दिगम्बर—इस मत भेद की जड़ क्या है?

जैन—मत भेद की उत्पत्ति के लिये तो प्रसंग आ
बताया जायगा। समुचित यह मानना होगा कि वस्त्र के [
यह मत भेद खड़ा हुआ है यानी जैन मुनि वस्त्र पहिने कि न

इस वस्त्र के ही झगड़े में "जैनधर्म" यह नाम लुप्त हो
और वस्त्र के कारण ही दिगम्बर और श्वेताम्बर ये दो नाम
हुए। अम्बर के निषेध में इतना आग्रह था कि उसके लि
नाम को हटा कर दिगम्बर नाम ही अपना लिया और
अच्छा माना।

वस्त्र के निषेधकार को अपनी मान्यता की पुष्टि के लि
मोक्ष, केवली भुक्ति, द्रव्य शरीर वचन और मन के
औदारिक शरीर, परिग्रह, साक्षरी वाणी इत्यादि अनेक
का निषेध करना पड़ा। मगर प्रधान दिगम्बर आचार्य इन
निषेधों को स प्रमाण मानते नहीं हैं। जो कि आपके म
उत्तर में क्रमशः बताया जायगा।

मुनि उपधि-अधिकार

दिगम्बर—पांच महाव्रत वाले साधु परिग्रह के त्यागी होते हैं। अतः उन्हें परिग्रह नहीं रखना चाहिये वस्त्र पात्र वगैरह का त्याग करना चाहिये।

जैन—आप परिग्रह का लक्षण क्या मानते हैं?

दिगम्बर—दिगम्बर शास्त्र में परिग्रह का स्वरूप इस प्रकार है।

१ मूर्छा परिग्रहः

(आ० श्री उमास्वाति कृत तत्वार्थ सूत्र अध्याय ७ सूत्र १७)

२. ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्मम त्ति मुवदिट्ठो।

(आ० कुन्द कुन्द कृत भावप्राभृत गाथा ५०)

मूच्छादि जणण रहिदं, गेण्हदु समणोयदिवि अप्पं

(आ० कुन्द कुन्द प्रवचन सार, चरणानु योग चूलिकागाथा २२)

४. पाखंडियलिंगेसु व, गिहलिंगेसु व बहुप्पयारेसु।
कुव्वंति जे ममत्ति, तेहिं ण णादं समयसारं ॥४४३॥

टीकांश—निर्गन्थ रूप पाखंडि द्रव्य लिंगेषु कौपीन चिन्हादि गृहस्थलींगेषु बहु प्रकारेषु ये ममतां कुर्वन्ति।

याने जो किसी भी लिंग ऊपर ममत्व रखता है वह परमार्थ को जानता नहीं है।

(आ० कुन्द कुन्द कृत समय प्राभृत गा० ४४३)

५ या मूर्छानामेयं विज्ञातव्यः परिग्रहो ह्येषः।
मोहोदयादुदीर्णो, मूर्छा तु ममत्व परिणामः॥ १११।

मूर्छा लक्षण करणात्, सुघटा व्याप्तिः परिग्रहत्वस्य
सग्रन्थो' मूर्छावान्' विनापि' शेषसंगेभ्यः' ॥ ११२ ॥
हिंसा पर्यायत्वात् सिद्धा हिंसान्तरंग संगेषु ।
बहिरंगेषु तु नियतं, प्रयातु हिंसैव मूर्छात्वं ॥ ११६ ॥
(आ० अमृतचन्द्र सूरि कृत पुरुषार्थ सिद्धि उपाय वि० सं० ६६२)

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि मूर्छा यानी ममत्व ही परिग्रह है। किसी वस्तु पर ममता होने से परिग्रह विरमण व्रत में दूषण लगता है, ममता नहीं है वहाँ परिग्रह नहीं है ममत्व के कारण ही समोसरण आदि से युक्त तीर्थंकर भगवान अपरिग्रही हैं।

दिगम्बर आचार्य जिनेन्द्र की विभूतियाँ बताते हैं

१ इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र ?
धर्मोपदेशन विधौ न तथा परस्य ॥
(भक्तामर स्तोत्र श्लो० ३१ । ३०)

अशोक वृक्ष सिंहासन, चम्मर छत्र, पद्म ये सब तीर्थंकर की निकट वर्ती विभूति हैं।

२ माणिक्य हेम रजत प्रविनिर्मितेन ।
साल त्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥ २६ ॥
(कल्याण मन्दिर स्तोत्र)

३ अनीहितु स्तीर्थ कृतोपि विभूतयः जयन्ति ॥
(आ० पूज्यपाद कृत समाधितन्त्रम्)

४ जलद जलद ननु मुकुट सप्तफण
(पं० बनारसीदास कृत)
(पं० बखतावर कृत चर्चा सागर चर्चा २१८ पृ० २१५)

साँप की फण भी भगवान की निकट वर्ती विभूति है इसं

मुनि उपधि-अधिकार

दिगम्बर—पांच महाव्रत वाले साधु परिग्रह के त्यागी होते हैं। अतः उन्हें परिग्रह नहीं रखना चाहिये वस्त्र पात्र वगैरह का त्याग करना चाहिये।

जैन—आप परिग्रह का लक्षण क्या मानते हैं?

दिगम्बर—दिगम्बर शास्त्र में परिग्रह का स्वरूप इस प्रकार है।

१ मूर्छा परिग्रहः

(आ० श्री उमास्वाति कृत तत्वार्थ सूत्र अध्याय ७ सूत्र १७)

२. ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्मम त्ति मुवदिट्ठो।

(आ० कुन्द कुन्द कृत भावप्राभृत गाथा ५०)

मूच्छादि जणण रहिदं, गेण्हदु समणोयदिवि अप्पं

(आ० कुन्द कुन्द प्रवचन सार, चरणानु योग चूलिकागाथा २२)

४. पासंडियालिंगेसु व, गिहलिंगेसु व बहुप्पयारेसु।
कुव्वंति जे ममत्ति, तेहिं ण णादं समयसारं ॥४४३॥

टीकांश—निर्गन्थ रूप पासंडि द्रव्य लिंगेषु कौपीन चिन्हादि गृहस्थलिंगेषु बहु प्रकारेषु ये ममतां कुर्वन्ति।

याने जो किसी भी लिंग ऊपर ममत्व रखता है वह परमार्थ को जानता नहीं है।

(आ० कुन्द कुन्द कृत समय प्राभृत गा० ४४३)

५ या मूर्छानामेयं विज्ञातव्यः परिग्रहो ह्येषः।
मोहोदयादुदीर्णो, मूर्छा तु ममत्व परिणामः॥ १११।

मूर्छा लचण करणात्, सुघटा व्याप्तिः परिग्रहत्वस्य
सग्रन्थो' मूर्छावान्' विनापि' शेषसंगेभ्यः' ॥ ११२ ॥
हिंसा पर्यायत्वात् सिद्धा हिंसान्तरंग संगेषु ।
बहिरंगेषु तु नियतं, प्रयातु हिंसैव मूर्छात्वं ॥ ११६ ॥
(आ० अमृतचन्द्र सूरि कृत पुरुषार्थ सिद्धि उपाय वि० सं० ६६२)

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि मूर्छा यानी ममत्व ही परिग्रह है। किसी वस्तु पर ममता होने से परिग्रह विरमण व्रत में दूषण लगता है, ममता नहीं है वहाँ परिग्रह नहीं है अममत्व के कारण ही समोसरन आदि से युक्त तीर्थंकर भगवान अपरिग्रही हैं।

दिगम्बर आचार्य जिनेन्द्र की विभूतियाँ बताते हैं

१ इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशन विधौ न तथा परस्य ॥
(भक्तामर स्तोत्र श्लो० ३१ । ३०)

अशोक वृक्ष सिंहासन, चम्मर छत्र, पद्म ये सब तीर्थंकर की निकट वर्ती विभूति हैं।

२ माणिक्य हैम रजत प्रविनिर्मितेन ।
साल त्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥ २६ ॥
(कल्याण मन्दिर स्तोत्र)

३ अनीहितु स्तीर्थ कृतोपि विभूतयः जयन्ति ॥
(आ० पूज्यपाद कृत समाधितन्त्रम्)

४ जलद जलद ननु मुकुट सपतफण
(पं० बनारसीदास कृत)
(पं० आशाधर कृत चर्चा सागर चर्चा २१८ पृ० ११५)

साँप की फण भी भगवान की निकट वर्ती विभूति है इसे

मूर्छा लक्षण करणात्, सुघटा व्याप्तिः परिग्रहत्वस्य
सग्रन्थो' मूर्छावान्' विनापि' शेषसंगेभ्यः' ॥ ११२ ॥
हिंसा पर्यायत्वात् सिद्धा हिंसान्तरंग संगेषु ।
बहिरंगेषु तु नियतं, प्रयातु हिंसैव मूर्छात्वं ॥ ११६ ॥

(आ० अमृतचन्द्र सूरि कृत पुरुषार्थ सिद्धि उपाय वि० सं० ६१२)

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि मूर्छा यानी ममत्व ही परिग्रह है। किसी वस्तु पर ममता होने से परिग्रह विरमण व्रत में दूषण लगता है, ममता नहीं है वहाँ परिग्रह नहीं है अममत्व के कारण ही समोसरण आदि से युक्त तीर्थंकर भगवान अपरिग्रही हैं।

दिगम्बर आचार्य जिनेन्द्र की विभूतियाँ बताते हैं

१ इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र ?
धर्मोपदेशन विधौ न तथा परस्य ॥

(भक्तामर स्तोत्र श्लो० ३१ । ३०)

अशोक वृक्ष सिंहासन, चम्मर छत्र, पद्म ये सब तीर्थंकर की निकट वर्ती विभूति हैं।

२ माणिक्य हेम रजत प्रविनिर्मितेन ।
साल त्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥ २६ ॥

(कल्याण मन्दिर स्तोत्र)

३ अनीहितु स्तीर्थ कृतोपि विभूतयः जयन्ति ॥

(आ० पूज्यपाद कृत समाधितन्त्रम्)

४ जलद जलद ननु मुकुट सपतफण

(पं० बनारसीदास कृत)

(पं० बख्तावर कृत चर्चा सागर चर्चा २१८ पृ० २१५)

साँप की फण भी भगवान की निकट वर्ती विभूति है इन्

मुनि उपधि-अधिकार

दिगम्बर—पांच महाव्रत वाले साधु परिग्रह के त्यागी होते हैं। अतः उन्हें परिग्रह नहीं रखना चाहिये वस्त्र पात्र वगैरह का त्याग करना चाहिये।

जैन—आप परिग्रह का लक्षण क्या मानते हैं?

दिगम्बर—दिगम्बर शास्त्र में परिग्रह का स्वरूप इस प्रकार है।

१ मूर्छा परिग्रहः

(आ० श्री उमास्वाति कृत तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ७ सूत्र १७)

२. ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्मम त्ति मुवट्ठिदो ।

(आ० कुन्द कुन्द कृत भावप्राभृत गाथा ५०)

मूर्च्छादि जणण रहिदं, गेण्हदु समणोपदिवि अप्पं

(आ० कुन्द कुन्द प्रवचन सार, चरणानु योग चूलिकागाथा २१)

४. पासंडियलिंगेसु व, गिहलिंगेसु व बहुप्पयारेसु ।
कुव्वंति जे ममत्ति, तेहिं ण णादं समयसारं ॥४४३॥

टीकांश—निर्ग्रन्थ रूप पासंडि द्रव्य लिंगेषु कौपीन चिन्हादि गृहस्थलिंगेषु बहु प्रकारेषु ये ममतां कुर्वन्ति ।

याने जो किसी भी लिंग ऊपर ममत्व रखता है वह परमार्थ को जानता नहीं है।

(आ० कुन्द कुन्द कृत समय प्राभृत गा० ४४३)

५ या मूर्छानामेयं विज्ञातव्यः परिग्रहो ह्येषः ।
मोहोदयादुदीर्णो, मूर्छा तु ममत्व परिणामः॥ १११ ।

मूर्छा लक्षण करणात्, सुघटा व्याप्तिः परिग्रहत्वस्य
सग्रन्थो' मूर्छावान्' विनापि' शेषसंगेभ्यः' ॥ ११२ ॥
हिंसा पर्यायत्वात् सिद्धा हिंसान्तरंग संगेषु ।
बहिरंगेषु तु नियतं, प्रयातु हिंसैव मूर्छात्वं ॥ ११६ ॥

(आ० अमृतचन्द्र सूरि कृत पुरुषार्थ सिद्धि उपाय वि० सं० ९६२)

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि मूर्छा यानी ममत्व ही परिग्रह है। किसी वस्तु पर ममता होने से परिग्रह विरमण व्रत में दूषण लगता है, ममता नहीं है वहाँ परिग्रह नहीं है अममत्व के कारण ही समोसरण आदि से युक्त तीर्थंकर भगवान अपरिग्रही हैं।

दिगम्बर आचार्य जिनेन्द्र की विभूतियाँ बताते हैं

१ इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशन विधौ न तथा परस्य ॥

(भक्तामर स्तोत्र श्लो० ३१ । ३०)

अशोक वृक्ष सिंहासन, चम्मर छत्र, पद्म ये सब तीर्थंकर की निकट वर्ती विभूति हैं।

२ माणिक्य हेम रजत प्रविनिर्मितेन ।
साल त्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥ २६ ॥

(कल्याण मन्दिर स्तोत्र)

३ अनीहित्तु स्तीर्थ कृतोपि विभूतयः जयन्ति ॥

(आ० पूज्यपाद कृत समाधितन्त्रम्)

४ जलद जलद नतु मुकुट सपतफण

(पं० बनारसीदास कृत)

(पं० चम्पालाल कृत चर्चा सागर चर्चा २१८ पृ० ३१५)

साँप की फण भी भगवान की निकट वर्ती विभूति है इन

मूर्छा लक्षण करणात्, सुघटा व्याप्तिः परिग्रहत्वस्य
सग्रन्थो' मूर्छावान्' विनापि' शेषसंगेभ्यः' ॥ ११२ ॥
हिंसा पर्यायत्वात् सिद्धा हिंसान्तरंग संगेषु ।
बहिरंगेषु तु नियतं, प्रयातु हिंसैव मूर्छात्वं ॥ ११६ ॥
(आ० अमृतचन्द्र सूरि कृत पुरुषार्थ सिद्धि उपाय वि० सं० ११२)

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि मूर्छा यानी ममत्व ही परिग्रह है। किसी वस्तु पर ममता होने से परिग्रह विरमण व्रत में दूषण लगता है, ममता नहीं है वहाँ परिग्रह नहीं है अममत्व के कारण ही समोसरण आदि से युक्त तीर्थंकर भगवान अपरिग्रही हैं।

दिगम्बर आचार्य जिनेन्द्र की विभूतियाँ बताते हैं

१ इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशन विधौ न तथा परस्य ॥
(भक्तामर स्तोत्र श्लो० ३१ । ३७)

अशोक वृक्ष सिंहासन, चम्मर छत्र, पद्म ये सब तीर्थंकर की निकट वर्ती विभूति हैं।

२ माणिक्य हेम रजत प्रविनिर्मितेन ।
साल त्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥ २६ ॥
(कल्याण मन्दिर स्तोत्र)

३ अनीहितु स्तीर्थ कृतोपि विभूतयः जयन्ति ॥
(आ० पूज्यपाद कृत समाधितन्त्रम्)

४ जलद जलद ननु मुकुट सपतफण
(पं० बनारसीदास कृत)
(पं० आशाधर कृत चर्चा सागर चर्चा २१८ पृ० ३१५)

साँप की फण भी भगवान की निकट वर्ती विभूति है इन

मुनि उपधि-अधिकार

दिगम्बर—पांच महाव्रत वाले साधु परिग्रह के त्यागी होते हैं। अतः उन्हें परिग्रह नहीं रखना चाहिये वस्त्र पात्र वगैरह का त्याग करना चाहिये।

जैन—आप परिग्रह का लक्षण क्या मानते हैं?

दिगम्बर—दिगम्बर शास्त्र में परिग्रह का स्वरूप इस प्रकार है।

१ मूर्छा परिग्रहः

(आ० श्री उमास्वाति कृत तत्वार्थ सूत्र अध्याय ७ सूत्र १७)

२. ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्ममत्ति मुवट्ठिदो।

(आ० कुन्द कुन्द कृत भावप्राभृत गाथा ५०)

मूच्छादि जगण रहिदं, गेण्हदु ममणांयदिति अप्पं

(आ० कुन्द कुन्द प्रवचन सार, चरणानु योग चूलिकागाथा ११)

४. पासंडियलिंगेसु य, गिहलिंगेसु य बहुप्पयारेसु।

कुव्वंति जे ममत्तिं, तेहिं ण णादं समयसारं ॥४४३॥

टीकांश—निर्ग्रन्थ रूप पासंडि द्रव्य लिंगेषु कौपीन ...ादि गृहस्थलिंगेषु बहु प्रकारेषु ये ममतां कुर्वन्ति।

...जे कोई भी लिंग ऊपर ममत्व रखता है वह परमार्थ ...नता नहीं है।

(आ० कुन्द कुन्द कृत समय प्राभृत गा० ४४३)

...या मूर्छानामेयं विज्ञातव्यः परिग्रहो ह्येषः।

...मोहोदयादुदीर्णो, मूर्छा तु ममत्व परिणाम...

मूर्छा लक्षण करणात्, सुघटा व्याप्तिः परिग्रहत्वस्य
सग्रन्थो मूर्छावान् विनापि शेषसंगेभ्यः ॥ ११२ ॥
हिंसा पर्यायत्वात् सिद्धा हिंसान्तरंग संगेषु ।
बहिरंगेषु तु नियतं, प्रयातु हिंसैव मूर्छात्वं ॥ ११६ ॥
(आ० अमृतचन्द्र सूरि कृत पुरुषार्थ सिद्धि उपाय वि० सं० ९६२)

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि मूर्छा यानी ममत्व ही परिग्रह है। किसी वस्तु पर ममता होने से परिग्रह विरमण व्रत में दूषण लगता है, ममता नहीं है वहाँ परिग्रह नहीं है अममत्व के कारण ही समोसरन आदि से युक्त तीर्थंकर भगवान अपरिग्रही हैं।

दिगम्बर आचार्य जिनेन्द्र की विभूतियाँ बताते हैं

१ इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशन विधौ न तथा परस्य ॥
(भक्तामर स्तोत्र श्लो० ३१ । ३७)

अशोक वृक्ष सिंहासन, चम्मर छत्र, पद्म ये सब तीर्थंकर की निकट वर्ती विभूति हैं।

२ माणिक्य हेम रजत प्रविनिर्मितेन ।
साल त्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥ २६ ॥
(कल्याण मन्दिर स्तोत्र)

३ अनीहितु स्तीर्थ कृतोपि विभूतयः जयन्ति ॥
(आ० पूज्यपाद कृत समाधितन्त्रम्)

४ जलद जलद ननु मुकुट सपतफण
(पं० बनारसीदास कृत)
(पं० चम्पालाल कृत चर्चा सागर चर्चा १९८ पृ० ११५)

साँप की फण भी भगवान की निकट वर्ती विभूति है इस

विभूतियों के होने पर भी अममत्व के कारण वे अपरिग्रही हैं परिग्रह से मुक्त हैं।

सारांश यह यह है कि दिगम्बराचार्य मूर्च्छा को ही परिग्रह मानते हैं।

जैन—तब तो जैन साधु वस्त्रादि उपाधि को रखते हैं उसमें भी अममत्व होने से परिग्रह दोष नहीं है।

दिगम्बर—तीर्थंकर भगवान तो नग्न ही होते हैं मगर अतिशय से वे अनग्न से दीख पड़ते हैं।

जैन—तीर्थंकर भगवान के ३४ अतिशयों में ऐसा कोई भी अतिशय नहीं है जो नग्नता को छिपावे, वास्तव में तीर्थंकर भगवान सवस्त्र ही होते हैं बाद में किसी का वस्त्र गिर जाय तो अनग्न ही होते हैं। इस प्रकार तीर्थंकरो में नग्नता या अनग्नता का कोई एकान्त नियम नहीं है।

बौद्ध धर्म के त्रिपिटक शास्त्रों में भ० पार्श्वनाथ के अनुयायियों के चातुर्याम धर्मपालन और [illegible] है [illegible] भगवान [illegible] और [illegible] नग्न नहीं था। मथुरा के कं[illegible] टीला [illegible] दो हजार वर्ष की पुरानी जिनेन्द्र प्रतिमाएँ [illegible] हैं, [illegible] दिगम्बर चिन्ह से रहित है। जिनके ऊपर श्वेताम्बर आचार्यों के नाम खुदे हुए हैं। यहीं करीब ६०० वर्ष पुरानी दिगम्बर [illegible] प्रतिमायें भी हैं जो [illegible] दिगम्बर ही हैं इससे भी स्पष्ट है कि दो हजार वर्ष पहिले "तीर्थंकर भगवान नग्न ही होते हैं" ऐसी मान्यता नहीं थी।

[illegible] सूत्र [illegible] भगवान [illegible] वर्णन [illegible] वर्णन है [illegible] तीर्थंकरों का वर्णन है।

विद्वानों का मत है कि—ईसा मसीह ने कई वर्ष पर्यन्त हिन्द में रह कर जैन बौद्ध या शैव धर्म का परिशीलन किया और बाद में यूरोप में आकर ईसाई धर्म की स्थापना की। यहां के २४ अवतारों को उन्होंने उक्त शब्दों द्वारा ईश्वरी स्थान दिया है। मगर बौद्ध धर्म में इस प्रकार २४ बौद्ध नहीं है और शैव धर्म में २४ अवतार मनुष्य रूप से नहीं है। सिर्फ जैन धर्म में ही २४ तीर्थंकर है और वे मनुष्य ही है, अतः उस आयाम में २४ बुजुर्ग के रूप में इनका ही सूचन है। इसके अलावा ईसाई धर्म में पापों की क्षमा मांगने की विधि भी जैन प्रतिक्रमण का ही शुद्ध अनुकरण है। इससे तय पाया जाता है कि—ईसा मसीह ने यहां जैन धर्म का परिशीलन किया है। यदि यह बात सच्ची है तो उस समय में २४ तीर्थंकर पोषाक में माने जाते थे। यह भी स्वीकृत करना पड़ेगा।

दिगम्बर—भगवान महावीर स्वामी के युग के जैन मुनि नग्न ही थे।

जैन—यह बात निम्नलिखित प्रमाणों से गलत है।

१—बौद्ध शास्त्रों में सूचित "चाउज्जामो धम्मो" वाले जैन साधु सवस्त्र ही थे।

२—बौद्ध आगमों में आजीविक मत की चर्चा है कि आजीवक मत में समस्त जीवों के वर्गीकरण से छै अभिजातियाँ (छै लश्या के समान विकास पायरी) मानी गई हैं जो इस प्रकार हैं।

१—कृष्णाभिजाति—क्रूर मनुष्य

२—नीलाभिजाति—भिक्षु, बौद्ध भिक्षु

३—लोहित्याभि जाति-निर्ग्रंथ साधु जो नियत तथा चोल पट्टा को पहिनते हैं माने जो वस्त्रधारी ही हैं।

विभूतियों के होने पर भी अममत्व के कारण वे अपरिग्रही हैं परिग्रह से मुक्त हैं।

सारांश यह यह है कि दिगम्बराचार्य मूर्च्छा को ही परिग्रह मानते हैं।

जैन—तब तो जैन साधु वस्त्रादि उपाधि को रखते हैं उसमें भी अममत्व होने से परिग्रह दोष नहीं है।

दिगम्बर—तीर्थंकर भगवान तो नग्न ही होते हैं मगर अतिशय से अनग्न से दीख पड़ते हैं।

जैन—तीर्थंकर भगवान के ३४ अतिशयों में ऐसा कोई भी अतिशय नहीं है जो नग्नता को छिपावे, वास्तव में तीर्थंकर भगवान सवस्त्र ही होते हैं बाद में किसी का वस्त्र गिर जाय तो अनग्न भी होते है। इस प्रकार तीर्थंकरो में नग्नता या अनग्नता का कोई एकान्त नियम नहीं है।

बौद्ध धर्म के त्रिपीटक शास्त्रों में भ० पार्श्वनाथ के अनुयायीयों को चातुर्याम धर्मपालक और सचेलक माने है यानी भगवान पार्श्वनाथ और उनकी सन्तान सवस्त्र थी नग्न नहीं थी। मथुरा के कंकाली टीला से प्राप्त दो हजार वर्ष की पुरानी जिनेन्द्र प्रतिमायें अनग्न हैं, दिगम्बर चिह्न से रहित हैं। जिनके ऊपर श्वेताम्बर आचार्यों के नाम खुदे हुए हैं। यहीं करीब १०० वर्ष पुरानी दिगम्बर जैन प्रतिमायें भी हैं जो खुल्ला खुल्ला दिगम्बर ही है इससे तो साफ है कि दो हजार वर्ष पहिले "तीर्थंकर भगवान नग्न ही होते हैं" ऐसी मान्यता नहीं थी।

[illegible]

विद्वानों का मत है कि—ईसा मसीह ने कई वर्ष पर्यन्त हिन्द में रह कर जैन बौद्ध या शैव धर्म का परिशीलन किया और बाद में यूरोप में जाकर ईसाई धर्म की स्थापना की। यहां के २४ अवतारों को उन्होंने उक्त शब्दों द्वारा ईश्वरीय स्थान दिया है। मगर बौद्ध धर्म में इस प्रकार २४ बौद्ध नहीं है और शैव धर्म में २४ अवतार मनुष्य रूप से नहीं है। सिर्फ जैन धर्म में ही २४ तीर्थंकर है और वे मनुष्य ही है, अतः उस व्याख्यान में २४ बुजुर्ग के रूप में इनका ही सूचन है। इसके अलावा ईसाई धर्म में पापों की क्षमा मांगने की विधि भी जैन प्रतिक्रमण का ही कुछ अनुकरण है। इससे तय पाया जाता है कि—ईसा मसीह ने यहां जैन धर्म का परिशीलन किया है। यदि यह बात सच्ची है तो उस समय में २४ तीर्थंकर पेपाक में माने जाते थे। यह भी स्वीकृत करना पड़ेगा।

दिगम्बर—भगवान महावीर स्वामी के युग के जैन मुनि नग्न ही थे।

जैन—यह बात निम्नलिखित प्रमाणों से गलत है।

१—बौद्ध शास्त्रों में सूचित "चाउज्जामो धम्मो" वाले जैन साधु सवस्त्र ही थे।

२—बौद्ध आगमों में आजीवक मत की चर्चा है कि आजीवक मत में समस्त जीवों के वर्गीकरण से छै अभिजातियाँ (छै लेश्या के समान विकास पायरी) मानी गई हैं जो इस प्रकार हैं।

१—कृष्णाभिजाति—क्रूर मनुष्य

२—नीलाभिजाति—भिक्षु, बौद्ध भिक्षु

३—लोहित्याभि जाति-निर्ग्रन्थ साधु जो नियत तथा चोल पट्टा को पहिनते हैं माने जो वस्त्रधारी ही हैं।

विद्वानों का मत है कि—ईसा मसीह ने कई वर्ष पर्यन्त हिन्द में रह कर जैन बौद्ध या शैव धर्म का परिशीलन किया और बाद में यूरोप में जाकर ईसाई धर्म की स्थापना की। यहां के २४ अवतारों को उन्होंने उक्त शब्दों द्वारा ईश्वरी स्थान दिया है। मगर बौद्ध धर्म में इस प्रकार २४ बौद्ध नहीं है और शैव धर्म में २४ अवतार मनुष्य रूप से नहीं है। सिर्फ जैन धर्म में ही २४ तीर्थंकर है और वे मनुष्य ही है, अतः उस बायबल में २४ बुजुर्ग के रूप में इनका ही सूचन है। इसके अलावा ईसाई धर्म में पापों की क्षमा मांगने की विधि भी जैन प्रतिक्रमण का ही कुछ अनुकरण है। इससे तय पाया जाता है कि—ईसा मसीह ने यहां जैन धर्म का परिशीलन किया है। यदि यह बात सच्ची है तो उस समय में २४ तीर्थंकर पोषाक में माने जाते थे। यह भी स्वीकृत करना पड़ेगा।

दिगम्बर—भगवान महावीर स्वामी के युग के जैन मुनि नग्न ही थे।

जैन—यह बात निम्नलिखित प्रमाणों से गलत है।

१—बौद्ध शास्त्रों में सूचित "चाउज्जामो धम्मो" वाले जैन साधु सवस्त्र ही थे।

२—बौद्ध आगमों में आजीवक मत की चर्चा है कि आजीवक मत में समस्त जीवों के वर्गीकरण से छै अभिजातियाँ (छै लश्या के समान विकास पायरी) मानी गई हैं जो इस प्रकार हैं।

१—कृष्णाभिजाति—क्रूर मनुष्य

२—नीलाभिजाति—भिक्षु, बौद्ध भिक्षु

३—लोहित्याभि जाति-निर्ग्रन्थ साधु जो नियत तथा चोल पट्टा को पहिनते हैं माने जो वस्त्रधारी ही हैं।

विभूतियों के होने पर भी अममत्व के कारण वे अपरिग्रही हैं परिग्रह से मुक्त हैं।

सारांश यह यह है कि दिगम्बराचार्य मूर्च्छा को ही परिग्रह मानते हैं।

जैन—तब तो जैन साधु वस्त्रादि उपाधि को रखते हैं उसमें भी अममत्व होने से परिग्रह दोष नहीं है।

दिगम्बर—तीर्थंकर भगवान तो नग्न ही होते हैं मगर अतिशय से अनग्न से दीख पड़ते हैं।

जैन—तीर्थंकर भगवान के ३४ अतिशयों में ऐसा कोई भी अतिशय नहीं है जो नग्नता को छिपावे, वास्तव में तीर्थंकर भगवान सवस्त्र ही होते हैं याद में किसी का वस्त्र गिर जाय तो अनग्न भी होते हैं। इस प्रकार तीर्थंकरों में नग्नता या अनग्नता का कोई एकान्त नियम नहीं है।

बौद्ध धर्म के त्रिपीटक शास्त्रों में भ० पार्श्वनाथ के अनुयायीयों को चातुर्याम धर्मवाले और सवस्त्र माने है यानी भगवान पार्श्वनाथ और उनकी सन्तान सवस्त्र थी नग्न नहीं थी। मथुरा के कंकाली टीला से प्राप्त दो हजार वर्ष की पुरानी जिनेन्द्र प्रतिमायें अनग्न हैं, दिगम्बर चिन्ह से रहित है। जिनके ऊपर श्वेताम्बर आचार्य के नाम खुदे हुए हैं। वहाँ करीब ६०० वर्ष पुरानी दिगम्बरीय प्रतिमायें भी है जो स्पष्ट्तया खुल्ला दिगम्बर ही है इससे भी स्पष्ट है कि दो हजार वर्ष पहिले "तीर्थंकर भगवान नग्न ही होते हैं" ऐसी मान्यता नहीं थी।

मकाशफ़ेते पाव ४ आयात ४ में तख्त नशीन सफेद वस्त्रवाले और सोने के ताज वाले २४ बुजुर्ग का वर्णन है संभवतः यह २४ तीर्थंकरों का वर्णन है।

विद्वानों का मत है कि—ईसा मसीह ने कई वर्ष पर्यन्त हिन्द में रह कर जैन बौद्ध या शैव धर्म का परिशीलन किया और बाद में यूरोप में जाकर इसाई धर्म की स्थापना की। यहां के २४ अवतारों को उन्होंने उक्त शब्दों द्वारा ईश्वरी स्थान दिया है। मगर बौद्ध धर्म में इस प्रकार २४ बौद्ध नहीं है और शैव धर्म में २४ अवतार मनुष्य रूप से नहीं है। सिर्फ जैन धर्म में ही २४ तीर्थंकर है और वे मनुष्य ही है, अतः उस आयात में २४ बुजुर्ग के रूप में इनका ही सूचन है। इसके अलावा इसाई धर्म में पापों की क्षमा मांगने की विधि भी जैन प्रतिक्रमण का ही कुछ अनुकरण है। इससे तय पाया जाता है कि—ईसा मसीह ने यहां जैन धर्म का परिशीलन किया है। यदि यह बात सच्ची है तो उस समय में २४ तीर्थंकर पोशाक में माने जाते थे। यह भी स्वीकृत करना पड़ेगा।

दिगम्बर—भगवान महावीर स्वामी के युग के जैन मुनि नग्न ही थे।

जैन—यह बात निम्नलिखित प्रमाणों से गलत है।

१—बौद्ध शास्त्रों में सूचित "चाउज्जामो धम्मो" वाले जैन साधु सवस्त्र ही थे।

२—बौद्ध आगमों में आजीवक मत की चर्चा है कि आजीवक मत में समस्त जीवों के वर्गीकरण से छै अभिजातियाँ (छै लेश्या के समान विकास पायरी) मानी गई हैं जो इस प्रकार हैं।

१—कृष्णाभिजाति—क्रूर मनुष्य

२—नीलाभिजाति—भिक्षु, बौद्ध भिक्षु

३—लोहित्याभि जाति-निर्ग्रन्थ साधु जो नियत तथा चोल पट्टा को पहिनते हैं मानि जो वस्त्रधारी ही हैं।

विभूतियों के होने पर भी अममत्व के कारण वे अपरिग्रही हैं परिग्रह से मुक्त हैं।

सारांश यह यह है कि दिगम्बराचार्य मूर्च्छा को ही परिग्रह मानते हैं।

जैन—तब तो जैन साधु वस्त्रादि उपाधि को रखते हैं उसमें भी अममत्व होने से परिग्रह दोष नहीं है।

दिगम्बर—तीर्थंकर भगवान तो नग्न ही होते हैं मगर अतिशय से अनग्न से दीख पड़ते हैं।

जैन—तीर्थंकर भगवान के ३४ अतिशयों में ऐसा कोई भी अतिशय नहीं है जो नग्नता को छिपावे, वास्तव में तीर्थंकर भगवान सवस्त्र ही होते हैं बाद में किसी का वस्त्र गिर जाय तो अनग्न भी होते है। इस प्रकार तीर्थंकरो में नग्नता या अनग्नता का कोई एकान्त नियम नहीं है।

बौद्ध धर्म के त्रिपीटक शास्त्रों में भ० पार्श्वनाथ के अनुयायीयों को चातुर्याम धर्मवाले और सर्वस्त्र माने है यानी भगवान पार्श्वनाथ और उनकी सन्तान सवस्त्र थी नग्न नहीं थी। मथुरा के कंकाली टीला से प्राप्त दो हजार वर्ष की पुराणी जिनेन्द्र प्रतिमायें अनग्न हैं,। दिगम्बर चिन्ह से रहित है। जिनके ऊपर श्वेताम्बर आचार्य के नाम खुदे हुए हैं। यहाँ करीब ६०० वर्ष पुरानी दिगम्बरीय प्रतिमायें भी है जो खुल्लम खुल्ला दिगम्बर ही है इससे भी स्पष्ट है कि दो हजार वर्ष पहिले "तीर्थंकर भगवान नग्न ही होते हैं" ऐसी मान्यता नहीं थी।

मकाशफते बाब ४ आयात ४ में तख्त नशीन सफेद वस्त्रवाले और सोने के ताज वाले २४ बुजुर्ग का वर्णन है संभवतः यह २४ तीर्थंकरों का वर्णन है।

विद्वानों का मत है कि—ईसा मसीह ने कई वर्ष पर्यन्त हिन्द में रह कर जैन बौद्ध या शैव धर्म का परिशीलन किया और बाद में यूरोप में जाकर ईसाई धर्म की स्थापना की। यहां के २४ अवतारों को उन्होंने उक्त शब्दों द्वारा ईश्वरी स्थान दिया है। मगर बौद्ध धर्म में इस प्रकार २४ बौद्ध नहीं है और शैव धर्म में २४ अवतार मनुष्य रूप से नहीं है। सिर्फ जैन धर्म में ही २४ तीर्थंकर है और वे मनुष्य ही है, अतः उस आयात में २४ बुजुर्ग के रूप में इनका ही सूचन है। इसके अलावा ईसाई धर्म में पापों की क्षमा मांगने की विधि भी जैन प्रतिक्रमण का ही कुछ अनुकरण है। इससे तय पाया जाता है कि—ईसा मसीह ने यहां जैन धर्म का परिशीलन किया हैं। यदि यह बात सच्ची है तो उस समय में २४ तीर्थंकर पोपाक में माने जाते थे। यह भी स्वीकृत करना पड़ेगा।

दिगम्बर—भगवान महावीर स्वामी के युग के जैन मुनि नग्न ही थे।

जैन—यह बात निम्नलिखित प्रमाणों से गलत है।

१—बौद्ध शास्त्रों में सूचित "चाउज्जामो धम्मो" वाले जैन साधु सवस्त्र ही थे।

२—बौद्ध आगमों में आजीवक मत की चर्चा है कि आजीवक मत में समस्त जीवों के वर्गीकरण से छै अभिजातियाँ (छै लेश्या के समान विकास पायरी) मानी गई हैं जो इस प्रकार हैं।

१—कृष्णाभिजाति—क्रूर मनुष्य

२—नीलाभिजाति—भिक्षु, बौद्ध भिक्षु

३—लोहितयाभि जाति-निर्ग्रन्थ साधु जो नियत तथा चोल पट्टा को पहिनते हैं याने जो वस्त्रधारी ही हैं।

४—हरिद्राभिजाति—सर्व नग्न त्यागि-आजीवक गृहस्थ श्रावक वगैरह गृहस्थ)

५—शुक्लाभिजाति—आजीवक श्रमण, श्रमणी

६—परम शुक्लाभिजाति—आजीवक धर्माचार्य नंदवच्छ किस संकिच्च और मक्खली गोशाला वगैरह।

इन अभिजातियों का परमार्थ यह है कि अधिक वस्त्र वाले मनुष्य प्रथम पायरी पर खड़ा है अल्प वस्त्र वाला बीच में खड़ा है और बिलकुल नग्न छठी पायरी पर जा पहुँचा है।

इस हिसाब से बौद्ध श्रमण दूसरी कक्षा में जैन निर्ग्रन्थ तीसरी और आजीवक श्रमण पाँचवीं कक्षा में उपस्थित है। साफ बात है कि उस काल में निर्ग्रन्थ श्रमण वस्त्रधारी थे और आजीवक श्रमण नंगे रहते थे।

(एन साई क्लो पीडिया ऑफ रीलिजियन एण्ड एथिक्स वॉ० १ पृ० २५९ का आजीवक लेख)

३—लोहित्या भिजाति नाम"निर्ग था-एक साटिक"ति वदन्ति। लोहिता भि जाति माने वस्त्रवाले जैन निर्गन्थ।

दि० बाबू कामता प्रसादजी कृत "महावीर और बौद्ध)

यह पाठ भी ऊपर के पाठ का ही उद्धृत अंश है। इसमें जैन साधुओं को सवस्त्र माना है।

४—पाणिनीय व्याकरण में"कुमारश्रमणादिभिः"सूत्र से गणधर श्री केशीकुमार का उल्लेख है ये आचार्यजी वस्त्र धारी थे इन्होंने गणधर श्री गौतम स्वामी से आचार पर्यालोचना की थी।

(उत्तराध्ययन सूत्र अ०)

५—कलिंगाधिपति सम्राट् खारवेल ने जैन मुनिओं को वस्त्र दान किया था ऐसा उसके उत्कीर्ण शिला लेख में लिखा गया है।

६--द्वादशांगी जिनवाणी का आदिम अंग "श्री आयरंग सुत्त" में जैन निर्ग्रन्थों को पाँच जाति के वस्त्रों की आज्ञा है विक्रमी दूसरी शताब्दी पर्यन्त के किसी भी ग्रन्थ में इसका विरोध नहीं किया गया। पहले पहल आचार्य कुन्द कुन्द ने "षट् प्राभृत" ग्रन्थ में इसका विरोध किया। इसी से स्पष्ट है कि उस समय पर्यन्त जैन श्रमण वस्त्र धारी थे और पाँच जाति के वस्त्र पहिनते थे किसी को नग्नता का आग्रह नहीं था। एकायक आ० कुन्द कुन्द ने पाँच जाति के वस्त्र का निषेध लिखा और बाद के श्वेताम्बर आचार्यों ने भी एकान्त नग्नता तथा इस कृत्रिम नग्नता का विरोध किया। भूलना नहीं चाहिये कि वीर निर्वाण के ६०० वर्ष तक के किसी जैन आगम में दिगम्बर का विरोध नहीं है किन्तु बाद में ही श्वेताम्बर शास्त्रों में दिगम्बर विरोध लिखा गया है। जब दिगम्बर के प्राचीन या अर्वाचीन सब शास्त्रों में श्वेताम्बर का विरोध ज़ोर शोर से किया गया है। इसीसे कौन साहित्य प्राचीन है और कौन अर्वाचीन है, यह निर्विवाद हो जाता है, और जिसका विरोध किया जाता है उसकी प्राचीनता भी स्वयं सिद्ध हो जाती है।

सारांश यह है कि-विक्रम की दूसरी शताब्दी तक जैन शास्त्रों में वस्त्र का निषेध नहीं था। जैन मुनि वस्त्रधारी थे वस्त्र के एकांत विरोधी नहीं थे।

दिगम्बर--जैन मुनि का असली नाम निर्ग्रन्थ है निर्ग्रन्थ का अर्थ यही होता है कि दिगम्बर।

जैन--दिगम्बर सम्मत शास्त्र पांच प्रकार के निर्ग्रन्थ मानते हैं और ये सब वस्त्रधारी थे ऐसा साफ २ बताते हैं। देखिये-

१—पुलाक बकुश कुशील निर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः।

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थ लिंग लेश्योपपातस्थान विकल्पतः साध्याः ।

(त० सभाष्यतत्त्वा० अ० ९ सू० ४९)

अविविक्त परिग्रहाः परिपूर्णोभयाः कथंचिदुत्तर गुण विरा-धिनः प्रति सेवना कुशीलाः ।

निर्गन्थ वस्त्र पात्र और उपकरण वाले तो होते ही हैं परन्तु उसमें ममता नहीं रखते हैं यदि उनमें "अव्यक्त परिग्रह "यानी मूर्छा करते हैं। तो भी वे तीसरी कोटि के निर्गन्थ ही हैं।

प्रति सेवना कुशीलाः द्वयोः संयमयोः दश पूर्व धराः ।

ये निर्गन्थ दो चारित्र वाले और दश पूर्व के ज्ञान वाले भी होते हैं।

तत्र उपकरणाभिष्वक्त चित्तो, विविधविचित्र परिग्रह युक्तः, बहु विशेषयुक्तोपकरणकांक्षी, तत्संस्कार प्रतिकार सेवी, भिक्षुः ॥

निर्गन्थ के पास वस्त्र पात्रादि उपकरण होते ही हैं । परन्तु वह उनमें आसक्त चित्त रहे, विविध और विचित्र वस्त्रादि को धारण करें या तीर्थंकर की आज्ञा से अतिरिक्त विशेष उपकरणों की चाहना करे तो वह पाँच में से दूसरी कक्षा का निर्गन्थ है।

लिंग द्विविधं, द्रव्यलिंगं भावलिंगंच । भावलिंगं प्रतीत्य सर्वेपि निर्गन्थाः लिंगिनो भवन्ति । द्रव्यलिंगं प्रतीत्य भाज्याः ।

श्रमण लिंग दो प्रकार के हैं । १-द्रव्यलिंग-साधु वेष और २—भावलिंग--चारित्र। चारित्र के जरिये पाँचो निर्गन्थ "लिंगी" हैं। द्रव्यलिंग के जरिये उनके अनेक भेद होते हैं।

दिगम्बर के—विद्वज्जन बोधक पृष्ठ १७८ में भी लिखा है—कि द्रव्यलिंग ने प्रतीतिकरि तिसे विचारिये तो पांचों ही भेद भाज्य है भेद करने योग्य हैं।

इस पाठ से स्पष्ट है कि पाँचों निर्ग्रन्थ के भिन्न २ साधु वेश होने के कारण अनेक भेद होते हैं। यदि निर्ग्रन्थ का द्रव्यलिंग सिर्फ नग्नता ही होती तो भावलिंग के समान द्रव्यलिंग का भी एक ही भेद होता, किंतु यहाँ अनेक भेद माने हैं, अतः स्पष्ट है कि निर्ग्रन्थों का द्रव्यलिंग नग्नता नहीं किन्तु साधुवेश यानी साधु के उपकरण ही हैं, और ये उपकरण अनेक प्रकार के हैं।

(तत्वार्थ सूत्र अ० १ सू० ४६, ४७ की सर्वार्थ सिद्धि और राजवार्तिक टीका पृ० ३४८, ३५६)

संनिरस्त कर्माणोंतर्मुहूर्त केवल ज्ञान दर्शन प्रापिणो निर्ग्रन्थाः।

चौथा "निर्ग्रन्थ" नामक निर्ग्रन्थ वही है जो कि बाह्य और अभ्यंतर ग्रन्थी से रहित है, और जिसको अन्त मुहूर्त में केवलज्ञान व केवल दर्शन होता है। इससे भी स्पष्ट है कि नंगे को निर्ग्रन्थ मानना, सरासर भ्रम ही है।

प्रकृष्टा प्रकष्ट मध्यमानां निर्ग्रन्थाभावः।''''न वा'''''' संग्रह व्यवहारा पेक्षत्वात्॥

तरतमता के होने पर भी पाँचों निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थ ही है। नयों की अपेक्षा से यह भेद भी उचित हैं।

(तत्वार्थ सूत्र टीका)

तयो रुपकरणा सक्ति संभवात् आर्त ध्यानं कदाचित्कं संभवति, आर्तध्यानेन कृष्णलेश्यादि त्रयं भवति।

बकुश और प्रति सेवना कुशीलको छै लेश्या होती है निर्गन्थ वस्त्रादि उपकरण वाले हैं अतः उन्हें कभी उपकरणों में आसक्ति होना भी सम्भवित है। जब निर्गन्थ को आसक्ति होती है तब आर्तध्यान होता है कृष्णादि तीन लेश्यायें होती है

(चारित्र सार, व विद्वज्जन पृ० १०९)

शारांश—जैन मुनि का असली नाम "निर्गन्थ" है। जो उक्त दिगम्बर ग्रन्थों के अनुसार वस्त्रादि युक्त, किन्तु उनमें मूर्छा रहित ही होता है, अतः यह निर्गन्थ माना जाता है।

श्वेताम्बर जैन मुनियों का सर्व प्रथम संघ "निर्गन्थ गच्छ" है और दिगम्बर का सर्व प्रथम संघ "मूल संघ" है। इससे भी स्पष्ट है कि निर्गन्थ यह संकेत शुरु से आज तक वस्त्र धारी श्रमणों के लिये उपयुक्त है।

भूलना नहीं चाहिये कि जिनागम जैन तीर्थ और निर्गन्थ गच्छ की संपत्ति (वारसा) श्वेताम्बर संघ को ही प्राप्त हुई है। दिगम्बर संघ इन लाभों से वंचित रहा है।

दिगम्बर—श्री उमास्वाती महाराज भी नग्नता माने अचेल परिग्रह मानते हैं इससे ही दिगम्बरत्व साध्य है।

जैन—यह परिग्रह तो वस्त्र के ही पक्ष में है क्षुधा और पिपासा के सद्भाव में आहार और पानी की आवश्यकता होने पर भी अप्रासुकता आदि के कारण आहार पानी न मिले या अल्प प्रमाण में मिले, तो भी काम चला लेवे दुःख न माने और संतुष्ट रहे इस परिस्थीति में यहाँ क्षुत, पिपासा परिग्रह माने जाते हैं, जो संवर रूप है। और आहार पानी को छोड़कर बैठ जाना, यह तपस्या मानी जाती है, जो निर्जरा का कारण रूप है। वैसे ही वस्त्र की आवश्यकता होने पर भी निर्दोष न मिलने के कारण

अल्प वस्त्र से चलाना पड़े या बिना वस्त्र रहना पड़े उस हालत में अचेल परिषह माना जाता है जो संवररूप है और वस्त्र को छोड़ कर बैठ जाना यह "काया क्लेश" रूप तपस्या है। भूलना नहीं चाहिये कि मुनि धर्म में संवर अनिवार्य है और तपस्या यथेच्छ है

इस हिसाब से स्पष्ट है कि मुनियों को आहार पानी अनिवार्य है वैसे ही वस्त्र धारण करना भी अनिवार्य है। यदि ये शुद्ध मिलें तो साधु इनको लेते हैं। मगर वैसे न मिले तो क्षुत पिपासा और अचेल परिषह को सहते हैं।

इस प्रकार क्षुत् परिषह से मुनियों के आहार का समर्थन होता है। और अचेल परिषह से मुनियों के वस्त्र का ही समर्थन होता है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर आगम में जिनकल्पी का वर्णन है यह असली मुनि लिंग है।

जैन—जैन दर्शन स्याद्वादी है, अतः एक मार्ग का आग्रह नहीं रखता है। मैं बौद्ध प्रमाणों से बतला चुका हूं कि भगवान महावीर स्वामी के साधु वस्त्र धारक थे। उनमें से कोई मुनिजी विशेष तपस्या करना चाहते याने अधिक कायक्लेश सहने को उद्युक्त होता तो वे ज्ञानी को पूछकर जिनकल्पी भी बनते थे। जो वस्त्र युक्त रहते थे, या वस्त्र रहित भी बन जाते थे। भूलना नहीं चाहिये कि जिनकल्पी बनने वाले को कम से कम ११ अंग और १२ वे अंग के दशवें पूर्व की तीसरी वस्तु तक का ज्ञान और प्रथम संहनन होना चाहिये। इसके बिना जिनकल्पी बनना, जिनकल्पी बनने का मजाक उड़ाने के सिवाय और कुछ नहीं है। जिनकल्पी को क्षपक श्रेणी नहीं होती है। १० पूर्व से अधिक ज्ञान वाले को जिनकल्पी रूप कायक्लेश तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है।
(बृहत्कल्पभाष्य गा० ११८५ से १४१४, पंचवस्तु गा० १२९८)

सारांश--जिनकल्पी व नग्नता असली मुनिलिंग नहीं है किन्तु विशिष्ट प्रवृत्ति ही है। असली मुनि मार्ग यानी सर्व सामान्य मुनि जीवन स्थविर कल्प ही है।

दिगम्बर--स्थविर कल्प और जिनकल्पी के लिये पूर्व ज्ञान की अनिवार्यता है, इत्यादि ये सब श्वेताम्बर की कल्पना ही है।

जैन--दिगम्बर शास्त्र में भी जिनकल्पी और स्थविरकल्पी की व्यवस्था बताई है इतना ही नहीं किन्तु जिनकल्पी के लिये विशिष्ट ज्ञान और विशिष्ट संहनन की अनिवार्यता भी स्वीकारी है। देखिये प्रमाण

१-मुनियों के जिन कल्पी और स्थवीर कल्पी ये दो भेद हैं।

(आ० जीनसेन कृत आदि पुराण सर्ग—११, श्लोक ७१)

मूलुत्तर गुण धारी, पमादसहिदो पमाद रहिदो य।
ऐकेक्को वि थिरा-थिर भेदेण होइ दुवियप्पो ॥ २१ ॥
थिर अथिरा जआणं पमाद दप्पेहिं एगपडुचारं ॥
समाचारदियारे, पायच्छित्तं इमं भणियं ॥ २६१ ॥

यानि जैन साधु के प्रमत्त और अप्रमत्त तथा स्थविर कल्पी और अस्थविर कल्पी ये दो २ विकल्प हैं यानी कि भी ये ही दो दो भेद हैं।

(दि० आ० इन्द्रनन्दि कृत छेदपिंड)

२-दुविहो जिणेहिं कहियो जिणकप्पो तहय थविरकप्पो य॥
सो जिण कप्पो उत्तो उत्तम संहणण धारिस्स ॥ ११६ ॥
एगारसंगधारी ॥ १२२ ॥

यानि-जिन कल्प और स्थविर कल्प ये दो कल्प हैं जिन कल्प उत्तम संहनन वाले और ग्यारह अंग धारी के वास्ते है।

(आ० देव सेन कृत भाव संग्रह)

इस प्रकार दिगम्बर शास्त्रों में भी दो कल्प बताये हैं, और जिन कल्प यह किसी ज्ञानी की खास विशिष्ट यथेच्छ प्रवृति है ऐसा स्पष्ट कर दिया है।

ये प्रमाण भी बताता है कि-स्थविर कल्प ही प्रधान श्रमणमार्ग है जब जिन कल्प सिर्फ व्यक्तिगत विशिष्ट प्रवृति है। इस हालत में जिन कल्प असली यानी प्रधान मुनि लिंग नहीं हो सकता है।

दिगम्बर—आ० कुन्द कुन्द तो सब द्रव्य के त्याग से ही अपरिग्रहता मानते हैं। वे लिखते हैं कि-

वालग्ग, कोडिमित्तं, परिग्गह ग्गहणं ण होई साहूणं।
भुंजेइ पाणि पत्ते, दिण्णण्णं इक्क ठाणम्मि ॥ १७ ॥

(आ० कुन्द कुन्द कृत-सुत्त पाहुड)

किध तम्हि णत्थि मुच्छा ! आरम्भो वा असंजमो तस्स।
तध परदव्वम्मि रदो, कध मप्पाणं पसाधयदि ॥ २० ॥

टीका—उपाधि सद्भावे हि ममत्व परिणाम लक्षणायाः मूर्च्छायाः, तद्विषय कर्म्म प्रक्रम परिणाम लक्षणस्यारंभस्य, शुद्धात्म रूप हिंसन परिणाम लक्षणस्याऽसंयमस्य चावश्यं भावित्वात्।

याने-उपाधि में मूर्च्छा, आरम्भ और असंयम होता है, पर द्रव्य में रत मनुष्य आत्मा को साध सकता नहीं है।

(आ० कुन्द कुन्द कृत प्रवचन सार चरणानुयोग चूलिका)

जैन—महानुभाव ! यह कथन सिर्फ ममता रूप परिग्रह यानी मूर्छा के खिलाफ है वास्तव में वालाग्र ही नहीं किन्तु लाखों का समूह पीछी, उपाधि, शरीर वाणी और मन वगैरह पर द्रव्य है। जो धर्म साधन के हेतु होने के कारण उपकरण ही है किन्तु मूर्छा होने

पर ये सब अधिकरण बन जाते हैं, इस आशय को स्पष्ट करने के लिये ऊपर की गाथायें पर्याप्त हैं।

यदि ऐसा न होता तो ये आचार्य उपाधि की आज्ञा कतई नहीं देते। किन्तु प्रत्यक्ष है कि ये ही बाद की गाथाओं में उपधि स्वीकार की आज्ञा देते हैं। देखिये-

छेदो जेण न विज्जदि, गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स
समणो तेणिह वट्टदु, कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥ २१ ॥

टीका—यः किल अशुद्धोपयोगाऽविनाभावी स छेदः। अयं उपधिस्तु श्रामण्यपर्याय सहकारिकारण शरीर वृत्ति हेतुभूताऽऽहार निहारादि ग्रहण विसर्जन विषय छेद प्रति षेधार्थमुपादीयमानः सर्वथा शुद्धोपयोगाऽविना भूतत्वात् प्रतिषेध एव स्यात्।' २१ ॥

अथाऽप्रतिषिद्धोपधिस्वरूप मुपदिशति।

अप्पडिकुट्ठं उवधि अपत्थणिज्जं असंजद जणेहिं।
मुच्छादिजणण रहिदं, गेण्हदु समणो जदि वि अप्पं॥२२॥

टीका-यः किलोपधिः सर्वथा बन्धासाधकत्वाद प्रति क्रुष्टः संयमादन्यत्रानुचितत्वाद संयतजनाऽप्रार्थनीयो, रागादि परिणाम मंतरेण धार्यमाणत्वा"न्मूर्च्छादिजनन रहितश्च"भवति स खलु "अप्रतिषिद्धः"। अतो यथोदितस्वरूप एवोपधिरुपादेयो, न पुनरल्पोऽपि यथोदित विपर्यस्त स्वरूपः ॥ २२ ॥

बालो वा वुड्ढो वा, समभिहदो वा पुणो गिलाणो वा।
चरियं चरउ सजोग्गं, मूलच्छेदं जधा ण हवदि ॥ २६ ॥

आहारे व विहारे देसं कालं समं खमं उवधिं।
जाणित्ता ते समणो, वट्टदि जदि अप्प लेवी सो ॥ ३० ॥

टीका-? [illegible] ॥

२—मन्प एव लेपो भवति, तद्वरमपवादः ॥.

३-देशकालज्ञस्यापि बाल वृद्ध श्रान्त ग्लान त्वानुरोधेना ऽऽहार विहारयो रल्पलेपमयेनाऽप्रवर्तमानस्याऽतिकर्कशाऽऽ चरणीभूय क्रमेण शरीरं पातयित्वा सुरलोकं प्राप्योद्वांत समस्त संयमाऽमृतभारस्य तपसोऽनवकाशतयाऽशक्य प्रतिकारो महान् लेपो भवति, तन्न श्रेया नपवादनिरपेक्षः उत्सर्गः ।

४-असंयत जन समानी भूतस्य '' '''महान् लेपो भवति, तदश्रेयानुत्सर्ग निरपेक्षोऽपवादःसर्वथानु गम्यस्य परस्पर सापेक्षोत्सर्गापवाद विजृंभित वृत्तिः स्याद्वादः ॥ ३० ॥

याने साधु काल क्षेत्र के विचार से प्रवृत्ति करें जिसके लेने छोड़ने और वापरने में छेद न हो ऐसी उपाधि को स्वीकारें। "ममत्व न हो तब उपाधि अप्रतिषिद्ध माना गया है", उपाधि निषेध का कारण "ममता" ही है। बाल वृद्ध श्रमित और ग्लान मुनि मूलच्छेद न हो इस बात को लक्ष्य में लेकर स्वयोग्य प्रवृत्ति करें। मुनि देशकाल श्रम क्षमा और उपाधि को जानकर आहार तथा विहार में प्रवृत्ति करें।

इस प्रवृति में अल्पलेपी के लिये चतुर्भंगी होती है जिसमें अपवाद निरपेक्ष उत्सर्ग और उत्सर्ग निरपेक्ष अपवाद ये दोनों भांगे वर्ज्य माने गये हैं। अति कर्कश आचरण से मरकर असंयमी देव बनना यह भी अपवाद निरपेक्ष एकान्त हठ रूप होने से अश्रेय मार्ग ही है। उत्सर्ग और अपवाद से सापेक्ष वर्ताव रखना यानि स्याद्वाद पूर्वक प्रवृत्ति करना यही शुद्ध मुनि मार्ग है।

(आ० कुन्द कुन्द कृत, प्रवचन सार चरणानुयोग चूलिका)

आ० कुन्द कुन्द इन पाठों से मुनियों को उपाधि रखने की आम इजाजत देते हैं। भूलना नहीं चाहिये कि ममत्व होने से ही

इनमें दूषण माना गया है अतः मुनियों के लिये उपाधि रखने की नहीं बल्कि उसमें मूर्च्छा रखने की मना है, जो शालाग० वगैरह गाथाओं से स्पष्ट है।

दिगम्बर मुनि भी मोर पीच्छ वगैरह उपाधि को रखते हैं।

दिगम्बर—दिगम्बर मुनिओं के लिये "मोर पीच्छ" यह बाह्यलिंग है, "उपाधि" है, एवं संयम का उपकरण है। इसके बिना ये कदम भी नहीं उठा सकते हैं।

१–मोर पीच्छ रखने में ५ गुण हैं।

(पं० चंपालालजी कृत चर्चा सागर चर्चा-२१०)

२–सप्तपादेषु निष्पिच्छः कायोत्सर्गात् विशुध्यति ॥
गव्यूति गमने शुद्धि मुपवासं समश्नुते ॥

(चारित्र स र, तथा चर्चा सागर चर्चा ७)

३–मुनि विना पीच्छ ७ कदम चले तो कायोत्सर्ग रूप प्रायश्चित करें।

(आ० इन्द नन्दी कृत छेद पिंडम् गा० ८०)

४–पीछी हाथ से गीरपड़ी थर पवन का वेग अत्यंत लगा। तब स्वामी (आ० कुन्द कुन्द ने) कही, हमारा गमन नहीं, क्योंकि मुनिराज का याना विना मुनिराज पीछाणा नहीं जाय।

(पुस्तक पन्नालालजी दि० जैन सरस्वति भूवन बोम्बे का गुटका में आ० कुन्द कुन्द का जीवन चरित्र, सूर्य प्रकाश श्लो० १५१ की फूट नोट पृ० ४१ से ४२)

इसके अलावा दिगम्बर साधुओं को कमण्डल, पुस्तक, कलम, कागज, रूमाल, पट्टी वगैरह उपाधि रखना भी अनिवार्य है। आज दिगम्बर मुनि यज्ञोपवीत देते हैं चटाई व पट्टा पर बैठते हैं बड़े २ महलों में ठहरते हैं घास के ढेर पर सोते हैं इनकी माफिक के लिये साथ में मोटर रक्खी जाती है यह सब मूर्च्छा न होने के कारण

दूषण रूप नहीं है। मूर्च्छा हो तो शरीर भी परिग्रह है. अतः मूर्च्छा के अभाव में यह सब अपरिग्रह रूप हैं इतना तो हमें मंजूर है।

जैन—यदि दिगम्बर मुनि उपाधि रखने पर भी अपरिग्रही हैं तो श्वेताम्बर मुनि भी उपाधि रखने पर अपरिग्रही हैं।

और भी तीर्थंकर भगवान भी ६ पर्याप्ति की वर्गणा रूप पर द्रव्य को लेते हैं मगर वे अपरिग्रही ही हैं। कारण ! मूर्च्छा नहीं है। इसी प्रकार मुनि भी अमूर्च्छित रूप से उपाधि रक्खें तो अपरिग्रही ही है।

दिगम्बर—अजी ! मुनि जो कुछ भी करें उसमें हमारा कोई भी वास्ता नहीं है सिर्फ इतना होना चाहिये कि वे वस्त्र धारी न हों, नंगे हों। वास्तव में दूसरी २ चीज परिग्रह हो, या न हों, मगर वस्त्र तो परिग्रह ही है। आ० कुन्द कुन्द दूसरी उपाधि की आज्ञा देते हैं मगर वस्त्र का नाम लेकर निषेध करते हैं देखिये प्रमाण

१—पंचविह चेल चायं, खिदिसयणं दुविह संजमं भिक्खू।
भावं भाविय पुव्वं, जिणलिंगं णिम्मलं सुद्धं ॥ ८१ ॥
(आ० कुन्द कुन्द कृत भावप्राभृत गा० ७९। ८१)

२—जे पंच चेल सत्ता ॥ ७६ ॥ (मोक्ष प्राभृत)

३—पंचच्चेल च्चाओ ॥ १२४ ॥ क-प्रति ॥
अंडज बुंडज रोमज, चर्म्म च वल्कजं पंच चेलानि ॥
परिहृत्य तृणज चेलं, यो गृह्णीयात् भवेत् स यतिः।
(आ० देवसेन कृत, भाव संग्रह गा० १२४)

४—यदि मुनि दर्प और अहंकार से वस्त्र ओढले तो पंच कल्याणक, यदि अन्यकारणसे ओढले तोमहाव्रतभंग हो जाय।

(पं० चम्पालालजी कृत चर्चासागर पृ० ३१५ पं० परमेष्ठीदास
चर्चा समीक्षा पृ० २११)

५--लिंगं जह-जादरूप मिदि भणिदं ॥ २४ ॥

(आ० कुन्द कुन्द कृत प्रवचनसा

सारांश यह है कि मुनि पांचों प्रकार के वस्त्र न पहिने ! नंग
पन ही मुनि लिंग है ।

जैन--मैं पहिले से ही बता चुका हूं कि आ० कुन्द कुन्द
शुरू २ में पाँच प्रकार के वस्त्रों का निषेध किया, इससे तो नि
बातें बिना संशय निर्णीत होती जाती हैं ।

१-आ० कुन्द कुन्द के समय पर्यंत जैन निर्ग्रन्थ पाँच प्रकार
वस्त्र पहिनते हैं ।

२-उस समय तक के शास्त्रों में मुनिओं के लिये पाँच जा
के वस्त्रों की आज्ञा है ।

३-वस्त्र मात्र का निषेध न करके पाँच प्रकार का ही निषे
किया इससे भी पाँच ही प्रकार के वस्त्र उस समय पर्यन्त ग्रह
किये जाते थे, यह भी निर्विवाद हो जाता है ।

४-दिगम्बर साधु पाँच जाति से भिन्न वस्त्र पहने तो दोष नहीं
है, सिर्फ पाँच का ही त्याग होना चाहिये । क्योंकि पाँच जाति में
ही परिग्रह दोष है । छटे प्रकार के वस्त्र में यह दोष नहीं है ।

५-दिगम्बर मुनि तृणज चटाई को ग्राह्य मानते हैं यानी लेते
हैं । यद्यपि आ० देव सेन ने छठी तृणज जाति का निषेध किया
किन्तु दिगम्बर मुनि उनकी एक भी नहीं सुनते । माने पाँच के
अलावा छठी जाति का इस्तैमाल करते हैं और "लिदि सयण" के
बजाय पट्ट पर सोते हैं ।

६-सिर्फ पाँच जाति के वस्त्र के खिलाफ में ही यह कलिंग

निकाला गया है माने सब में ही एकान्त दिगम्बरत्व की जड़ जमी है।

इन सब बातों के सोचने से क्या यह विवेक नहीं आता है, कि मुनियों का धर्म धारण ही असली वस्तु है और एकान्त नग्नता का आग्रह नकली वस्तु है?

सब उपाधि, रोमज-पीछी, मुंडज-पीछी बन्धन, पुस्तक बन्धन, रुमाल वस्त्र और कागज को रक्खें वो तो सच्चा मुनि, और आगमोक्त होने पर भी सिर्फ आ० कुन्द कुन्द द्वारा निषिद्ध उपाधि को रक्खे वह मुनि ही नहीं। यह कहां का न्याय? ऐसी पाखण्डी एकान्त वाद में ही हो सकती है।

न्याय के जरिये तो दि० आचार्य भी वस्त्रादि की आज्ञा देते हैं, जो आगे सप्रमाण बताया जायगा। यहाँ तो इतना ही विचारणीय है कि आदिम दिगम्बर शास्त्र निर्माता ने किस प्रकार जैन दर्शन में मत भेद की नींव डाली और जैन नाम को हटा कर "दिगम्बर" नाम को ही प्रधान बनाया।

"सिर्फ नंग रहो, दूसरी दूसरी उपाधिकी छूट" इस एकान्त नंगे पन की ओट में क्या २ नाच होरहा है यह देखा जाय तो अपने को दुःख ही होता है। कतिपय "नग्न" माने दिगम्बर परिभाषा के अनुसार "अपरिग्रही" मुनि निम्न प्रकार जाहिर हुए हैं।

१—तिलतुसमेत्तं न गिहदि हत्थेसु। १८।
दिगम्बर मुनि को सीर्फ हाथ से पैसा को छूने की मना है।

(सूत्र प्राभृत)

२—कश्चित्कालानु सारेण शरीरेर्व्यमुपाहरन्।
गच्छ पुस्तक पुष्यर्थं अयाचितमथाल्पकं॥ ८६॥

माने दिगम्बर मुनि शास्त्र और संघ के लिये रुपये जोड़ सकते हैं

(सूत्र प्राभृत गा० १८ की श्रुत सागरी टीका)

(दि० आ० इन्द्र नन्दी कृत नीति सार विक्रम की ११ वी शताब्दी)

३ दिगम्बर मुनि·· मोरैना पधारे, एक अच्छे कमरे में ठहरे थे, जाड़ा जोरों से पड़ रहा था भक्तों ने कमरे में घास का ढेर लगा दिया मुनिजी रात को उसके ठीक बीच में सो गये भक्तों ने चारों और अंगीठी जला रक्खी। कम नसीबी से आग की एक चिनगारी घास में जा लगी और मुनि जी भुंज गये।

४-वि० सं० १९९६- में भी आरा में ऊपरसी ही परिस्थिति में ३ दिगम्बर मुनि अग्नि शरण हुए है।

५—आश्चर्य की बात है कि दिगम्बर मुनि न वस्त्र रक्खें न लंगोटा रक्खें न गांठ रक्खें पर लाखों रुपये जमा कर सकते हैं।

नमुना—करीब २ साल पेस्तर की घटना है कि दिगम्बर मुनि जय सागर जी हैदराबाद दक्षिण में पधारे तब उनके पास लाखों रुपये जमा थे इनकी खातिर करने के लिये दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला ने एक अपने शास्त्री जी को संभवतः प्रो० धर्मचन्द जी B. S. C. को भेजा था।

६—इसके अलावा और भी दिगम्बरीय अपरि ग्रहता के नमूने जैन जगत और सत्य संदेश में प्रकट हो चुके हैं।

७—मूलाचार में भी गुरु द्रव्य और साधर्मिक द्रव्य का जिक्र है।

८—यद्यपि यहाँ पाँच वे आरे में कोई मोक्ष नहीं पाता है, परन्तु दिगम्बर विद्वान् पाँचवे आरे में भी दिगम्बर को नग्नता के कारण ही मोक्षगमन मानते हैं जैसा कि—

तदा ते मुनयो धीराः शुक्ल ध्यानेन संस्थिताः
हत्वा कर्माणि निःशेषं प्राप्ताः सिद्धिं जगद्धिताम् ॥ ४२ ॥

(ब्र० नेमिदत्त कृत आराधना कथा कोश भा० ३ कथा ७३ मंद संतोषोद्र चाणक्य की कथा श्लो० ४२ पृ० ३११)

पर उसने (चाणक्य ने) उसे बड़ी सहन शीलता के साथ सह लिया और अन्त में अपनी शुक्ल ध्यान रूपी आत्म शक्ति से कर्मों का नाश कर सिद्ध गति लाभ की × + चाणक्य आदि निर्मल चारित्र के धारक ये सब मुनि अब सिद्ध गति में ही सदा रहेंगे।

(पं० उदयलाल काशलीवाल कृत, आराधना कथाकोश का हिन्दीभाषांतर पृ० ४९ से ५१)

९—शान्ति देवी ने भी आत्म समाधि प्राप्त की, कारण ? दिगम्बरता आदि

(श्रवण बेल्गोल के शिला लेख नं०...)

१०—नित्यस्नानं गृहस्थस्य, देवार्चन परिग्रहे।
यतेस्तु दुर्जनस्पर्शात्, स्नानमन्यद् विगर्हितं ॥ १ ॥

तत्र यतेः रजस्वलास्पर्शे चण्डालस्पर्शे शुनक गर्दभ मार्जार योग कपालस्पर्शे वमने विष्ठोपरि पाद पतने शरीरोपरि काक विष्मोचने इत्यादि स्नानोत्पत्तौ सत्यां दंडवद् उपविश्यते, श्रावकादिक छात्रादिको वा जल नामयति, सर्वांगं प्रक्षालनं क्रियते, स्वयं हस्तमर्दनेन अंगमलं न दूरी क्रियते। स्नाने संजाते सति उपवासो गृह्यते, पंच नमस्कार शतमष्टोत्तरं कायोत्सर्गेण तप्यते एवं शुद्धिर्भवति।

मतलब-दिगम्बर मुनि को जल स्नान का है, सीर्फ़ वस्त्र पेशा है।
(आ० कुन्द कुन्द कृत मोक्ष प्राभृत गा० ९८ की श्रुतसागरी टीका १०१)

उपरोक्त सब बातें दिगम्बरीय अपरिग्रहता को आभारी है।

महानुभाव ! इस अपरिग्रहता से तो यही चारितार्थ होता है कि-गुड़ खाना और गुल गुले से परहेज करना अर्थात्-उपधि रखना और वस्त्र नाम का परहेज करना

दिगम्बर—वस्त्र वाला मुनि लज्जा-परिषह को नहीं जीत सकता है।

जैन—परिषह २२ हैं, इनमें लज्जा नाम का कोई परिषह नहीं है। दिगम्बर ने अपनी मनमाने के लिये यह नया तुक्का चला रक्खा है।

दिगम्बर—वस्त्र तो मुनि के लिये पुरुषेन्द्रिय के विकार को छीपाने का साधन है। मान वस्त्र वाला मुनि जितेन्द्रिय नहीं है। दिगम्बर मुनि ही जितेन्द्रिय है।

जैन—दिगम्बर मुनि कितने जितेन्द्रिय हैं उनके कई प्रमाण "जैन जगत्" की फाइल में प्रकट हो चुके हैं। पूर्वोक्त दिगम्बर मुनि जय सागर जी ने क्या २ गुल खेला है तथा जबलपुर में दिगम्बर मुनि मनीन्द्र सागर के संघ के तीनों मुनियों की कूप पतन आदि कैसी २ शोचनीय दशा हुई है यह जैन जगत् से छिपा नहीं है मगर वे भी बेचारे करे क्या ! मनुष्य को नवम गुण स्थानक तक वेदोदय होता है, जो दिगम्बर होने मात्र से दबता नहीं है। दिगम्बर के प्रायश्चित ग्रंथ भी दिगम्बरी दशा में चतुर्थव्रत दूषण का स्वीकार करते हैं देखो

जंता रूढो जोणी ॥ ४६ ॥ अएणेहिं अमुणिदे ॥ ५१ ॥ परेहिं विएणाद् मेक वारम्मि ॥ ५२ ॥ इंदिय रालणं जायदि० ॥ ४८ ॥

(आ० इन्द्रनन्दि कृत छेदपींडम)

दिगम्बर—यदि ये मुनि कत्था का प्रयोग कर लेते तो की यह दशा नहीं होती ये कच्चे होंगे।

जैन—महानुभाव! दवाई प्रयोग से जितेन्द्रियता आती कि मनके मारने से? दवाई से प्राप्त की हुई बाह्य कृतिम जितेन्द्रियता से क्या लाभ?

दिगम्बर—दिगम्बर शास्त्रों में दिगम्बर मुनि को नवम गुण स्थानक तक पुं० स्त्री और नपुं० इन तीनों वेद का उदय माना है जिनमें पुं० वेद ग्रन्य गोचर है,

अतः उसे प्रयोग से दवा कर जितेन्द्रिय बनना आवश्यक है

जैन—ऐसी जितेन्द्रियता दिगम्बर को ही मुबारक हो, नवम गुण स्थान वर्ती दिगम्बर मुनि में तीनों वेद का उदय मानना और श्वेताम्बर मुनि पर सीर्फ वस्त्र के ही जरिये झूठा आक्षेप करना, यह नितान्त मताभिनिवेश ही है।

दिगम्बर—श्वेताम्बरीय आचेलक्य कल्प में भी वस्त्र का निषेध स्पष्ट है।

जैन—इस कल्प से निषेध नहीं किन्तु विधान ही किया गया है।

जो मानता है कि-अपरिग्रहता से वस्त्रों का सर्वथा निषेध हो जाता है। उसको इस कल्प की आज्ञा से ठीक उत्तर मिल जाता है।

इस अचेलक कल्प के स्वतंत्र विधान से निर्विवाद सिद्ध है कि-अपरिग्रहता में वस्त्र की व्यवस्था होती नहीं थी अतः इस स्वतंत्र कल्प के द्वारा नयी व्यवस्था करनी पड़ी। सचमुच अपरिग्रहता माने ममत्व के द्वारा वस्त्र के विधि-निषेध की व्यवस्था कैसे

हो सकती है ? वस्त्रों की मर्यादा के लिये स्वतंत्र विधान अनिवार्य था, जो आचेलक्य से बताया गया है।

संस्कृत वगैरह भाषाओं में सर्वथा निषेध या अल्प निषेध करना हो, तब समासमें अ और अन् शब्द का प्रयोग किया जाता है जैसे कि—

अ=निषेध। अ+जीव=जीव से भिन्न, जीव रहित। अ+वृष्टि=वृष्टि का अभाव।

अ=अल्पत्व। अ+नुदरी कन्या=छोटे पेटवाली कन्या। अ+ज्ञ=अल्पज्ञ। अ+वृष्टि=अल्पवृष्टि। अ+ज्ञान=अल्प ज्ञान विपरीतज्ञान। अ+वला=अल्पवला। इत्यादि

इस प्रकार यहाँ अचेल का अर्थ भी अ+चेल माने "अल्प वस्त्र होना" यही किया गया है।

इस कल्प से वस्त्रों का निषेध नहीं बल्कि मर्यादा हो जाती है। इस मर्यादा से भिन्न या अधिक वस्त्र रखने वाला निर्ग्रन्थ मुनि बकुश है जो बात तत्वार्थ सूत्र के "विविध विचित्र परिग्रह युक्तः बहु विशेष युक्तो बकुशा कथ्यते" इत्यादि से स्पष्ट है। दिगम्बर आचार्य को भी आचेलक्य का यही अर्थ सम्मत है।

दिगम्बर—दिगम्बरों ने आचेलक्य कल्प का विधान ही नहीं किया है। फिर सम्मति कैसी ? जो अपरिग्रह में ही अचेलभाव का स्वीकार करते हैं। वे अचेलक कल्प का भिन्न विधान करके अपनी स्वीकृति को कमजोर क्यों बनायें ?

जैन—अपरिग्रहता में वस्त्र की व्यवस्था नहीं है अतः एव दिगम्बर ग्रन्थकार आचेलक्य कल्प वस्त्र व्यवस्था का अलग विधान करते हैं। देखिये—

आचेलुक्कुद्देसिय सेज्जाहर रायपिंडं किदियम्मं।
वद जेट्ठ पडिक्कमणं मासं पज्जो समण कप्पो॥

(दि० आ० वट्टकेरकृत मूलाचार परि० १० गा १८ मा० चि० गा० ११२१)

अब ये ही आचार्य मुनि के लिये उपधि वगैरह की भी आज्ञा देते हैं। देखिये—

पिंडोवधि सेज्जाओ, अविसोधिय जो य भुंजदे समणो।
मूलठाणं पत्तो भुवणेसु हवे समणपोल्लो॥ १० । २५।

टीकांश—पिंडं उपधि शय्यां आहारोपकरणाऽवासादिकम विशोध्य इत्यादि। समणपोल्लो अर्थात् श्रामण्यतुच्छः।

फासुग दाणं फासुगउवधिं तह दोवि अत्तसोधीए।
जो देदि जोय गिण्हदि. दोण्हंपि महफ्फलं होइ॥।१०। ४५॥

टीकांश—हिंसादि दोष रहित मुपकरणम्

णाणुवहिं संजमुवहिं सउचुवहिं अण्णमप्पुवहिं वा।
पयदं गह-णिक्खेवो समिदी आदाण णिक्खेवा॥

मुनि को ज्ञानोपधि संयमोपधि और भिन्न २ उपधि होती है। (परि० १ गा० १४)

मुनि के लिये और भी उपधि का जिक्र। (प० ३ गा० ११४)

गुरु साहम्मिय दव्वं, पुत्थय मण्णं च गेण्हिदुं इच्छे।
तेसिं विणयेण पुणो णिमंतणा होइ कायव्वा॥ १३८॥

गुरु द्रव्य, साधर्मिक मुनि द्रव्य, गुरु पुस्तक (प० ४ गा० १३८)

सारांश—अचेल कल्प भी वस्त्र की मर्यादा करने वाला होने से वस्त्र विधान का अंग ही है।

दिगम्बर—वस्त्र वाले को सामायिक चारित्र नहीं होता है।

जैन—सामायिक देशावगासिक और पौषध ये साधु जीवन के प्राथमिक शिक्षा पाठ है। इन सामायिक आदि को वस्त्र वाले

श्रावक ध्यान दशा में अप्रमत्त गुण स्थान को पहुंच जाता है और अंतर्मुहूर्त के बाद छठा में आता है

इस प्रकार शुरुमें गृहस्थ दशा में ही प्रमत्त व अप्रमत्त आदि गुण स्थान की प्राप्ति होती है बाद में कोई महानुभाव मुनि भी हो जाता है, मगर नग्न होते ही छट्ठा या सातवाँ गुण स्थान मिल जाय ऐसा कोई एकान्त नियम नहीं है। भूलना नहीं चाहिये, दिगम्बर मत में पांचवे से सीधा छठा गुण स्थान की प्राप्ति मानी नहीं है।

दिगम्बर—क्या आप इस सम्बन्ध में किसी दिगम्बर विद्वान् का प्रमाण दे सकते है।

जैन—महानुभाव ! दिगम्बर शास्त्रों में छट्ठा सातवाँ गुण स्थान पाने में यह आम मान्यता है। अतः इस विषय के अनेक प्रमाण हैं।

आप की प्रतीति के लिये यहाँ एक प्रमाण दिया जाता है। जैसाकि—

"फिर यही सम्यग दृष्टि जब अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय को (जो श्रावक के व्रतों को रोकती है) उपशम कर देता है तब चौथे से पाँचवे देश विरत गुण स्थान में आ जाता है इस दरजे में श्रावक की ग्यारह प्रतिमा पाली जाती है इससे आगे के दरजे साधु के लिये है।

यही श्रावक जब प्रत्याख्यानावरण कषाय का (जो साधु व्रत को रोकते हैं) उपशम कर देता है और संज्वलन व नो कषाय का (जो पूर्ण चारित्र को रोकती है) मंद उदय साथ साथ करता है तब पाँचवे से सातवें गुण स्थान अप्रमत्त विरत में पहुँच जाता है, छठे में चढ़ना नहीं होता है इस सातवें का काल

अंतर्मुहूर्त का है। यहाँ स्थान अवस्था होती है। फिर संज्वल आदि तेरह कषायों के तीव्र उदय से प्रमत्त विरत नाम छठे गुण स्थान में आजाता है।"-

(आ० कुन्द कुन्द कृत पंचास्तिकाय गा० १११ की ब्र० शीतलप्रसाद कृत भाषा टीका खं० १ पृ० ७६)

ऊपर के प्रमाणों से भी यही मानना होगा कि वस्त्र वाला छठा व सातवाँ गुण स्थान का अधिकारी है, माने गृहस्थ और स्त्री ये सब इन गुण स्थान के अधिकारी हैं

यही कारण है कि भरत चक्रवर्ति को गृहस्थ दशा में ही केवल ज्ञान हुआ था दिगम्बर विद्वानों ने भी इस मान्यता को लोकोक्ति के रूप में स्वीकृति दे दी है जिसकी विशेष विचारणा "मोक्ष योग्य" अधिकार में की जायगी।

दिगम्बर--वस्त्र वाले को जैन मुनि मान लो, मूर्छा के अभाव होने से अपरिग्रही निर्ग्रन्थ मान लो, छठा और सातवें गुण स्थान के अधिकारी मानलो मगर उसे मोक्ष हरगिज नहीं मिल सकती है, क्योंकि नंगापन ही मुनि लिंग है। और यही मोक्ष मार्ग है। जैसे कि लिंगं जह जाद रूप मिदि भणिदं ॥ २४ ॥

(आ० कुन्द कुन्द कृत प्रवचन सार गा० २४)

जैन--"ही" और "भी" ये एकान्त वाद और अनेकान्त वाद के भेदक सूत्र हैं। "नग्नता ही मोक्ष मार्ग है" ऐसा कहना ही एकान्त वाद है, और नग्नता भी मोक्ष मार्ग है, ऐसा कहना सो अनेकान्त वाद है। आप "अनेकान्त वादी" बन जाओ, तब आप को अपनी गलती खयाल में आ जायगी।

आप मानते हो कि "नग्नता ही मोक्ष मार्ग है" तब तो मनुष्य के अतिरिक्त सब प्राणी, चूहा, कुत्ता, बिल्ली, सिंह, तोता, कौआ

पागल मनुष्य और दिगम्बर मुनि ही मोक्ष के साधक हैं वाम्तव में ये सब दिगम्बर हैं। और सब शेषमनुष्य, दिगम्बर गृहस्थ तथा श्वेताम्बर मोक्ष के लिये अयोग्य हैं क्योंकि ये सब अदिगम्बर यानी श्वेताम्बर हैं। क्या यह ठीक मान्यता है! यद्यपि दिगम्बर के आदि आचार्य कुन्द कुन्द दिगम्बरत्व के ऊपर काफी जोर देते हैं मगर वे या कोई भी दिगम्बर आचार्य नग्नता ही मोक्ष मार्ग है ऐसा मानते नहीं हैं। खिलाफ में दिगम्बर और श्वेताम्बर सब कोई ऐसा अवश्य मानते हैं कि "सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः"। आ० कुद कुन्द स्वामी भी ताईद करते हैं कि—

सम्मत्तनाणजुत्तं, चारित्तं राग दोस परिहिणं।
मोक्खस्स हवदि मग्गो, भव्वाणं लद्धबुद्धीणं ॥ १०६ ॥

(पंचास्तिकाय समयसार गा० १०६)

नाणेण दंसणेण य, तवेण य चरियेण संजमगुणेण।
चउहिं पि समाजोगे, मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥३० ॥

(दर्शन प्राभृत गा० ३०)

ण य होदि मोक्खमग्गो लिंगं जं देहणिम्ममा अरिहा।
लिंगं मुइत्तु दंसण णाण चरित्ताणि सेवंति ॥ ४३६ ॥
दंसण णाण चरित्ताणि, मोक्ख मग्गं जिणा बिंति ।४४०।

(समयसार प्राभृत गा० ४३६—४४०)

सामान्य बुद्धि वाला भी समझ सकता है कि आत्मा मोक्ष में जाती है ज्ञान दर्शन वगैरह आत्मा के गुण हैं अतः इन सम्यक् दर्शन वगैरह से ही मोक्ष हो सकता है. विरुद्ध में शरीर मोक्ष में नहीं जाता है वह चाहे उपाधि सहित हो या उपाधि से रहित हो, मगर यहाँ ही पड़ा रहता है। इस हालत में नग्नता मोक्ष मार्ग नहीं हो सकती है। सम्यक् दर्शन आदि को छोड़ कर नग्नता को मोक्ष

मार्ग मानना यह न्याय रूप कैसे हो सकता है? वस्त्र या उपाधि में ऐसी कौन सी ताकत है जो कि सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र होने पर भी मोक्ष को रोके?

दिगम्बर--जनाब! वस्त्र केवल ज्ञान को रोकता है।

जैन--महानुभाव! यह आपकी सूझ अर्वाचीन दिगम्बर पंडितों की ही कृपा का फल है। परन्तु दिमाग से जरा सा तो सोचिये कि यह किस हद तक सत्य है। एक मामूली ज्ञान भी वस्त्र पहिनने से न रुकता और न दब सकता है। तो केवल ज्ञान जो कि अघाति चार कर्मों के द्वारा भी नहीं दब सकता है। कैसे दब जायगा उस लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान को सिर्फ देह से ही सम्बन्धित वस्त्र दबा देवें या मना देवें यह तो दिगम्बरत्व के आग्रही को ही विश्वास हो सकता है।

दिगम्बर "शाकटायनाचार्य" भी साफ फरमाते हैं कि-वस्त्रा द् न मुक्तिविरहो भवनीति इस दिगम्बर मान्यतानुसार पाण्डवों को गले में लोहा होने पर भी केवल ज्ञान की प्राप्ति व उपस्थिति मानी जाती है, फिर सवस्त्र दशा में केवल ज्ञान का अभाव क्यों माना जाय?

केवलज्ञान सिंहासन स्वर्णकमल इत्यादि विभूतियों से या देह गुणों से दब जाता नहीं है, मगर वस्त्र से दब जाता है। यह कितनी बुद्धि शून्य कल्पना है!

(समय प्रा० गा० ११, १७)

सारांश--केवल ज्ञान ऐसी पौद्गलिक वस्तु नहीं है कि जो वस्त्र से रुक जाय!

दिगम्बर--उपाधि के लिये हमारे शास्त्र का पाठ दीजिये

जैन--उपाधि के बारे में दिगम्बरीय प्रमाण निम्न हैं।

५—उपाधि, ज्ञानोपाधि, संयमोपाधि, तप उपाधि इत्यादि

(आ० वट्टेर कृत मूलाचार परि० १ गा० १४, परि० ६ गा ७-११४ परि० ४ गा० १६८ परि० १० गा० २५,४५)

> पिंडोवधि सेज्झाओ, अविसोधिय जोय भुंजदे समणो
> मूल ठाणं पत्तो, भुवणे सु हवे समणपोल्लो ॥ २५ ॥
> फासुगदाणं फासुगमुवधिं, तह दो वि अत्त सोधीए
> देदि जो य गिण्हदि, दोण्हंपि महप्फलं होइ ॥ ४५ ॥

पिंड, उपधि, शय्या, संस्तारक फासुक उपाधि वगैरह।

(मूलाचार परिच्छेद १०)

६-सम्यक्त्व ज्ञान शीलानि तपश्चेतीह सिद्धये।
तेषा मुपग्रहार्थाय स्मृतं चीवर धारणम्

(वाचक श्री उमा स्वातिजी)

७-८"अविविक्त परिग्रहाः" "उपकरणाभिष्वक्त चित्तो विविध विचित्र परिग्रह युक्तः बहु विशेष युक्तोपकरणा कांची तत्संस्कार प्रतिकार सेवी"

ये सब भिन्न २ निर्ग्रन्थों के लक्षण हैं, उप करण के कारण ही निर्ग्रन्थों में जो जो भेद हैं वे यहां बताये गये हैं इसीसे सप्रमाण है कि पांचो निर्ग्रन्थ वस्त्रादि उपकरण को रखते हैं।

द्रव्य लिंगं प्रतीत्य भाज्याः

श्रमणों का द्रव्य लिंग माने वस्त्रादि वेष भिन्न २ प्रकार के होते हैं और इस द्रव्यलिंग के जरिये निर्ग्रन्थ भी अनेक प्रकार के हैं (पूज्यपाद कृत सर्वार्थ सिद्धि और आ०......कृत राजवार्तिक पृ० १५८ १५९)

"कम्बलादिकं गृहीत्वा न प्रक्षालंते" इत्यादि

(दि० आ० श्रुत सागर कृत तत्वार्थ अ० ९ सू० ४ की टीका, चर्चा सागर समीक्षा प्रस्तावना)

१० तपः पर्याय शरीर सहकारि भूतमन्न पानं संयम शौच ज्ञानोपकरण तृण मय प्रावरणादिकं किमपि गृह्णन्ति तथापि ममत्वं न करोति ।

अन्नोपकरण, पानोपकरण, संयमोपकरण, शौचोपकरण ज्ञानोपकरण और तृणज वस्त्र वगैरह दिगम्बर मुनि के उपकरण है। वे इनमें ममता न करें।

(ब्रह्म देव कृत परमात्म प्रकाश गा० २१६ की टीका पृष्ठ २२१)

भरहे दुसम समये सघ कमं मोज्झिऊण जो मूढो ।
परिवट्टइ दिगविरओ, सो समणो संघ बाहिरओ ॥१॥
पासत्थाणं सेवी, पासत्थो पंचचेल परिहीणो ।
विवरीयहपवादी, अवंदणिज्जो जइ होई ॥

(दि० भद्रबाहु संहिता खं० ३ अ० ७ गा०)

११ कोऽपवाद वेशः ? कलौ किल म्लेच्छादयो नग्नं दृष्ट्वा उपद्रवं यतीनां कुर्वन्ति, तेन मण्डपदुर्गे श्री वसन्त कीर्ति स्वामिना चर्यादि वेलायां तट्टी सादरा दिकेन शरीर माच्छाद्य चर्यादिकं कृत्वा पुनस्तन्मुंचति, इत्युपदेशःकृतः संयमिना मिथ्यपवादवेषः ।

तथा नृपादि वर्गोत्पन्न परम वैराग्यवान् लिंग शुद्धि रहितः उत्पन्न मेहनपुट दोष लज्जावान् वा शीताद्यसहिष्णुर्वा तथा करोति सोऽप्यपवादलिंगः प्रोच्यते ।

(आ० कुन्द कुन्द कृत दर्शन प्राभृत गा० २४ की श्रुत सागर सूरि दि० कलिकाल सर्वज्ञ आ० श्रुतसागर कृत टीका पृ० २१ । पं० वंशीधरदास कृत वर्ण सागर वर्णिका प्रकाशक ।)

१२—"णिक्खेवो" पद् किंचित् वस्तु पुस्तक कमण्डलु मुखं वर्ष्यादिकं मुद्धयंन प्रियते तार्किकेन वयार्थ दृष्ट्वा तायो

प्रतिलिख्य च क्षिप्यते मयूरपिच्छरजसाऽसन्निधाने "मृदुवस्त्रेण" कदाचित्तया क्रियते निक्षेपणा नाम्नी पंचमी समीति र्भवति ॥

(चारित्र प्राभृत गा० ३६ श्रुतसागरी टीका)

१४—मुनि चारित्रो पकरण पीछी के बिना नहीं चल सकता है

(चारित्रसार, छेदपिंडगा० ८०, धर्मामृत धर्मा०, आ० कुन्दकुन्द चरित्र)

१५-तयोरुपकरणा सक्ति संभवात् आर्तध्यानं कदाचित्कं संभवति, आर्त ध्यानेन लेश्यादित्रयं भवतीति।

पांचो निर्ग्रन्थ उपकरण वाले होते हैं उनमें से बकुश और प्रति सेवना कुशील को कभी आसक्ति भी होती है जब उनको आर्त ध्यान होता है तब शुरू की तीन लेश्या यें भी होती हैं।

(चारित्र सार, विद्वज्जन बोधक पृ० १७९)

१६-मोक्षाय धर्मसिध्यर्थं शरीरं धार्यते यथा।
शरीर धारणार्थं च भैक्षग्रहण मिष्यते ॥ १ ॥
तथैवोपग्रहार्थाय पात्र चीवरमीष्यते।
जिनै रूपग्रहः साधो रिष्यते न परिग्रहः ॥ २ ॥

माने मोक्ष और धर्म की साधना में शरीर भीक्षा पात्र वस्त्र वगैरह उपकारक साधन हैं ये परिग्रह नहीं हैं किन्तु उपग्रह हैं।

(आ० भद्रसेन कृत" ......)

१७—वस्त्र पात्राश्रयादिन्य-पराण्यपि यथोचितम्
दातव्यानि विधानेन रत्नत्रितयवृद्धये ॥ (आ० अमितगति)

१८—शय्या सनोपधानानि, शास्त्रोपकरणानि च
पूर्वं सम्यक् समालोच्य प्रतिलिख्य पुनः पुनः १२
गृह्णतोऽस्य प्रयत्नेन, क्षिपतो वा धरातले
भवत्य विकला साधो—रादान समिति स्फुटम् १३
शय्या, आसन, उपधान, शास्त्र उपकरण वगैरा

(दि० आ० शुभ चन्द्र कृत ज्ञानार्णव अ० ८ श्लो० १२-१६)

१६–कौपीनेपि समूर्च्छत्वा न्नार्हं त्यार्यो महाव्रतम् ॥
अपि भाक्त ममूर्च्छत्वात् साटकेऽप्यार्यिकार्हति ॥ ३६ ॥

मूर्छा होने के कारण लंगोटी वाला श्रावक भी उपचरित महाव्रत के योग्य नहीं है, मगर "मूर्च्छा नहीं होने के कारण" वस्त्र वाली श्रमणी भी उपचरित महाव्रत के योग्य है। माने वस्त्र वाले को महाव्रत है मूर्छा वाले को नहीं है।

यदौत्सर्गिक मन्यद्वा, लिंगमुक्तं जिनैः स्त्रियाः
पुंवत्त दिष्यते मृत्यु काले स्वल्प कृतोपधेः ॥ ३८ ॥

देह एव भवो जन्तो-र्यल्लिंगं च तदाश्रितम् ॥
जातिवत्तद् ग्रहं तत्र, त्यक्त्वा स्वात्म ग्रहं वशेत् ॥ ३६ ॥

शय्योपध्या-लोचना-न्न-वैयावृत्येषु पंचधा ॥
शुद्धिः स्यात् दृष्टि-धी-वृत्त विनयावश्यकेषु वा ॥ ४२ ॥

स्वोपज्ञटीकांश-स्यादस्मोशुद्धिः । कतिधा ? पंचधा । केषु ! शय्यादिषु विषयेषु । तत्र, शय्या वसति,संस्तरौ, उपधिः-संयम साधनम् ।" वृत्ते-चारित्रे निरति चार प्रवृत्तिः ॥ ४२ ॥

बाह्यो ग्रन्थों गमक्षाणा–मान्तरो विषयैषिता ॥
निर्मोहस्तत्र निर्ग्रन्थः पान्थः शिवपुरे यतः ॥ ८६ ॥

माने शरीर इन्द्रिय वगैरह बाह्य ग्रन्थ है विषयेच्छा आंतर ग्रंथ है, उनमें "ममता" न रक्खो। *

---

* निर्ग्रन्थों को त्याज्य बाह्य ग्रन्थ और अभ्यंतर ग्रन्थ का लक्षण इस प्रकार है—

सो विय गंथो दुविहो, बज्झो अब्भिंतरो अ बोधव्वो ।
अंतो अ चोद्दस विहो, दसहा पुण बाहिरो गंथो ॥ ८११ ॥

विवेकोऽक्ष कषायाणां ग भक्तो पधिषु पंचधा ।
स्यात् शय्यो पधिकायाक्ष वैया वृत्य करेषु वा ॥२१७॥

इन्द्रिय, कषाय, शरीर, आहार व उपाधि में या शय्या, उपाधि, शरीर, आहार, व वैयावृत्य में विवेक रखना ॥ २१७ ॥

(सं० १२९६ में पं० आशाधर कृत सटीक सागार धर्मामृत अ० ८)

२०-अपवित्र पटो नग्नो, नग्नश्चार्धपटः स्मृतः ।
नग्नश्च मलीनोद्वासी, नग्नः कौपीन वानपि ॥ २१ ॥
कषाय वाससा नग्नो, नग्नश्चानुत्तरीय मान् ।
अन्तः कच्छो बहिः कच्छो, मुक्तकच्छस्तथैव च ॥ २२ ॥
साक्षान्नग्नः स विज्ञेयो, दशनग्नाः प्रकीर्तिताः ॥ २३ ॥

माने-दश किस्मके नग्न होते हैं ।

(दि० आ० सोमसेन कृत त्रिवर्णाचार अ० ३ स १६६५)

खेत्तं[1] वत्थु[2] धन[3] धन्न[4], संचओ[5] मित्त-णाइ-संजोगो[6] ।
जाण[7] सयणासणाणि[8], दासी दासं च[9] कुवियं च[10] ॥ ८२५ ॥
कोहो माणो माया, लोभो पेज्जं तहेव दोसो अ ।
मिच्छत्त वेद अरइ, रइ हास सोगो भय दुगंछा ॥ ८३१ ॥
साबज्झेण विमुक्का, सब्भिंतर बाहिरेण गंथेण ।
निग्गहपरमा य विदू, तेणेव होंति निग्गंथा ॥ ८३२ ॥
केई सव्वविमुक्का, कोहाईएहिं केई भइयव्वा ॥ ८३३ ॥

(श्री संघदासगणिक्षमाश्रमणकृत, बृहत्कल्पसूत्र भाष्य)

क्षेत्रं वास्तु धनं धान्यं, द्विपदं च चतुष्पदं ।
हिरण्यं च सुवर्णं च, कुप्यं भाण्डं बहिर्दश ॥ १ ॥
मिथ्यात्ववेदौ हास्यादि-षट् कषाय चतुष्टयं ।
रागद्वेषौ च संगा स्यु—रन्तरङ्गाः चतुर्दश ॥ २ ॥
कुप्य—धोती, रुमाल । भाण्ड-कमंडलु, पात्र ॥

(दर्शन प्राभृत गा० १४ टीका, भाव प्राभृत गा० ५६ टीका)

दिगम्बर--मुनि को उपधि रखना चाहिये, मगर उसमें ऊनी रजोहरण और कमली नहीं रखना चाहिये ? क्योंकि ऊन अपवित्र वस्तु है यदि रजोहरण रखना अनिवार्य है तो मोर पीछ, गीधपींछ, बलाक पीछ या और कोई पीछ रखनी चाहिये ! क्योंकि ये पवित्र हैं।

जैन—चमड़ी केश नख पींछे ये सब एक से हैं, इनमें पवित्रता और अपवित्रता का भेद कैसे माना जाय ?

दिगम्बर--पींछें, कुदरतन मिलती हैं इनके पाने में मोर आदि की हिंसा नहीं होती है अतः पींछे पवित्र हैं। ऊन कतर के ली जाती है इसके पाने में भेड़ वगैरह की हिंसा होती है या वह मरे हुए भेड़ की मिलती है अतः ऊन अपवित्र है।

जैन—महानुभाव! पींछें खींचने से मोर को बड़ा कष्ट होता है वह मर भी जाता है, पींछें मुश्किल से आधाकर्मीक आदि दोष युक्त और मरे मोर के भी मिलते हैं, यह है आपकी पवित्र वस्तु। और जिस वस्तु के पाने में न भेड़ की हिंसा है न कष्ट है न आधाकर्मी पाप है और ऋतु आदि की अपेक्षा से जिसका काटना अनिवार्य एवं उपकार रूप माना जाता है, वह वस्तु है अपवित्र !

इस प्रकार मनमानी कल्पना से क्या कोई वस्तु पवित्र या अपवित्र बन सकती है !

यहाँ वस्तु स्थिति यही है कि दिगम्बर विद्वानों ने श्वेताम्बर मुनिवेष की निन्दा करने के लिये उनको अपवित्र लिख दिया है वास्तव में ऊन अपवित्र नहीं है लौकिक व्यवहारों में भी ऊनी सूती कपड़े की बनिस्पत अधिक पवित्र मानी जाती है।

दिगम्बर—जब मुनि वस्त्र रख सकते हैं तो उनको पात्र रखने में किसी प्रकार का विरोध नहीं होना चाहिये, कमण्डल

रक्खें या पात्र, यह एक सी बात है। एक नग्न के लिये उपयुक्त है, दूसरा वस्त्र वालों के लिये।

जैन—संभवतः कमण्डल रखना यह सन्यासियों का अनुकरण है। प्रति लेखना की अपेक्षा से तो पात्र रखना जैन मुनि के लिये अधिक उपयुक्त है इसके अलावा दिगम्बर शास्त्रों में पात्र के लिये निर्दोष विधान भी मिलता है। जैसे—

१—तव बाल वुड्ढ सुय आयरहं 'दुब्बल तणुरोह दुहांयरांह।

ओसह पय पच्छाय जोगु आएं, दहविण विज्ञावच्चु तासु॥
किरंतो णिंदियो मुणिंदु। दुओ संठिमिणु भाम जियणिंदु॥

(धत्ताबंध-हरिवंश पुराण)

माने-तपस्वी बाल वृद्ध श्रुतधर आचार्य दुर्बल और रोगी वगैरह की आहार पानी और औषधि आदि से वैयावृत्य करने का विधान है। जो पात्र रखने से ही साध्य है। सर्वथा शक्ति रहित और बीमार साधु की वैयावृत्य करने की शास्त्रों की आज्ञा है। वह उठ भी नहीं सकता है जब दूसरा मुनि पात्र द्वारा शुद्ध आहार पानी लाकर उसकी वैयावृत्य करे तब वह आहार पानी ले सकता है, इस हालत में वैयावृत्य की सफलता है एवं पात्र रखना ही अनिवार्य है।

२-मुनि आहार पानी से वैयावृत्य करे। (पूजापाठ)

माने-मुनि पात्र के जरिये लाये हुए आहार पानी से आचार्य की भक्ति करे साधर्मिक (मुनि) की भक्ति करे।

३—रात्रौ ग्लानेन भुक्ते स्यादेकस्मिं श्च चतुर्विधे॥
उपवासः प्रदातव्यः षष्ठमेव यथा क्रमम्।' ३३॥

टीका-रात्रौ निशि। ग्लानेन व्याधि विशेष परिश्रम विविधोपवासादि परिपीडितेन सता कर्मोदय वशात् प्राणसंकटे। भुक्तेऽ

उपप्रयद्धने सति । स्यात् भवेत् । एकस्मिन् भुक्ते एकतराहारे भुक्ते सति । चतुर्विधे चतुष्प्रकारे अशने पाने खाद्ये स्वाद्ये। उपवासः क्षमणं, प्रदातव्यः प्रदेयः षष्ठमथ षष्ठं। यथाक्रमं यथासंख्यं एकास्मिन्नाहारे क्षमणं, चतुर्विधाहारे षष्ठ मिति ॥ ३३ ॥

(दिगम्बरीय प्रायश्चित्त चूलिका श्लो० ३३)

यदि मुनि न पात्र रक्खे, न आहार पानी लावे, तो यह रात्रि भोजन और तज्जन्य प्रायश्चित्त का प्रसंग कैसे हो सकता है!

भूलना नहीं चाहिये कि-दिगम्बर शास्त्र में दिगम्बर मुनि के लिये ही यह प्रायश्चित बताया है।

४-रत्ति गिलाणभत्ते, चउविह एकम्हि छट्ठखमणाओ उवसग्गे सठाणं, चरियापविट्ठस्स मूलमिदी ॥ २६ ॥

टीका-रात्रौ व्याधियुते चतुर्विधाहारे षष्ठं। एक विधाहारेभुक्ते उपवासः। उपसर्गे रात्रिभोजी पंच कल्याणं। रात्रौ चर्याप्रविष्टः मूलं गच्छति। "न तस्य पंक्ति भोजनम्"। इतिषष्ठं व्रतम् ॥ २६॥

(छेद शास्त्र प्रायश्चित्त संग्रह)

माने-दिगम्बर शास्त्रों के अनुसार उनके मुनि रात्रि भोजन का प्रायश्चित लेवे यह बात पात्र होने के पक्ष में जाती है। यहाँ उस मुनि के लिये "पंक्ति भोजन के त्याग रूप दंड" बताया है। इससे भी सिद्ध है कि श्रमण पात्र को रक्खें उनमें आहार पानी लावे और एक पंक्ति में बैठ कर आहार करें, दोषित साधु इस पंक्ति में बैठने का हकदार नहीं है। यह पंक्तिभोजन भी पात्र रखने के पक्ष में है।

५--पंचानां मूलगुणानां रात्रिभोजनवर्जनस्य च पराभियोगात् बलादन्यतम प्रतिसेवमानः पुलाको भवति। (तत्वार्थसूत्र)

माने-रात्रि भोजी श्रमण पुलाक है। जैन निर्ग्रन्थ पात्र द्वारा

जो आश्रव के हेतु हैं वे ही संवर के हेतु हैं जो संवर के हेतु हैं वे ही आश्रव के हेतु हैं, कैसा अच्छा खुलासा है।

समय प्राभृत गा० २८३ में भी इसी का ही अनुकरण है।

इस अपेक्षा से दंड भी उपकारक उपकरण है और मुनि उसे आवश्यकता के अनुसार रखते हैं।

दिगम्बर—उपाधि किसे मानी जाय ?

जैन—जिसके जरिये पांच महाव्रतों का निर्वाह, ज्ञानादिकी पुष्टि और समीति आदि का पालन अच्छी तरह होता है वह उपाधि है, यही उपकारक परद्रव्य है। जिसके द्वारा उपरोक्त फल न हो, वह उपधि नहीं किन्तु उपाधि ही है।

दिगम्बर—उपधि से क्या लाभ है ?

जैन—जैन निर्ग्रन्थों को उपधि द्वारा अनेक लाभ प्राप्त होते हैं जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं।

१-नग्नता से धर्म की निन्दा होती है, धर्म प्रचार रुक जाता है, विहार में बाधा पड़ती है, राजा महाराजा विविध फरमान निकालते हैं, बच्चे डरते हैं, सभ्य समाज अपने घरमें नहीं आने देता है, अजैन का आहार पानी बंद हो जाता है, एक ही घर से गोचरी करनी पड़ती है, और जैन शासन को अनेकों विधि नुकसान होता है। सिर्फ दो चार हाथ का वस्त्र न होने से इतना नुकसान उठाना पड़ता है। एक दिगम्बर विद्वान ने ठीक ही कहा है।

अल्पस्य हेतोर्बहु नाश मिच्छन्। विचारमूढः प्रतिभास्य से त्वम्॥

मुनि जैन धर्म को इस नाश में से चोल पटाके जरिये बचा लेता है। वस्त्रधारी मुनि सब स्थानों में जा सकता है। राजा के अंतःपुर में भी सत्कार पूर्वक प्रवेश पा सकता है।

२—"मुहपत्ति" भाषा समिति के पालने में अनिवार्य उपाधि है।

३--पीछी और "रजोहरण (ओघा)" यह जैन मुनि का लिंग है, अहिंसा का साधन है। आ० कुंद कुंद ने भी आकाश में जाते समय इस मुनिलिंग (बागा) को ही प्रधान माना है।

४—"केसरिका" से यथार्थ प्रति लेखना होती है चारित्र प्राभृत गा० ३६ की टीका में इसी की ही स्वीकृति दी है।

५-जीवाकुल भूमि में जीवों की दया के निमित्त दंडासण रखना चाहिये जिससे उनकी फालियों का परिघ बनाया जाय तो भी दोनों पैर के लिये फासुक जगह मिल जाती है, रात्रिको देह चिंता के लिये जाने आने में दंडासण से ही ईर्यासमिति पाली जाती है।

६-पात्र के अभाव में मुनि को एक स्थान से ही आहार लेना पड़ता है। जिसमें गोचरी की शुद्धी नहीं हो सकती है। गाय चरती है तब थोड़ा २ खाते २ आगे बढ़ती जाती है कहीं एक स्थान से ही घास को समूल नष्ट नहीं कर देती है ऐसा करने से उसकी चरभूमि हरी भरी रहती है। इसका नाम है "गो–चरी"। भौंरा विभिन्न फूलों से अलग अलग रस को पीकर सतुष्ट रहता है। और ऐसा भी नहीं करता है जिससे फूलों को पीड़ा हो इस विधि का नाम है "भ्रामरी" यानी "मधुकरी"। गधा जहाँ चरता है वहाँ से घास बिलकुल खा जाता है यानि बिलकुल सफाचट कर देता है। इस विधि का नाम है "गधाचरी" मुनि को पात्र के अभाव में उपरोक्त कथनानुसार गोचरी और मधुकरी तो हो ही नहीं सकती है। एक स्थान पर अहार लेने से अल्प कौटुम्बिक को तो कभी दुबारा रसोई करनी पड़ती है, आधाकर्मिक औद्देशिकादि दोष भी लगते हैं, गुरुभक्ति साधर्मिक भक्ति या ग्लान वैयावृत्य को तिलांजली ही

जाय ? इस उपस्थिति में देह प्रमाण लम्बा डंडा ही उपकारक है। मुनि को बिना गहराई देखे नदी में उतरना मना है। इसके अलावा डांडा की स्थापना होती है, विहार में मुनि का काल धर्म हो जाय तो दूसरे मुनि उसको डंडा की झोली में उठा सकते हैं, बीमार मुनि भी डंडा के जरिये उठाया जाता है, स्थवीर मुनि डंडा के सहारे विहार कर सकता है। * डंडा रखना भी आवश्यक है।

सारांश—मुनि चारित्र पालन के लिये वस्त्र, पात्र वगैरह उपकरण को रखते हैं, वैसे ही डंडा को रखते हैं।

इसके अलावा और भी जो २ उपधि हैं वे सब किसी न किसी अंश में लाभकारी ही है। उपधि के द्वारा विशेष शुद्ध चारित्र पालन होता है।

दिगम्बर—*विचार पूर्वक अगर देखा जाय तो यह सब बातें सत्य सी प्रतीत होती हैं। फिर भी दिगम्बर आचार्य नग्नता पर ही क्यों जोर देते हैं ?*

जैन—नग्नता व पीछी आदि किसी भी द्रव्य लिंग पर एकान्त जोर देना यह परमार्थः नुकसान कारक ही है। और उनसे ही मोक्ष प्राप्ति मानना यह एकान्तिक कल्पना है सरासरी गलती है। इस सत्य को दिगम्बर आचार्य इस रूप में स्पष्ट करते हैं।

भावो हि पढमलिंगं, ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं ॥
भावो कारण भूदो, गुण दोसाणं जिणा बिंति ॥ २ ॥

गुण दोष का कारण भाव लिंग ही है, उससे द्रव्यलिंग का कोई सम्बन्ध नहीं है।

---

* स्थानक मार्गी मुनि रंग वाली चमकदार और मोटक लकड़ी रखते हैं। यह अनुचित है क्योंकि ऐसी ही लकड़ी रखनी चाहिये जो उपरोक्त कार्य्य में सहायक हो। जैन मुनि के डंडे पर ५ समिति वगैरह का निशान रहता है।

भावेण होइ लिंगी, ण हु लिंगी होइ दव्वमित्तेण।
तम्हा कुणिज्ज भावं, किं किरइ दव्वलिंगेण ॥४८॥

माने-द्रव्यलिंग, नग्नता से कुछ नहीं होता है।

भावेण होइ णग्गो, बाहिर लिङ्गेण किं च णग्गेण।
कम्म पयडीय नियरं, णासेइ भावेण ण दव्वेण ॥ ५४ ॥

निर्मम बनो ? नंगा होने से क्या ? नंगा हो जाने से कर्म का विनाश नहीं होता है।

णग्गत्तणं अकज्जं, भावेण रहियं जिणेहिं पन्नत्तं।
इय नाऊणय णिच्चं, भाविज्जहि अप्पयं धीर ॥ ५५ ॥

देहादिसंग रहिओ, माण कसाएहिं सयल परिचित्तो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, स भावलिंगी हवे साहू ॥ ५६ ॥

देह वस्त्रादि में निर्मम और निष्कषाय मुनि भाव लिंगी है।

ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्ममत्ति मुवाट्ठिदो ॥ ५७ ॥
भावो कारणभूदो, सायाराऽणयार भूदाणं ॥ ६६ ॥
णग्गो पावई दुक्खं, णग्गो संसार सायरे भमई।
णग्गो ण लहइ बोहिं, जिण भावेण वज्जिओ सुइरं ॥६८॥

नग्नता मोक्ष का कारण नहीं है।

भाव सहिदो मुणिणो, पावइ आराहणा चउक्कं च।
भाव रहिदो य मुनिवर, भमइ चीरं दीह संसारे ॥६९॥

नंगा संसार में भटका है।

सेवहि चउविहलिंगं, अब्भिंतरलिंग सुद्धिमावण्णो।
बाहिरलिंगमकज्जं होई फुडं भावरहियाणं ॥ १०६ ॥
भाव समणा वि पावइ, सुक्खाइं दुहाइं दव्व समणा य।
इइ णाउं गुण दोसे, भावेण संजुदो होइ ॥ १२७ ॥

मूर्च्छा रहित—भाव साधु सुखी होता है और नग्न—द्रव्य-साधु दुखी होता है। अतः भाव साधु ही बनना चाहिये।

(आ० कुन्द कुन्द कृत भाव प्राभृत)

धम्मेण होइ लिंगं, ण लिंगमित्तेण धम्मसंपत्ती।
जाणेहि भाव धम्मं, किं ते लिंगेण कायव्वो ॥ २ ॥

नंगा हो जाने से साधुता नहीं आती है। अतः द्रव्यलिंग किसी काम का नहीं है। कार्य साधना में भाव साधुता माने निर्ममत्वादि भाव लिंग की ही प्रधानता है।

(आ० कुन्द कुन्द कृत लिंग प्राभृत)

निश्चयनय मोक्ष मार्ग में द्रव्यलिंग को निकम्मा मानता है

(समय प्राभृत ४४४)

त्यक्तैव बहिरात्मानं ॥ २७ ॥

मोक्ष मार्ग में बहिरात्मा की चर्चा ही त्याज्य है।

परत्राहं मतिः स्वस्मात् च्युतो बध्नात्यसंशयम् ॥ ४३ ॥

मेरा शरीर, मेरा वस्त्र यह विचारना ही आत्मा को बन्धन कारक है, उनके होने पर भी उन्हें अपना नहीं मानना चाहिये।

शरीरे वाचि चात्मानं ॥ ५४ ॥

शरीर को आत्मा मानना, यह अज्ञानता है शरीर जीव से भिन्न ही है, अतः शरीर सवस्त्र हो या अवस्त्र हो, मगर यह आत्मा की मोक्ष को नहीं रोक सकता है।

जीर्णे स्वदेहे ऽप्यात्मानं, न जीर्णं मन्यते बुधः ॥ ६४ ॥

इस श्लोक के आशय को लेकर ऐसा श्लोक भी बन सकता है कि—

सवस्त्रे देहे प्यात्मानं, न सवस्त्रं वेदत् बुधः ॥

देह एव भवो जन्तोर्यल्लिंगं च तदाश्रितम्
जातिवत्तद् गृहं तत्र, त्यत्वा स्वात्म ग्रहं वसेत् ॥ ३९ ॥

शरीर ही संसार है, लिंग उसके अधीन है, जाति के समान पराधिन है, अतः नग्नतादि लिं का आग्रह नहीं रखना चाहिये।

(पं० आशाधर कृत सागार धर्मामृत)

जो घर त्यागी कहावे जोगी, घरवासी कहँ कहँ जुँ भोगी
अंतर भाव न परखे जोई, गोरख बोले मूरख सोई

(बनारसी विलास पृ० १९९)

सारांश-ऊपर के सब प्रमाणों से निश्चित ही है कि अनेकान्त जैन दर्शन को नग्नता या वस्त्र से कोई वास्ता नहीं है। जैन मुनि नंगा हो या वस्त्र धारक हो, किन्तु वह भाव साधु माने मूर्च्छा रहित अवश्य होना चाहिये, वही मोक्ष का अधिकारी है।

मुनि आचार–अधिकार

दिगम्बर—श्वेताम्बर आगम में जिक्र है कि गणधर गौतम स्वामी ने स्कंदक परिव्राजक का सत्कार किया था यह क्या?

जैन—महापुरुष द्रव्य क्षेत्र काल और भाव को सोचकर अपनी प्रवृति करते हैं। आ० कुन्द कुन्द ही प्रवचनसार में-"समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥ २१ ॥ देसं कालं जाणित्ता ॥ ३० ॥ इत्यादि आज्ञा देते हैं।

दिगम्बर शास्त्रों में दृष्टान्त भी मिलते हैं कि—

भ० श्री ऋषभदेवजी ने भरत चक्रवर्ती को स्वप्न का फल कहा, मरिचि का भाविष्य कहा, भ० श्री नेमिनाथ जी ने बलभद्र जी को द्वारिका भंग का निमित्त बताया, आ० कुन्द कुन्द के शिष्यों ने रात होने पर भी देवों से वार्तालाप किया, इत्यादि।

इसी प्रकार श्री गौतम स्वामी ने भी लाभा लाभ को सोच कर ऐसा किया है। वस्तुतः परम ज्ञानियों की प्रवृत्ति फल प्रधान होती है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर शास्त्र में उल्लेख है कि भगवान मुनि सुव्रत स्वामी ने घोड़े को गणधर बनाया था।

जैन—यह झूठी बात है, श्वेताम्बर में ऐसा नहीं लिखा है। हां भ० ने घोड़ा को भर्व समकृत प्रति बोध दिया था, मगर उनके गणधर तो "मल्लीकुमार" वगैरह ही थे।

दिगम्बर—दिगम्बर मुनि एक ही घर से पर्याप्त आहार लेते हैं, ऐसा सब मुनियों को करना चाहिये।

जैन—यदि "गोचरी" ही करना है तो जैन मुनि के लिये एक ही घरका एकान्त विधान नहीं होना चाहिये। एक घर के

आहार विधि में आधाकर्मी आदि अनेक दोष लगते हैं, जिनका विस्तृत खुलासा पात्र की चर्चा में किया गया है, वहां से समझ लेना चाहिये

दिगम्बर—जैनेतर के घरका आहार पानी नहीं लेना चाहिये। कारण? वे पानी को छानते नहीं हैं, और बिना स्नान कराये ही गाय भैंस का दूध निकाल लेते हैं। वे पानी और दूध जैन मुनि के लिये अकल्प्य हैं।

जैन—भगवान् श्री ऋषभदेवजी ने जैनेतरो के घरका आहार पानी लीया है, चौथे आरे के बीच २ में जैन धर्म का लोप हो गया था, तब भ० श्रीशीतलनाथजी वगैरह ने भी जैनेतरो से आहार पानी लीया है। इस हिसाब से तो जैन मुनि को जैनेतर का आहार पानी कल्प्य है। मगर दिगम्बर मुनिजी उनसे आहार पानी लेते नहीं है, कारण! जैनेतर लोग नग्न को अपने घर में लाने को हीचकते हैं एवं आहार पानी देने में भी घृणा करते हैं, और इस हालत में दि० मुनि भी उनके घर जाते नहीं हैं। कुछ भी हो, जैन मुनि विवेकी अजैनो से आहार पानी ले सकते हैं।

दिगम्बर—जैन मुनि को शूद्र का आहार पानी नहीं लेना चाहिये।

जैन—दिगम्बर पं० आशाधरजी श्रावका चार में लीखते हैं कि—जाति हीन भी काल आदि के निमित्त से धर्मी बन सकता है। वैसे शूद्र भी उपस्कार से शुद्ध हो सकता है, इत्यादि।

इस प्रकार दिगम्बर समाज में शूद्र की शुद्धि मानी जाति है फिर दिगम्बर मुनि को उसके आहार पानी लेने में हरजा भी क्या है? मगर आज तो वे जैनेतरो का भी आहार पानी नहीं लेते हैं फिर उस शूद्र का कैसे ले सके!

दिगम्बर मुनिजी शूद्र को अपना शिष्य बना लेवे जैन मुनि बना लेवे, फिर उसके आहार पानी का निषेध कैसा ?

दिगम्बर—हमारे मुनि हमारे लिये भी शूद्र का पानी त्याज्य बताते हैं।

जैन—आप शूद्र के हाथ का सिर्फ पानी नहीं पीते हो परन्तु उनके हाथ का और उनके पानी से धुले हुए एवं सम्मीलित शाक, फल, फूल घी दूध इत्यादि को खाते हो शूद्र की मिठाई तक खाते हो उन्हीं चीजों का आहार मुनिको देते हो, तिर्यञ्च भैंस वगैरह को स्नान से पवित्र बना कर उसका दूध भी मुनि को देते हो और आपके आचार शूद्र भी मुनि को आहार देते हैं। फिर भी आप पानी त्याग की बातें बनाते हो यह कहाँ तक ठीक है ? इतना ही क्यों ? शूद्र तुम्हारे मुनि भी बन सकते हैं। इस हालत में शूद्र के पानी का एकान्त निषेध करना, यह अनुचित आज्ञा है

यहां इतना ही पर्याप्त है कि जैन मुनि आचार शूद्र के घर का आहार पानी ग्रहण नहीं करें, यही न्याय मार्ग है यही स्याद्वाद वचन है।

दिगम्बर—जैन मुनि खड़े खड़े आहार पानी करे

जैन—खडे और लब्धिरहित करभोजी के हाथ से खुराक के अंश गिरते हैं, इससे जीव विराधना और निन्दा होती है। गृहस्थ उन्हें उठाते हैं जिसमें पारिष्ठापनिका समीति का विनाश होता है। खडे २ या चलते चलते खाना पीना तो व्यवहार से भी उचित नहीं है। इसमें आसन सिद्ध नहीं हैं। एकासन द्विआसन आदि व्रत प्रत्याख्यान भी नहीं हो सकते हैं। अतः मुनि पात्र के जरिये शुद्ध स्थान में स्थिर बैठ कर आहार पानी करे, यही प्रसंसनीय मार्ग है।

दिगम्बर—जैन मुनि जी को महाव्रतों से भिन्न प्रत्याख्यान नहीं होता है। हमारे छै आवश्यक में भी प्रत्याख्यान नहीं माना है। कि जैसा श्वेताम्बर में माना जाता है। देखो—

सामायिक, स्तुति, वंदनक, प्रतिक्रमण, वैनयिक और कृति कर्म इत्यादि।

(शुभचन्द्र की अंग पन्नति, पंचास्तिकाय भाषाटीका, ब्रह्म हेमचन्द्र कृत सुभसंधो गा० ११, १२, हरिवंश पुराण सर्ग १०)

सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदनक, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और स्वाध्याय।

(सोम सेन कृत त्रिवर्णाचार अ० १२ श्लो० १६)

जैन—महानुभाव! मर्यादिक मत के सत्कार से दिगम्बर समाज ने उसे उड़ाया है। आवश्यक भाष्य का प्रत्याख्यान अधिकार, पंचाशक, और पंच वस्तु वगैरह में, इस विषय की विशद विचारणा है। अवश्यक छै हैं, १-सामायिक, २-चतुर्विंशतिस्तव, ३ वंदनक, ४ प्रतिक्रमण, ५ कायोत्सर्ग और ६ प्रत्याख्यान।

दिगम्बर विद्वानों में छट्टे आवश्यक के लिये मतभेद है जैसा कि आपने बताया है।

प्रत्याख्यान को उड़ाने से यह मतभेद खड़ा हुआ है मगर आ० वट्ट केर तो "मूलाचार" में छै आवश्यक बताते हैं जिन में प्रत्याख्यान आवश्यक में एकासन, आचाम्ल, चोथ भक्त, छट्ठ, इत्यादि प्रत्याख्यान लिये जाते हैं।

दिगम्बर—मुनि एक दफे आहार करे।

जैन—आपको जैन तपस्या की परिभाषा के खोलने से ही इस मान्यता का उत्तर मिल जायगा।

दिगम्बर—जैन श्रमण के तप की परिभाषा निम्न है .-

समणं छट्ठ-ट्ठम-दसमखमणं समणं च छट्ठ अट्ठमगं,
समणं समणं समणं, छट्ठंच गदोऽसिमो छेदो ॥७८

(आ० इन्द्रनन्दी कृत—छेदपिण्ड गा० ७८)

आयरन्चतुर्दश दिनैर्निनिवृत्तयोगः।
षष्ठेन निष्ठित कृति जिन वर्धमानः॥
शेषा विधूतघन कर्म्म निबद्ध पाशाः।
मासेन ते यति वरास्त्व भवन् वियोगाः॥ २६॥

(समाधि भक्ति श्लो० २९)

माने छट्ठ, अट्ठम, दशमभक्त इत्यादि तप परिभाषा है, इसका अर्थ होता है २ उपवास ३ उपवास ४ उपवास व्रत इत्यादि। यहाँ उपवास के दिनों की दो २ खुराक और उत्तरपारणा (पारणा) तथा पारणा के एक एक दिन की एक एक बार की १ खुराक का त्याग होता है, इस हिसाब से "दो उपवास वगैरह में छै खुराक के त्याग का छट्ठ" इत्यादि संज्ञा दी जाती है। वास्तव में प्रति दिन दो २ वक्त खुराक लेना माना जाता है, उसकी मध्यमवया प्रतिज्ञा छट्ठ आदि शब्दों से होती है

जैन—आप मुनि की तपस्या में प्रति दिन दो २ खुराक का हिसाब लगाते हैं, सब तो ठीक है कि मुनि चाहवें तो दो वक्त आहार करें और उसके त्याग में चतुर्थ भक्त छट्ठभक्त आदि प्रतिज्ञा भी करें। इस विधान से एक वक्त ही आहार बनाना यह एकान्त खण्डन हो जाता है। इसके अलावा तपस्वी आदि के लिये तो विशेष आज्ञा है, वे शारीरिक लाभ के निमित्त विशेष वक्त आहार लें तो भी अनुचित नहीं है।

दिगम्बर—प्रति आहार औषध का नियम में भोजन वगैरह अवश्य न करें।

जैन—वास्तविक मार्ग यही है, और मुनि मांस लेते भी नहीं हैं। किन्तु भूलना नहीं चाहिये कि—जैन दर्शन में उत्सर्ग और अपवाद से सापेक्ष वस्तुनिरूपण है। दि० शास्त्र भी बताते हैं कि देशकालज्ञ स्यापि बाल वृद्ध श्रान्त ग्लान त्वानुरोधेनाऽहार विहारयो रल्प लेप भयेनाऽप्रवर्तमानस्याऽतिकर्कश चरणीभूय क्रमेण शरीरं पातयित्वा सुरलोकं प्राप्योद्वांत समस्त संयमाऽमृत भारस्य तपसोऽनवकाशतयाऽशक्य प्रतिकारो महान् लेपो भवति तन्न श्रेयान् अपवाद निरपेक्षः उत्सर्गः ॥ सर्वथानुगम्यस्य परस्पर सापेक्षोत्सर्गापवाद विजृंभितवृत्तिः स्याद्वादः ॥ ३० ॥

(प्रवचन सार गाथा ३० टीका)

... माने उत्सर्ग और अपवाद को ख्याल में रख कर प्रवृत्ति करना, यही शुद्ध जैन दर्शन है, यही शुद्ध मुनि मार्ग है।

दिगम्बर—समकती को अष्ट मूल गुण में ही मांस का त्याग हो जाता है।

जैन—अष्ट मूल गुण की दिगम्बरीय कल्पना ही नवीन है अतः इस विषय में दि० आचार्यों का बड़ा मत भेद है। देखिये।

१—तत्रादौ श्रद्दधेज्जैनी, माज्ञां हिंसाम पासितुम्।
मद्य मांस मधुन्युज्झेत्, पंचक्षीरिफलानि च ॥ २ ॥
अष्टैतान् गृहिणां मूलगुणान् स्थूल वधादि वा।
फलस्थाने स्मरेद् द्युतं, मधुस्थाने इहैव वा ॥ ३ ॥

(पं० आशाधरकृत सागार धर्मामृत अ० २)

२—३ स्वामि समन्तभद्रमते—५ फल स्थाने ५ स्थूल वधादि, महापुराण मते—५ स्थूलवधादि मद्यमांस और मधु के बजाय द्युत।

(पं० आशाधर कृत सा० टी० सं० १२९६).

४ मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहु र्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥

(रत्नकरंडक श्रावकाचार, श्लोक ६६)

५ हिंसासत्यस्तेयाद् ब्रह्म परिग्रहाच्चबादरभेदात्
द्युतान्मांसान्मद्यात् विरतिर्गृहिणोष्ट सन्त्यमी मूल गुणाः ॥

(महापुराण)

६ मद्यमांस मधुत्यागैः सहोदुम्बर पंचकैः ।
अष्टावेते गृहस्थानां, उक्ता मूलगुणा श्रुते ॥

(आ० सोमदेव कृत चम्पू)

७ कल्याण आलोचना में ८ मूल गुण के स्थान पर ७ कुव्यसन ही लिये हैं (श्लो० १२)

पं० जुगलकिशोर मुख्त्यारजी ने जैनाचार्यों के शासन भेद में इस विषय पर विशद चर्चा की है । आ० कुन्द कुन्द व आ० उमास्वाति जी तो अष्ट मूल गुण का नाम भी नहीं देते हैं, महा पुराण व रत्नकरंड के रचयिता इन गुणों को विरति भाव में शामिल करते हैं। और आ० सोमदेव वगैरह सप्तकव्य में शामिल करते हैं। कितना विसंवाद ?

इनमें से किसी गुण का धारक देशविरति बन जाता है तो ८ गुण के धारक को अविरति मानना आश्चर्य के सिवाय और क्या है ? हरिवंश पुराण में जैन दि० राजा सुदास के मांसाहार का जिक्र है यह भी अष्ट मूल गुण की मान्यता के खिलाफ प्रमाण है। आदि बातों से पता लगता है कि दिगम्बर अष्ट मूल गुण की मान्यता पुरानी नहीं है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर शास्त्र साधुओं को भी मांसाहारी बताते हैं।

(पं० मेधावी कृत धर्मसंग्रह श्रावकाचार अधि० ६)

५ अन्यविवाहकरणा नंगक्रीडा-"विटत्व" -विपुलतृषाः
इत्वरिका गमनं च स्मरस्य पंच व्यतिचाराः ॥

(रत्न करंड श्रावकाचार श्लो० ६०)

६—इत्वरिकागमनं परविवाहकरणं विटत्वमतिचाराः
स्मरतीव्राऽभिनिवेशोऽनंगक्रीड़ा च पंच तुर्ययमे ॥ ५७ ॥
"गमनम्-आसेवनम्" ॥ इत्वरिकागमनादयः पंचातिचारा
स्तुर्ययमे सार्वकालिक ब्रह्मचर्याणुव्रते भवन्तीति सम्बन्धः ॥

(पं० आशाधर कृत सागार धर्मामृत अ० ४)

७ परस्त्रीसंगमा नंगक्रीडा न्योपम सत्क्रिया।
तीव्रता रतिकैतव्ये, हन्युरेतानि सद्व्रतम् ॥
वधूवित्त स्त्रियं मुक्त्वा, सर्वत्रान्यत्र तज्जने।
माता स्वसा तनूजेति, मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे ॥

(पं० सोमदेवसूरिकृत, यशस्तिलक चम्पू)

८ इन अतिचारों के लिये आ० अमितगति स्वामी कार्तिकेय और भट्टाकलंक वगैरह के भिन्न २ मत है तथा मर्थार्थजी के टीकाकार आ० पूज्यपाद आ० अकलंक आ० विद्यानन्दी और श्वेताम्बर आचार्य यहां गमन के विषय में मौन हैं।

(दिगम्बर पं० बलभद्र न्यायतीर्थ का इत्वरिका परिगृहिताऽपरिगृहितागमन लेख, जैन दर्शन व० ५ अं० ५ पृ० ११६, ११६)

१—परयोनिगतो बिंदुः कोटि पूजां विनश्यति।
यावद्वीर्यं स्खलन न भवति तावद् ब्रह्मचारीतिश्रुतिः

० चम्पालाल पांडे कृत चर्चा सागर पृ० २७० समीक्षा पृ० १०५)
म्बर शास्त्र कन्यादान को धर्म रूप मानते हैं और संतुष्ट

(दि० आ० सोमसेन कृत त्रिवर्णाचार अ० ४)

५—जैन राजा सुमित्र ने स्वयं अपनी रानी को कहा कि वह जाकर, उसके एक मित्र की काम वासना की तृप्ति करे, साथ ही न जाने पर उसे दंड देने की धमकी भी दी गई।

(पद्म पुराण स० १२ प्रत्युत्तर पृ० १८, १०३)

६-वारिषेण ने अपनी पहिले वाली बत्तीस ३२ पत्नियों को बुलाया और अपने सामने खड़े हुए एक शिष्यको उन्हें अपने घर डाल लेने के लिये कहा।

(दि० आराधना कथा कोष, प्रत्यु० पृ० १८)

आप वास्तव में देख चूके हैं कि ये सब अनीच्छनीय विधान श्वेताम्बर शास्त्रों के नहीं किन्तु दिगम्बर शास्त्रों के हैं।

इसके अतिरिक्त प्रायश्चित के जरिये शोधा जाय तो प्रायश्चित विधान दोनों शास्त्रों में एकसा ही उपदिष्ट है।

शास्त्रकारों ने परिस्थिति की विषमता और दोषों की तरलमता को भिन्न २ रूपमें बता कर प्रायश्चित दान को एकदम विशद कर दिया है, इस हालत में श्वेताम्बर या दिगम्बर किसी भी जैन मुनि को मांसभोजी या काम भोगी बताना। यह सिर्फ निन्दा रूप ही है।

दिगम्बर—उत्सर्ग और अपवाद दोनों सापेक्ष मार्ग है इस को मद्देनजर रखकर प्रवृत्ति करना चाहिये मगर व्रत भंग नहीं करना चाहिये।

जैन—मुनिको मन, वचन और काया से करना, कराना और अनुमोदन देना इनके त्याग रूप प्रतिज्ञा है, मरणांत कष्ट में भी उसका पालन करना चाहिये यह उत्सर्ग मार्ग है, और इसमें

स कारण फके पड़े यह अपवाद मार्ग है। ये दोनों विधि मार्ग हैं। अपवाद भी देश काल परिश्रम और सहन शीलता के कारण उपयुक्त है, माने, आर्तध्यान और रौद्र ध्यान से बचने के लिये विधि मार्ग है और उस अपवाद सेवन की शुद्धि तो प्रायश्चित से हो ही जाती है।

अपवाद में व्रत प्रतिज्ञा का अविकल स्वरूप नहीं रहता है। जैसे कि—

उत्सर्ग-मुनि किसी जीव की हिंसा न करे।

अपवाद-मुनि नदी को पार करे।

उत्सर्ग-मुनि रात्रि भोजन न करे।

अपवाद-पंचानां मूल गुणानां रात्रि भोजन वर्जनस्य च पराभियोगात् बलादन्यतमं प्रति सेवमानः पुलाकनिर्ग्रन्थो भवति

(दिगम्बर तत्त्वार्थ सूत्र)

उत्सर्ग—दिगम्बर मुनि पांच तरह के वस्त्र को न रक्खे।

अपवाद—दिगम्बर मुनि वस्त्र को पहिने, कम्बल ओढ़े।

(१) चर्यादिवेलायां। तट्टी सादरादिकेन शरीर माच्छाद्य चर्यादिकं कृत्वा पुनः तन्मुञ्चतीति उपदेशः कृतः संक्षेपितो ह्यपवादवेषः। + + सोऽपि अपवादलिंगः प्रोच्यते। उत्सर्ग वेषस्तु नग्न एव ज्ञातव्यः। सामान्योक्तो विधि रुत्सर्गः, विशेषोक्तो विधि रपवादः, इति परिभाषणात्।

(दर्शन प्राभृत गा० २४ की श्रुतसागरी टीका पृ० २१)

(२) "द्रव्यलिंगं समास्थायेति" तस्मिन् कैश्चिदसमर्था महर्षयः शीतकालादौ कम्बलशब्दवाच्यं कौशेयादिकं गृह्णन्ति, न तत् प्रक्षालयन्ति न सीव्यन्ति न प्रयत्नादिकं कुर्वन्ति, अपर काले परिहरन्ति

न्ति। केचित् शरीरे उत्पन्न दोपाः लज्जितत्वात् तथा कुर्वन्ति इति व्याख्याने "आराधना भगवती" प्रोक्ता अभिप्रायेण अपवादरूपं ज्ञातव्यं। उत्सर्गापवादयो रपवादो विधि र्बलवान् इति।

(तत्वार्थसूत्र सर्वार्थसिद्धि की श्रुतसागरी टीका)

(६) श्री पं० जिनदास शास्त्री सोलापुरवाले ने दिगम्बर मुनियों में दो भेद माने हैं। एक उत्सर्ग लिंग धारी और दूसरा अपवाद लिंग धारी। उत्सर्ग लिंग धारी दिगम्बर रहता है। और अपवाद लिंग धारी दिगम्बर दीक्षा लेकर भी कपड़ा ले सकता है। (जनसमुदाय में सवस्त्र रहना और एकान्त स्थान में दिगम्बर रहना) और दिगम्बर मुनि भी कारण की अपेक्षा से अर्थात् जिन के त्रिस्थान दोष है जो लज्जावान् है, ठंडी परिषह सहन करने में असमर्थ है, ऐसे दिगम्बर मुनि को जन समुदाय में सवस्त्र रहना चाहिये। और उस वस्त्र लेने से उनको दोष भी नहीं आता है। प्रायश्चित भी नहीं लेना पड़ता। और उसे अपवाद लिंग कहना चाहिये, ऐसा उनका मत है।

(वीरसं० २४६६ का० शु० ५ का जैनमित्र व० ४१ अं० १)

वास्तव में उत्सर्ग का प्रतिपक्षी अपवाद ही है, इसलिये उत्सर्ग में व्रत का जो स्वरूप है वह अपवाद में कैसे रह सकता है ? जहाँ उत्सर्ग व्यवस्था नहीं कर पाता है, वहाँ अपवाद व्यवस्था करता है, और उत्सर्ग द्वारा जो ध्येय है उसी ही ध्येय को प्राप्त कराता है।

दिगम्बर आचार्य भी एकान्त उत्सर्ग पामी मरने की बातों को महान् रूप में सामिल करके अपवाद की वास्तविकता को अपनाते हैं।

(प्रवचन सार गा० ३० टीका)

दिगम्बर—हमारे पास जिनोक्त असली वाणी तो है नहीं, सब छद्‌मस्थ आचार्य कृत ग्रन्थ ही हैं। इसके लिये हमारे पं० चम्पालालजी और पं० लालारामजी शास्त्री लिखते हैं कि-

वर्तमान काल में जो ग्रन्थ हैं सो सब मूलरूप इस पंचम काल के होने वाले आचार्यों के बनाये हैं। इत्यादि।

(चर्चा सागर चर्चा-२५० पृ० ५०३)

अर्थात् उपलब्ध सब दिगम्बरशास्त्र तीर्थंकरो ने नहीं किन्तु आचार्यों ने बनाये हैं, मगर इन ग्रंथो में सीर्फ नग्न आदि के बारे में जोर दिया है, सब बातों में भी वैसा ही करना जरूरी था, माने ऊपरोक्त अपवाद वगैरह सब बातो का सुधार करना लाजमी था। न मालूम उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया? फल स्वरूप हमारे आजकल के नये विद्वान तो उन ग्रन्थों को भी उड़ाकर नये ग्रन्थ बनाने को तैयार हुए है।

ता० १८-२-१९३८ के संघ अधिवेशन में पाँच वां प्रस्ताव भी हो चुका है कि-

"भा० दिगम्बर जैन संघ का यह अधिवेशन प्रस्ताव करता है कि-समाज में फैली हुई दण्ड व्यवस्था की वर्तमान अव्यवस्था को दूर करने के लिये निम्नलिखित (७) विद्वानों की एक समीति कायम की जाय जो कि शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर इस अव्यवस्था को दूर करने के लिये समाज के लिये उपयोगी दंड व्यवस्था का रूप निश्चित करें" इत्यादि।

माने पुराने दिगम्बरीय ग्रन्थ अप्रमाणिक हैं।

जैन—जहाँ कृत्रिमता है वहाँ रद्दोबदल चलती आती है। "विवेक पतितानां तु भवति विनिपातः शतमुखः" इस न्याय से

आपके शास्त्र बदलते आये हैं और बदलते रहेंगे।

ये पंडित भी गृहस्थ ही हैं, जिनको न ब्रह्मचर्य है, न भक्ष्याभक्ष्य की मर्यादा है न चारित्र है। ये मनमानी लिखें और वह दिगम्बर समाज का शास्त्र बन जाय। मुबारक हो, इन दिगम्बरीय आप्तागम को। महानुभाव! जैन दर्शन अनेकान्त दर्शन है। अपवाद को उड़ाने वाला या एकान्त को मानने वाला, जैन कहलाने के योग्य भी नहीं रह सकता है।

दिगम्बर—मुनि दूसरे को दंडे, बांधे या मारे ऐसा अपवाद तो उचित नहीं है। जैसा कि कालिकाचार्य जीने साध्वी की रक्षा और संघ के हित निमित्त किया है।

जैन—दिगम्बर द्रव्य संग्रह वृत्ति वगैरह में विष्णु कुमार ने वचन छल से बलि को बांधा था ऐसा लिखा है। तथा विद्याधर श्रवण और वज्रकुमार का भी वैसा ही प्रसंग उल्लिखित है। आप इनको ठीक क्यों मानते हैं?

दिगम्बर—धर्मरक्षण के लिये ऐसा करना पड़ा। वे अपनी इन्द्रियों के सुख के लिये ऐसा नहीं करते।

जैन—तब तो आपने अपवाद को स्वीकार कर लिया।

दिगम्बर—यदि ऐसा है तो किसी को बांधे, दंड देवे, मगर उसको जान से मारना ठीक नहीं है। मारने से व्रत भंग होता है।

जैन—क्या तीन योग और तीन कोटि से प्रतिज्ञा धारक मुनि को दूसरे को बांधने में अहिंसा व्रत का उल्लंघन नहीं है? वचन छल करने में सत्य व्रत का भंग नहीं है?

दिगम्बर—प्रमत्त योगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा, और द्वेष बुद्धा अन्यस्य दुःखोत्पाने हिंसा होने पर भी धर्म रक्षा के कारण

यह हिंसा हिंसा नहीं मानी जाती।

यदि जिनसूत्र मुल्लंघंते तदाऽऽस्तिकै र्युक्तिवचनेन निषेधनीयाः तथापि यदि कदाग्रहं न मुञ्चन्ति तदा समर्थैः आस्तिकैः उपानद्भिः गूथ लिप्ताभिः मुखे ताडनीयाः, तत्र पापं नास्ति।

उक्तं चोत्तर पुराणस्य वर्द्धमान पुराणे—
सोपि पापः स्वयं क्रोधा द्रुणी भूत वीक्षणः।
उद्यमी पिंड माहर्तुं, प्रस्फुरद्दशन च्छदः ॥ १ ॥
सोढुं तदक्षमः कश्चिद्, असुरः शुद्धदृक् तदा।
हनिष्यति तमन्यायं, शक्तः सन् सहते नहि ॥ २ ॥
सोपि रत्नप्रभां गत्वा, सागरोपम जीवितः।
चिरं चतुर्मुखो दुःखं, लोभादनु भविष्यति ॥ ३ ॥
धर्मनिर्मूल विध्वंसं, सहन्ते न प्रभावकाः।
"नास्ति सावद्यलेशेन, विना धर्म प्रभावना" ॥ ४ ॥
धर्मध्वंसे सतां ध्वंसः, तस्माद् धर्मद्रुहो ऽधमान् ॥
निवारयन्ति ये सन्तो, रक्षितं तैः सतां जगत् ॥ ५ ॥
(दर्शन प्राभृत गा० २ की श्रुत सागरी टीका पृ० ४)

जैन—तब तो आप अपवाद को धर्म मानने के पक्ष में हैं

दिगम्बर—उत्सर्ग और अपवाद का इन्साफ न देने से हमारे दिगम्बर समाज की कैसी दुर्दशा हुई है। उसका यथार्थ स्वरूप दिगम्बर विद्वान् प्रो० आ० ने० उपाध्ये M. A. फाइनल इस प्रकार बताते हैं।

"आचार शास्त्र में वर्णित उत्सर्ग और और अपवाद मार्गों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि साधु समुदाय में इस भ्रम साध्य प्रबन्ध ने मतभेद के लिये बड़ा अवसर दिया, जब किसी प्रधान आचार्य का स्वर्गवास हो जाता था तब सर्वदा

संघ में फूट पड़ने का भय बना रहता था। दिगम्बर सम्प्रदाय में संघ भेद होने का यही मुख्य कारण है। इस के सम्बन्ध की घटनाओं को जानने के लिये पुरातत्व संग्रह (Epigraphical Record) को सावधानी से अध्ययन करने की आवश्यकता है।

(जैनदर्शन, व० ४ अं० ७ पृ० २९१)

उपाध्ये के इस लेख से स्पष्ट है कि दि० समाज उत्सर्ग और अपवाद में खेंचातानी करने से मूल, नन्दी, माथुर, यापनीय काष्ठा, इत्यादि अनेक टुकड़ों में विभक्त हो गयी है।

जैन—यद्यपि दिगम्बर विद्वान श्वेताम्बर उत्सर्ग और अपवाद पर आक्षेप करते हैं किन्तु दिगम्बर मुनि भी अपवाद और प्रायश्चित से परे नहीं हैं।

श्वेताम्बर शास्त्रों में नमुचि वगैरह का जो उल्लेख है वह धर्म रक्षा की दृष्टि से है और अपवाद रूप होने से माकूल है।

भूलना नहीं चाहिये कि जैन दर्शन में उत्सर्ग और अपवाद से ही सारी व्यवस्था होती है।

दिगम्बर—मुनि को उपासकों के प्रति आशीर्वाद में "धर्मवृद्धि" कहना चाहिये, धर्मलाभ नहीं कहना चाहिये।

जैन—वत्थु सहावो धम्मो, अतः आत्मा को स्वभाव का लाभ हो और विभाव का अभाव हो यही इच्छनीय वस्तु है। इसकारण "धर्मलाभ" कहना ही उचित आशीर्वाद है। इसका अर्थ होता है कि-आत्मा के आठों गुणों की प्राप्ति हो।

मोक्ष योग्य अधिकार

दिगम्बर—मान लो कि वस्त्रधारी मुनि मोक्ष में चला जायगा जबकी गृहस्थ भी केवली होकर मोक्ष में चला जायगा। आचार्य कुंद कुंद स्वामी ने तो समय प्राभृत गा० ४३८, ४० में गृहस्थलींग में मोक्ष की मना की है। तो क्या गृहस्थ मोक्ष में जाता है?

जैन—हाँ? यद्यपि ऐसा क्वचित ही बनता है, परन्तु ऐसा होने में तनिक भी शंका का स्थान नहीं है। जैन दर्शन अनेकान्त दर्शन है। जैन दर्शन भाव चारित्र वाली आत्मा की मोक्ष मानता है, शरीर की या वस्त्रों की नहीं। दिगम्बर शास्त्र भी इस बात के गवाह हैं।

आ० कुंद कुंदजी समय प्राभृत गा० ४३६, ४०, ४१ में भाव आत्मा को ही मोक्ष बताते हैं गा० ४४३ में गृहीलींग ममत्व की मना करते है।

दिगम्बर—श्रावक छट्टे गुण स्थान को भी नहीं पाता है तो फिर मोक्ष को कैसे पा सकता है!

जैन—मूर्च्छावाला छट्टे गुण स्थान को न पावे, यह तो ठीक बात है, किन्तु श्रावक ही नहीं पावे यह कैसे माना जा सकता है? दिगम्बर आचार्य तो गृहस्थ को भी छट्टे सातवें गुणस्थान का अधिकारि मानते है। ये फरमाते हैं कि पंचम गुण स्थानवर्ति श्रावक ध्यान दशा में अप्रमत्त गुणस्थान को पाता है और अंतर्मुहुर्त के बाद में छट्टे में आता है। लिखा है कि—

फिर यही सम्यग् दृष्टि जब अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय को (जो श्रावक के व्रतों को रोकती है) उपशम कर देता है तब चौथे से पाँचवें देश विरत गुणस्थान में आजाता है। इस दरजे में श्रावक

की ग्यारह प्रतिमाएं पाली जाती है इसके आगे के दरजे साधु के लिये है। यहीं श्रावक जब प्रत्याख्यानावरण कषाय का (जो साधु व्रत को रोकते है) उपशम कर देता है। और संज्वलन व नौ कषाय का (जो पूर्ण चारित्र को रोकती है) मंद उदय साथ २ करता है तब पाँचवें से सातवें गुण स्थान अप्रमत्त विरत में पहुँच जाता है छठे में चढ़ना नहीं होता है इस सातवें का काल अन्तर्मुहूर्त का है यहाँ ध्यान अवस्था होती है फिर संज्वलनादि तेरह कषायों के तीव्र उदय से प्रमतविरतनाम छठे गुण स्थान में आ जाता है।

(श्रा कुंद कुन्द कृत पंचास्ति काय गा० १३१ की भाषा टीका, खंड २ पृ० ७३)

इस पाठ से सिद्ध है कि गृहस्थ छठे सातवें गुण स्थान का अधिकारी है, एवं तेरहवें गुण स्थान का भी अधिकारी है। भरत चक्रवर्ती ने गृहस्थ वेष में ही केवल ज्ञान पाया है।

दिगम्बर--दिगम्बर आचार्य भरत चक्रवर्ती के केवल ज्ञान के बारे में कुछ और ही समाधान करते हैं।

१-येपि घटिकाद्वयेन मोक्षं गता भरतचक्री, सोपि जिनदीक्षां गृहीत्वा, विषय कषाय निवृत्ति रूप लक्षणमात्रं व्रतपरिणामं कृत्वा पश्चात् "शुद्धोपयोग" रूप रत्नत्रयात्मके "निश्चयव्रता"ऽभिधाने वीतराग सामायिक संज्ञे निर्विकल्प समाधौ स्थित्वा, केवलज्ञानं लब्धवानिति। परं तस्य स्तोककालत्वात् लोका "व्रतपरिणामं" न जानन्ति। (द्रव्य संग्रह बृहद् वृत्ति)

२—येपि घटिकाद्वयेन मोक्षं गता भरतचक्रवर्त्यादयस्तेपि निर्ग्रन्थरूपेणैव। परं किन्तु तेषां परिग्रहत्यागं लोका न जानन्ति स्तोककालत्वादितिभावार्थः। एवं भावलिंग रहितानां द्रव्यलिंग मात्रं मोक्षकारणं न भवति॥

(सम्मत प्राकृत गाथा भरत गाथाएँ गुणि पृ० २०१)

यानि-भरत चक्रवर्ति गृहस्थी था, मगर शीश महल में सब परि-णाम को पाकर केवल ज्ञानी होकर मोक्ष में गया। यह बात तीसरे युग की है अरुण काल होने के कारण जनता उसके सब परिणाम को नहीं जानती है।

जैन--यह समाधान वास्तविक समाधान नहीं है, क्योंकि उन्होंने विषय कषाय निवृत्ति रूप परिणाम प्रगट किया, निग्रन्थ मत स्वीकारा, केवल ज्ञान पाया, और मोक्ष पाया ये चारों बात भरत चक्रवर्ति के भावलिंग-भावचारित्र की सूचक हैं, इनसे द्रव्य चारित्र की समस्या आप ही आप हल हो जाती है। जनता ने तो जैसा था वैसा ही माना। फिर भी ग्रन्थकार की क्या मट कसी है, कि लोगों पर अजता का आरोप करते हैं?

यह तीसरे युग का प्रसंग है। बाद में चौथे युग में २३ तीर्थंकर होगये, संख्यातीत केवली होगये, मगर किसी ने भी इस आपकी मानी हुई गलती को साफ नहीं किया, यह भी अजीब मान्यता है। जैन जनता तीसरे आरे (युग) से आज तक जिस बात को ठीक मानती है वही बात सच्ची हो सकती है कि सिर्फ द्रव्यसंग्रह आदि के वृत्तिकार कहते हैं वही बात सच्ची हो सकती है, इसका निर्णय पुराण प्रिय या इतिहासविद् करले।

जनता तीसरे युग से आज तक भरत चक्री को "गृहस्थलींग सिद्ध" मानती है, ऐसा ग्रन्थकर्ता का विश्वास है और मोक्ष प्राप्ति में द्रव्यलिंग नहीं किन्तु भावलिंग यानी मनपरिणाम की प्रधानता है यह ग्रन्थकार को अभीष्ट है।

जब तो गृहस्थ भी इस भावलींग यानी भावचारित्र के जरिये केवलज्ञानी और सिद्ध हो सके, यह तो स्वयं ही सिद्ध है।

आ० कुन्द कुन्द स्वामी ने हिंसा, परिग्रह आदि वस्तुओं के मुकाबले में साफ साफ अध्यवसाय की ही प्रधानता बताते हैं। जैसा कि —

अज्झवसिदेण बंधो, सत्ते मारेहि मा व मारेहि ।
एसो बंधसमासो, जीवाणं णिच्छय णयस्स ॥ २८० ॥
एव मालिये अदत्ते, अबम्भचेरे परिग्गहे चेव ।
कीरदि अज्झवसाणं, ज तेण दु बज्झदे पाव ॥ २८१ ॥
वत्थु पडुच्च ज पुण, अज्झवसाण तु होदि जीवाणं ।
णहि वत्थुदो दु बंधो, अज्झवसाणेण बंधो त्थि ॥ २८२ ॥
एदाणि णत्थि जेसिं, अज्झवसाणाणि एवमादीणि ।
ते असुहेण सुहेण व, कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥ २८३ ॥
बुद्धि ववसाओ वि य, अज्झवसाणं मदीय विण्णाणं ।
एक्कट्ठमेव सव्वं, चित्तो भावो य परिणामो ॥ २८५ ॥
एवं ववहारणयो, पडिसिद्धो जाण णिच्छय णयेण ।
णिच्छयणय सल्लीणा, मुणिणो पावंति णिव्वाण ॥ २८६ ॥

आ० कुन्द कुन्दजी समयसार गा० ४४३ में पाखंडलिंग और गृहीलिंग वगैरह में ममता रखने की मना करते ही हैं, साथ साथ सब लिंगों को छोड कर सिर्फ ज्ञान दर्शन व चारित्र को ही मोक्ष हेतु मानते हैं। और २ दिगम्बर आचार्य भी मोक्ष प्राप्ति के लीये नग्नता पीछी आदि बाह्य भेष को नहीं, किन्तु आत्मा के गुणों को ही प्रधान मानते हैं। देखिये—

लिंगं मुइत्तु दंसण-णाण चरित्ताणि सेवंति ॥ ४३६ ॥
दंसण णाण चरित्ते, अप्पाणं जुंज मोक्खपहे ॥ ४४१ ॥
णिच्छदि मोक्खपहे सव्व लिंगाणि ॥ ४४४ ॥

(समयसार प्राभृत)

अयसाण भायणेण य, किं ते णग्गेण पावमलिणेण ।
पेसुण्ण हास मच्छर-माया बहुलेण सवणेण ॥ ६६ ॥
वने ऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां,
गृहेऽपि पंचेन्द्रिय निग्रह स्तपः ।
अकुत्सिते वर्त्मनि यः प्रवर्तते,
विमुक्तरागस्य गृहं तपोवनं ॥ १ ॥

आ० कुंदकुंदकृतभावप्राभृत गा० ६६ श्रुतसागरीटीका (पृ० २१३)

जह सलिलेण ण लिप्पइ, कमलिणिपत्तं सहावपयडीए ।
तह भावेण ण लिप्पइ, कसाय विसएहिं सप्पुरिसो ॥ १५२ ॥
धात्रीबाला ऽसतीनाथ-पद्मिनीदल वारिवत् ।
दग्धरज्जु वदाभासं, भुञ्जन् राज्यं न पापभाक् ॥
अघ्नन्नपि भवेत् पापी, निघ्ननपि न पापभाक् ।
परिणाम विशेषेण, यथा धीवर कर्षकौ ॥ ४ ॥

(आ० कुंद कुंद कृत भाव प्राभृत गा० १५२ और १६६ की श्रुत टीका पृ० २९६; ३०२,)

भावो हि पढमलिंगं, ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं ।
भावेण होई लींगी ॥ ४८ ॥ भावो कारण भूदो ॥ ६
जाणेहिं भावधम्मं ॥ २ ॥
नयत्यात्मानमात्मैव, जन्म निर्वाण मेव च ॥ ७५ ॥
अप्पा तारइ तम्हा अप्पाओ झायव्वो ॥
सममावे जिण दिट्ठं ॥ वगैरह २ ।

पं० बनारसी दास जी बताते हैं कि—

जो घर त्यागे कहावे जोगी, घर वासी कह कहें जुं भोग
अन्तर भाव न परखे जोई, गोरख बोले मूरख सोई

(बनारसी विलास गोरख बचन गा० २ पृ० २०९)

माने-अनेकांत जैन दर्शन में शुभ्ध परिणाम वाला गृहस्थ लींगी भी मोक्ष का अधिकारी है।

दिगम्बर—मूर्च्छारूप परिग्रह का अभाव होने से वस्त्र धारी मुनि मोक्ष में जाता है, गृहस्थ भी मोक्ष में जाता है, तो कभी २ कोई आभूषण धारी भी मोक्ष में चला जायगा।

जैन—जहाँ बाह्य वस्तु की प्रधानता नहीं है वहाँ यह भी होना मुमकिन है। जैनदर्शन मूर्छा न होने के कारण उसको भी मोक्ष मानता है।

समय प्राभृत गा० ४४४ की तात्पर्यवृत्ति में और दिगम्बरीय पाण्डव चरित्र में तप्त लोहा के आभूषण होने पर भी मोक्ष प्राप्ति बताई है। *यद्यपि यह परिग्रह रूप था किन्तु आभूषणों के* अस्तित्व में केवल ज्ञान की रुकावट नहीं मानी है। और उसका कारण वही "ममत्वाभावात्" ही बताया है। अप्रमत्त आत्मा को वस्त्र पीछी या आभूषण है या नहीं है, ऐसी तनिक भी ममत्व विचारणा नहीं होती है। यही कारण है कि वह उसी हालत में मोक्ष तक पहुंच जाता है।

दिगम्बर—तब तो अजैन सन्यासी भी भाव से जैन बनकर क्षपकश्रेणी में चढ़कर केवली होगा, मोक्षगामी हो जायगा!

जैन—सच्चे अनेकान्ती जैन दर्शन को यह भी इष्ट है। मोक्ष के *लिये किसी का ठेका तो है नहीं!* नामजैन नरक में भी जाता है भाव जैन मोक्ष में भी चला जाता है। वल्कलचीरी जैनलिंगी नहीं था अन्यलिंगी था, फिर भी वह मोक्षगामी हुआ। अतः जैन दर्शन साफ २ कहता है कि-

कषाय मुक्तिः किल मुक्ति रेव ॥

समभाव भावियप्पा, लहई मुक्खं न संदेहो ॥

सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः ॥

सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चारित्र वाली आत्मा मोक्षके योग्य है · चाहे वह किसी भी वेश में, जाति में या वेद में हो। माने योग्यता को पाकर अन्य लिंगी भी सिद्ध हो सकता है।

दिगम्बर—शूद्र तो पांचवे गुणस्थान का अधिकारी है। वह मोक्ष में नहीं जाता है। श्वेताम्बर समाज शूद्रों की भी मुक्ति मानता है वह तो उसकी गलती है।

जैन—जैसे कोई भी द्रव्य लिंग मोक्ष का बाधक नहीं है वैसे ही कोई भी जाति मोक्ष बाधक नहीं है। एकेन्द्रिय वगैरह वास्तविक जाति है और ब्राह्मण वगैरह काल्पनिक जाति है, इस हालत में शूद्र मुक्ति का एकान्त निषेध करना, न्याय मार्ग नहीं है। अतएव स्याद्वाद दर्शन शूद्र मुक्ति के पक्ष में है।

दिगम्बर—दिगम्बर समाज शूद्र मुक्ति का निषेध करता है उसका कारण शूद्र का नीच गोत्र है। चारों गति में नारकी तीर्यंच म्लेच्छ·शूद्र और अंतर द्वीपज मनुष्य नीच गोत्री हैं तथा आर्यमनुष्य भोगभूमि के मनुष्य व देव उच्च गोत्री हैं। इससे पाया जाता है कि चन्दन स्फटिक चित्रवर्णी, मारकत वगैरह जो की अष्ट जातियां है जिनकी प्रतिमा बनाई जाती हैं, जल केसर चन्दन फूल वनस्पति का इत्र वगैरह जो कि तीर्थंकर के ऊपर चढ़ाये जाते हैं, अश्व, जिसकी स्थापना होती है, गाय सफेद हाथी मृगराज घोड़ा कामधेनुगाय हंस देशविरतिआदिधर्म के अधिकारी तिर्यञ्च व शूद्र ये सब भी नीच गोत्री हैं, और धर्म द्वेषी साधुद्वेषी समाधि सम्यक्त्व रहित युगलियें अविरतिदेव और संगमक मधमाली जैसे पापीदेव ये स भी उच्च गोत्री हैं।

गोत्र की व्यवस्था इस प्रकार है।

१—संताण कमेणा गयजीवाऽऽयरणस्स गोदमिदि संण्णा।
उच्चं नीचं चरणं, उच्चं नीचं हवे गोदं ॥ १३ ॥

(आ० नेमिचन्द्र कृत गोम्मट सार जीव कांड गा० १३)

२—यस्योदयात् लोक पूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चै र्गोत्रम्।
यदुदयात् गर्हितेषु कुलेषु जन्म तन्नीचैर्गोत्रम् ॥

(आ० पूज्यपाद कृत सर्वार्थ सिद्धि अ० ८ सूत्र १२ टीका)

३—दीक्षायोग्य साध्वाचाराणां साध्वाचारैः कृत सम्बन्धानां आर्य प्रत्ययाभिधान व्यवहार निबन्धनानां पुरुषाणां संतानः उच्चै र्गोत्रम् ॥ तद्विपरीतं नीचै र्गोत्रम्

(आ० भूतबलि कृत षट खंडागम ४ वेदनाखंड ५ वा पयडि अधिकार का सूत्र १२९ की आ० वीरसेन कृत धवला टीका)

४-नीच गोत्र का उदय पांचवे गुण स्थानक तक है

देसे तदीय कसाया, तिरिया उज्जोय णीच तिरियगदी
छट्ठे आहार दुगं, थिण तियं उदय वोच्छिण्णा ॥ २६७ ॥
देसे तदीय कसाया, णीचं एमेव मनुस्स सामण्णे
पज्जत्ते वि य इत्थीवेदा अपज्जत्त परिहीणा ॥ ३०० ॥

(गोम्मट सार—कर्मकांड)

इन पाठों मे शूद्रों का मोक्ष ही नहीं वरन् शूद्रों की दीक्षा का भी निषेध है।

जैन—यह दिगम्बरसम्मत गोत्रव्यवस्था स्पष्ट नहीं है देखिये

१-गोम्मटसार में उच्चं चरणं उच्चं गोदं हवे, नीचं चरणं नीचं गोदं हवे। उच्च आचरण से उच्च गोत्र व नीच आचरण से नीच गोत्र माना है।

२—सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक व श्लोक वार्तिक में-"लोक पूजितेषु", "गर्हितेषु", लोकें मान्य और लोक निंद्यरूप लौकिक व्यवहार को ही गोत्र माना है।*

३-धवला टीका में गोत्र का साधु और असाधु आचार से सम्बन्ध जोड़ा है। यहां साध्वाचार शब्द से "प्रशस्त आचार" लेना है यहाँ "दीक्षा योग्य" शब्द कुछ विचित्र ही है क्योंकि दीक्षा का अभिप्राय मुनि दीक्षा का ही लिया जाय तो देव युगलिक और अभवि मनुष्य को उच्च गोत्री नहीं कहा जायगा, देव किसी की संतान नहीं है, युगलिकों की दीक्षा योग्य साधु आचार वाले से सम्बन्ध और संतानत्व भी नहीं है अतः वे उच्चगोत्री नहीं रहेंगे। मगर दिगम्बर आचार्य उन्हें उच्च गोत्री ही मानते हैं। यदि श्रावक के व्रत भी दीक्षा में सामिल हैं तो पंचेन्द्रिय तीर्यंच भी उच्च गोत्री ठहरेंगे और उनकी उच्चता देवों से भी बढ़ जायगी।

इसके अलावा उस १२६ सूत्र की ही धवला टीका में "नापि पंच महाव्रत ग्रहण योग्यता उच्चैर्गोत्रेण क्रियते" तथा "नाणुव्रतिभ्यः समुत्पत्ती तद् व्यापारः॥" पाठ से भी उपरोक्त लिखित अभिप्राय की पुष्टी होती है।

४-इस प्रकार यह गोत्र व्यवस्था सर्वथा अस्पष्ट है

इस अवस्था में यह मानना पड़ेगा कि सम्यक्त्व या मिथ्यात्व पाप या पुण्य और धर्म या अधर्म के ऊपर गोत्रकर्म का कुछ असर नहीं पड़ता है।

इस विवेचन का सारांश यह है कि-दिगम्बर विद्वान् गोत्र कर्म को आचार पर निर्भर मानते हैं उच्च, नीच आचारों के

---

*गुणैर्गुण वद्भिर्वा अर्च्यन्ते (सेव्यन्ते) इति आर्याः॥
(सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक)

परिवर्तन के साथ उच्च नीच गोत्र थे, उन्हें का भी परिवर्तन मानते हैं जाति और कुल को कल्पना रूप मानते हैं और उच्च आचार वाले शूद्र को जिन दीक्षा की प्राप्ति भी मानते हैं फिर मोक्ष का निषेध कैसे माना जाय । जहां सम्यक् चारित्र है जिन दीक्षा है वहां मोक्ष है ही ।

दिगम्बर—गोत्र का परिवर्तन और जाति आदि कल्पना के लिये दिगम्बर प्रमाण बताइये ।

जैन—दिगम्बर विद्वान गोत्रकर्म की प्रकृति में आपकी परिवर्तन और जाति कुल को असद् रूप मानते हैं
उनके पाठ निम्न प्रकार हैं ।

णवि देहो वंदिज्जइ, णवि कुलो ण वि य जाइ संजुत्तो
को वंदिम गुण हीणो, णहु समणो णेव सावओ-
होइ ॥ २७ ।

शरीर, कुल जाति अथवा लिंग या श्रावक, ये वन्दनीय नहीं हैं; गुण वन्दनीय हैं ।

(आ० कुन्द कुन्द कृत दर्शन प्राभृत)

उत्तम धम्मेण जुदो, होदि तिरिक्खोवि उत्तमो देवो ॥
चंडालो वि सुरिन्दो, उत्तमधम्मेण संभवदि ॥

चंडाल और तिर्यंच धर्म के जरिये उत्तम गति जाते हैं ।

(स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा गा० ४३०)

पूर्वविभ्रम संस्कारात्, भ्रान्तिं भूयोपि गच्छति ॥

विभ्रम की विच्छित्ति करने वाला आत्म ज्ञानी होने पर भी मैं ब्राह्मण हूँ यह शूद्र है ऐसे भ्रम में पुराने विभ्रम संस्कार से पुनः फंस जाता है ॥ ४४ ॥

जीर्ण वस्त्र यथात्मानं न जीर्णं मन्यते तथा।
जीर्णे स्वदेहे प्यात्मानं, नजीर्णं मन्यते बुधः ॥ ६४ ॥

यहाँ पर उत्तरार्ध ऐसा भी बन सकता है कि—

शूद्रे देहे तथात्मानं न शूद्रं मन्यते बुधः

जीर्ण वस्त्र होने पर उसकी आत्मा जीर्ण नहीं मानी जा सकती है (शूद्र देह होने से उसकी आत्मा शूद्र नहीं हो सकती है)

नयत्यात्मान मात्मैव, जन्म निर्वाण मेव च ॥ ७५ ॥

आत्मा ही आत्मा को संसार में फंसाता है और मोक्ष में ले जाता है।

जाति र्देहा श्रिता दृष्टा, देह एवात्मनो भवः ॥
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात् ते ये जाति कृताग्रहाः ॥ ८८ ॥

ब्राह्मण ही मोक्ष को पाता है इत्यादि जाति के आग्रह रखने वाला संसार में बुरी तरह भटकता फिरता है।

जाति लिंग विकल्पेन, येषां च समयाग्रहः ।
तेपि न प्राप्नु वन्त्येव, परमं पदमात्मनः ॥ ८९ ॥

मैं ब्राह्मण हूँ, मैं नग्न हूँ, दिगम्बर हूँ, ऐसा आग्रह मोक्ष का बाधक है परम पद प्राप्ति में रोड़े लगाते है।

(आ० पूज्यपाद कृत समाधि तन्त्र)

न जातिर्गर्हिता काचिद्, गुणाः कल्याण कारणं ।
व्रतस्थमपि चांडालं, तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥

कोई भी जाति निन्दनीय नहीं है, गुण ही कल्याण करने वाले होते हैं। चांडाल-श्रेणी भी व्रत धारी होने पर ब्राह्मण के समान है।

चिन्हानि विटजातस्य, संति नांगेषु कानिचित् ।
अनार्य माचरन् किंचित्, जायते नीच गोचरः ॥

नीच के देह में कोई निशान नहीं होता है हीन आचार वाला ही नीच है।

चातुर्वर्ण्यं यथा चव, चाण्डालादि विशेषणम् ।
सर्वं आचार भेदेन, प्रसिद्धं भुवने गतं ॥

चारों वर्ण आचार भेद के कारण बने हैं।

(आ० रविषेण कृत पद्म चरित्र)

नब्रह्मजाति स्त्विह काचिदस्ति। न क्षत्रियो नापि च वैश्य शूद्रे ॥

(वरांग चरित्र २५-७१)

पहिले तीन आरे में भोग भूमि के मनुष्य थे जो उच्च गोत्री थे बाद में कर्म भूमि में उन्हीं की ही सन्तान उच्च नीच बने दो गोत्र वाली बन गई है छठे आरे में सब नीच गोत्री हो जायेंगे। तत्पश्चात् उन्हीं की संतान फिर दोनों गोत्र वाली बन जायगी और भोग भूमि का प्रारम्भ होते ही सब उच्च गोत्री बन जायेंगे। सारांश संतान परम्परा में उच्च नीच गोत्र का परिवर्तन होता रहता है।

(गोम्मट सार, कर्म कांड, गा० ३८५ वगैरह)

नेक्ष्वाकु कुला द्युत्पत्ती (उच्चैर्गोत्रस्य) व्यापारः ।
काल्पनिकानां तेषां परमार्थ तोऽसत्वात् ।'

इक्ष्वाकु कुल वगैरह काल्पनिक हैं परमार्थ से असत् हैं।

(षट खण्डागम खं० ४ अधि० ५ सू० १२९ की आ० वीरसेन कृत धवला टीका)

मनुष्य जातिरेकैव जातिनामो दयोद्भवा ।
वृत्तिभेदा हि, तद्भेदाच्चातुर्विध्य मिहाश्नुते ॥ ४५ ॥

जाति नाम कर्म के उदय से मनुष्य की एक ही जाति है और ब्राह्मण वगैरह जातियां तो पेशा के अनुसार बनी हुई हैं।

(आ० जिन सेन कृत आदि पुराण स० ३८ श्लो० ४५)

वर्णकृत्यादि भेदानां, देहे स्मिन्नऽदर्शनात् ।
ब्राह्मण्यादिषु शूद्राद्यैः, गर्भाधान प्रवर्तनात् ॥
नास्ति जातिकृतो भेदः मनुष्याणां गवाश्ववत् ।
आकृति ग्रहणात्तस्मा दन्यथा परिकल्प्यते ॥

गाय घोड़ा वगैरह में भिन्नता है, परन्तु ब्राह्मणादि जातिओं में अन्य जातियों से ऐसी कोई भिन्नता नहीं है। वास्तव में जाति भेद कल्पना मात्र ही है।

(आ० गुणभद्रकृत उत्तरपुराण पर्व ७४)

कुलजातीश्वरादि मदविध्वस्त बुद्धिभिः ।
सद्यः संचीयते कर्म, नीचैर्गति निबन्धनम् ॥ ४८ ॥

(आ० शुभचन्द्र कृत ज्ञानार्णव अ० ३१ श्लो० ४८)

देह एव भवो जन्तो, याल्लिङ्गं च तदाश्रितम् ।
जातिश्च तद् ग्रहं तत्र, त्यक्त्वा स्वात्म गृहं वसेत् ॥ ३६ ॥

शरीर ही जीव का संसार है, और लिंग जातियां वगैरह तो शरीर से ही सम्बन्धित रहते हैं। अतएव लिंग व जाति के अभिनिवेश को छोड़कर आत्मा का पक्षपाती बनना चाहिये ॥

(पं० आशाधर कृत सागार धर्मामृतम् अ० ८)

सम्यग् दर्शन संपन्न मपि मातंगदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्म गूढांगारांत रौजसम् ॥ २८ ॥
श्वापि देवो पि, देवः श्वा, जायते धर्मकिल्विषात् ।
कापि नाम भवेदन्या, संपद्धर्मच्छरीरिणाम् ॥ २९ ॥

सम्यक्त्व वाला एवं धर्म युक्त मातंग और कुत्ता भी प्रशंसनीय है वगैरह।

(धर्मसंग्रह श्रावकाचार श्लो० २८–२९)

विप्र क्षत्रिय विट् शूद्राः प्रोक्ताः क्रिया विशेषतः ।
जैनधर्मे पराः शक्ताः ते सर्वे बांधवोपमाः ॥

आचार की विशेषता से ब्राह्मण वगैरह कहलाते हैं, किन्तु धर्म में तो वे सब बन्धु के समान हैं ।

(आ० ....कृत त्रिवर्णाचार धर्म रसिक)

आचारमात्र भेदेन, जातीनां भेद कल्पनम् ।
न जातिर्ब्राह्मणीयास्ति, नीयता क्वापि तात्वीकी ॥
गुणैः संपद्यते जाति गुणध्वंसै र्विपद्यते ।

आचरण के भेद से जाति भेद है । परमार्थ से तो ब्राह्मण आदि कोई नियत जाति नहीं है । गुण के अनुसार जाति बनती है । गुणों के बदल जाने पर जाति भी बदल जाती है ।

(धर्म परीक्षा)

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुस्थितो पि वा ।
ध्यायेत्पंच नमस्कारं, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥
अपवित्रो पवित्रोवा, सर्वावस्थां गतो पि वा ।
यः स्मरेत् परमात्मानं, स बाह्याभ्यंतरे शुचिः ॥ २ ॥

मनुष्य कैसा भी हो किन्तु नमस्कार मंत्र के जाप से वो निष्पाप पवित्र बनता है । अपवित्र भी व्यक्ति उसके जाप करने से बाहिर से और भीतर से पवित्र बनता है ।

(देव शास्त्र गुरु पूजा, जैन सिद्धान्त संग्रह पृ० १८४-१८५)

गोत्र कर्म, यह जीव विपाकि प्रकृति है । नामकर्म, शरीर की भेद व्यवस्था करता है गोत्र कर्म आचरण रूप क्रिया की व्यवस्था करता है, गोत्र कर्म भाव कर्म है । "वास्तव में द्रव्या-

नुयोग की अपेक्षा अन्ततः कोई गोत्र या वर्ण नहीं है"। "वंशक्रम अशुद्धता व कोढ आदि बीमारियां परम्परा तक चलती हैं यह नियम नहीं है।

"सब ही अघातिये कर्म गुण श्रेणि के आरोहण में बेजान समझे जाते हैं। गोत्रकर्म का परिवर्तन तो एक साधारण सी बात है। अघातिया कर्म जीव के दर्शन ज्ञान सम्यक्त्व आदि गुण तो क्या अनुजीव गुण स्पर्शरसगंधवर्णादि का जो ज्ञान है उसका भी घात नहीं करसकता और नीच कुल में जन्म लेनेपर भी कषाय योग के अभाव से व भाव शुद्धि से नीचसंस्कार फल को प्राप्त नहीं होते। क्योंकि कुल संस्कार से बने हुए गोत्र कर्मों का पाक जीवन में होने से जीव के संयम रूप परिणाम हो जाने पर आचरण में स्वभावतः परिवर्तन हो जाता है। यही जीव विपाकी गोत्र-कर्म की प्रकृति का प्रकरणांतर गत यथार्थ अर्थ है"।
"नीच गोत्र की कर्म प्रकृति...... नीच गोत्र रूप हो जाती है"
गा० ४१७, ४२२।

"यह तीनों संक्रमण अपनी २ बंधव्युच्छित्तिसे प्रारंभ होकर क्रमशः अप्रमत्त (७) से लगाकर उपशांत कषाय (११) पर्यंत पूर्ण हो जाते है"

जैसे नीच गोत्र उच्च गोत्र हो सकता है इसी प्रकार उच्च गोत्र भी अपकर्षण करके नीच गोत्र हो जाता है और गोत्र कर्म का संक्रमण होकर सर्व संक्रमण तक होता है।

बंध की अपेक्षा से भी गोत्र का परिवर्तन स्पष्ट है उपशम श्रेणी से उतरते समय सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान में १ अनुत्कृष्ट उच्च गोत्र का अनुभाग बंध होता है वह सादिबन्ध है, २-सूक्ष्म सांपराय से नीचे रहने वाले जीवों के यह अनादि बंध है, ३ अभव्य जीवों के ध्रुव बन्ध है, तथा ४—उपशम श्रेणी वाले

के अनुत्कृष्ट बंध को छोड़कर जो उत्कृष्ट बंध होता है वह अध्रुव है। इस प्रकार अनुत्कृष्ट उच्च गोत्र के अनुभाग बंध में ४ भेद बतलाये।

"उस जगह (सम्यक्त्व वमन के बाद) इस अजघन्य नीच गोत्र के अनुभाग बंध को सादिबंध कहना। फिर उसी मिथ्यादृष्टि जीव को उस अंत के समय में पहले जो बंध है वह अनादि है। अभव्य जीव को यह बंध ध्रुव है। और यहाँ अजघन्य को छोड़ जघन्य हुआ वहां यह अध्रुव है।

"गोत्र कर्म के परिवर्तन का यह कितना स्पष्ट वर्णन है"

(विश्वंभरदासजी गार्गीयका "गोत्र कर्म क्या है ?" लेख, जैनमित्र व० ३९; अंक ३९, ४०, ४१)

A भोग भूमि और कर्म भूमि के जरिये गोत्र का उदयपरिवर्तन पाया जाता है।

"इस यथार्थ घटना से ही सिद्ध है कि गोत्र का उदय, सतालों में बदल जाता है।" (पृ० २६०)

B "संतानक्रम से गोत्र का उदय बदल जाता है" (३३८)

C "हमारी समझ में उनके (अंतर द्वीपज मनुष्य के) भोग भूमि के समान उच्च गोत्र का उदय होना चाहिये। (पृ० ४१४)

(ब्र० शीतलप्रसादजी के लेख, जैनमित्र वर्ष ४० अंक १६, २१, २०)

१७ A तीर्थंकर भगवान का औदारिक शरीर उसी ही भव में बदल कर परमौदारिक बन जाता है वैसे गोत्रकर्म का भी परिवर्तन समझना चाहिये।

B आज कल के ८ करोड़ मुसलमान ये असल में उच्च गोत्र की संतान है, इनमें जो आचार से शुद्ध बनेगा वह उच्च गोत्री बनेगा। वगैरह।

की हड्डियों के भूषणवाले भस्म से भद्द मैले श्मशानों (१६) काले मलीन और चमड़े के वस्त्रवाले, काल श्वपाकी (१८) श्वपाकी भंगी (१६)

(आ० जिनसेनकृत हरिवंश पुराण, सर्ग २६ श्लो० १ से १४)

३—चिरत्काले गते कन्या, प्रासाद्य जिनमन्दिरम्।
सपर्यां महता चक्रे-मनोवाक्कायशुद्धितः ॥ ५६ ॥

(गौतमचरित्र अधि० ३ श्लो ५९ नीच शूद्र कन्या का पूजा पाठ)

४—धनदत्त ग्वाले ने जिनमन्दिर में जिनप्रतिमा के चरणों पर कमल पुष्प चढ़ाया। (आराधनाकथाकोष, कथा ११५)

५—सोमदत्त माली प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता था। (आराधनाकथाकोष)

दिगम्बर— क्या दिगम्बर शास्त्र में शूद्रों की मुनि दीक्षा और मुक्ति का विधान है?

जैन—हांजी है! कुछ २ पाठ देखिये-

१-नापि पंचमहाव्रतग्रहणयोग्यता उच्चैर्गोत्रेण क्रियते,

(षट् खंड, खं० ४ भा० ५ पृ० १२६ की धवला टीका)

यदि यह कहा जाय कि उच्च गोत्र के उदय से पांच महाव्रतों के ग्रहण की योग्यता उत्पन्न होती है और इसी लिये जिनमें पांच महाव्रत के ग्रहण की योग्यता पाई जाय उन्हें ही उच्च गोत्री समझा जाय, तो यह भी ठीक नहीं है।

(दि० पं० जुगलकिशोर मुख्तारजी का लेख, अनेकान्त वर्ष २, किरण १ पृ० १२१)

२-अकम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणस्स जहण्णयं संजम-ट्ठाणमणंतगुणं (चूर्णि सूत्र)

(कषायपाहुड संयमलब्धि अधिकार, चूर्णि)

९—एवं गुणविशिष्टो पुरुषो जिनदीक्षाग्रहण-योग्यो भवति, यथायोग्यं सच्छूद्राद्यपि ।

(आ० कुन्दकुन्दकृत प्रवचनसार की आ० जयसेनकृत टीका)

१० धीवर की लड़की "काणा" क्षुल्लिका होकर व्रत करके स्वर्ग को गई।

११—ऐसी नरक के मांस का खानेवाले मृगध्वज ने मुनिदत्त मुनि से दीक्षा लेकर तप द्वारा घातिया कर्मों का नाश करके जगत्पूज्यता प्राप्त की।

(दि० आराधनाकथाकोष, कथा ५५)

१२-सम्यग्दर्शनसंशुद्धाः, शुक्लवस्त्रसमावृताः ।
सहस्रशो दधुः शुद्धाः, नार्यस्तत्रार्यिकाव्रतम् ।

(आ० जिनसेनकृत हरिवंशपुराण स० २ श्लोक १३३)

"अशुद्ध वंश की उपजी सम्यक्दर्शनकार शुद्ध कहिये निर्मल अर शुक्ल कहिए श्वेत वस्त्र की धरन हारी हजारों रानी अर्यिका भई अर कइ एक मनुष्य चारों ही वर्ण के पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत चार शिक्षा व्रत धार श्रावक भए अर चारों ही वर्ण की कइ एक स्त्री श्राविका भई और सिंहादिक तीर्यंच बहुत श्रावक के व्रत धारते भये। यथाशक्ति नेम लिये तिर्यंच और देव सम्यक् दर्शन के धारक अव्रत सम्यग्दृष्टि हुए जिन पूजा विषै अनुरागी भए।

[दि० पं० दौलतराम जैपुरवालेकृत हरिवंशपुराण स० २ श्लो० १३१ से १३५ की वचनिका जिनवाणी कार्यालय कलकत्ता से मुद्रित पृष्ठ २३ जै० १९–२१]

१३-गोत्र कर्म जीव के असली स्वभाव को घात नहीं करता, इसी कारण अघातीया कहलाता है। केवलज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद अर्थात् तेरहवें गुणस्थान में भी इसका "उदय" बना रहता है,

१६—नागकुमार ने वैश्यापुत्रियों से लग्न किया और अंत में मुनि दीक्षा धारण की। दिगम्बर मुनि सत्य की और दिगम्बर आर्जिका ज्येष्ठा का व्यभिचारजात पुत्र रुद्र दिगम्बर मुनि हो गया। कार्तिकपुर का राजा अग्निदत्त और उसीकी ही पुत्री कृति के संभोग से "कार्तिकेय" और "वीरमती" हुए, कार्तिकेय मुनि दीक्षा धारण कर दिगम्बर मुनि हुए।

(मंगलाल जैन कलकत्तावाले का लेख 'जैनमित्र' व० ४०, अं० १६ पृ० १०८)

१७—कार्तिकेय "भवलींगी" बनकर शुभ गति में गये।

(दि० पं० श्यामनसिंहकृत भ्रमनिवारण पृ० १)

दिगम्बरः—शूद्र अगर दिगम्बर मुनि हुआ तो मोक्ष के योग्य है ही, किन्तु इतने दिगम्बरीय प्रमाण होने पर भी दिगम्बर समाज शूद्रदीक्षा और शूद्रमुक्ति का निषेध क्यों करती है?

जैन—इस शंका का समाधान दिगम्बर विद्वान इस प्रकार करते हैं—

१—अतः दिगम्बराम्नाय के चरणानुयोग में शूद्रों को मुक्ति निषेध की जो व्यवस्था बांधी है, और शूद्र क्षुल्लकों के अलहदा बैठ कर एक लोह के पात्र में आहार लेने की रीति पर आग्रह है, यह पीछे के आचार्यों का अपने देश और समय के अनुसार (हिन्दुओं की प्रसन्नता के अनुकूल पृ० २५) चलाया हुआ व्यवहार है न कि जैनधर्म का विश्वव्यापी सिद्धान्त।

(दि० विद्वान् अर्जुनलाल सेठी कृत शूद्रमुक्ति पृ० १०)

२-चाण्डाल के दर्शन से ब्राह्मण और वैश्य स्त्रियां अपने नेत्र धोती थीं और उन्हें मरवाती थीं। (चित्तसंभूत जातक बौद्ध ग्रन्थ) वेद का शब्द सुन लेने वाले के कानों में कीले ठोक दिये जाते थे (मातंग जातक, सद्धर्म जातक)...

ब्राह्मण धर्म की पूरी छाप लगी हुई मालूम होती है, इसलिये उन्होंने (दिगम्बरी आचार्यों ने) शूद्रों से घृणा, आचमन आदि को जैनियों में भी रखना चाहा है।

(पं० परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थकृत चर्चासागर समीक्षा पृ० ४०-५१)

वस्तुतः दिगम्बर समाज में शूद्रमुक्ति के निषेध के लिये जो नैमित्तिक व्यवहार था उसको, बादके विद्वान् और खास करके भाषा टीकाकार और ब्राह्मणीय प्रभाव से प्रभावित ब्रह्मचारी वगैरहों ने एक सिनाखा रूप बना लिया।

परमार्थ से, जैनदर्शन में शूद्रमुक्ति की मना नहीं है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर बाहुबली को अनार्य मानते हैं।

जैन—यह झूठ बात है। कोई भी जैन शास्त्र बाहुबली को अनार्य नहीं मानता है। काल के प्रभाव से कर्मभूमि और अकर्मभूमिका परिवर्तन होता है। वैसे ही आर्यभूमि और यवनभूमि का परिवर्तन हो सकता है। वास्तव में बाहुबली यवन नहीं था, और यह भूमि भी यवनभूमि नहीं थी। बाहुबली की राजधानी के खंडहर संभवतः रावलपिंडी से करीब २० मील उत्तर में टकिसला के नाम से विद्यमान है।

दिगम्बर—चौथे आरे में आर्य भूमि में म्लेच्छों का निवास नहीं माना जाता है।

जैन—यह आपकी मान्यता कल्पना मात्र है। दिगम्बर विद्वान तो यहां चौथे आरे में म्लेच्छों का होना मानते हैं।

प्रमाण देखिये।

१—चारित्रसार में अहिर भील और समाधिगुप्त मुनि का अधिकार है।

२—[illegible], [illegible] विभावित ।
[illegible] ॥ ३१ ॥
(आ० जिनसेनीय आदिपुराण, पर्व ३१, श्लोक ७९)

३—[illegible] म्लेच्छाः
(श्लोकवार्तिक, अ० ३, सूत्र ३६)

४—अन्तरद्वीपजा म्लेच्छाः परे स्युः कर्मभूमिजाः ॥
कर्मभूमिभवा म्लेच्छाः प्रसिद्धा यवनादयः ।
स्युः परे च तदाचार-पालनाद् बहुधा जनाः ॥
(श्लोक वार्तिक, पृ० ३५०)

५—आर्य खंडोद्भवा आर्या, म्लेच्छा केचिच्छकादयः ।
म्लेच्छखण्डोद्भवा म्लेच्छा, अन्तरद्वीपजा अपि ॥
आर्य खंडोद्भव म्लेच्छ यह आर्य भूमि की वासिन्दा चौथे आरा की म्लेच्छ जाति है ।
(आ० अमृतचन्द्र कृत तत्त्वार्थसार अ० ३, श्लो० २१२)

वैसे ही वैसे अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं ।

सारांश—'यहाँ चौथे आरे में म्लेच्छ नहीं होते हैं' यह दिगम्बरीय मान्यता स्त्रीमुक्ति के विरोध के सिलसिले में चलाई हुई कल्पना मात्र है ।

दिगम्बर—श्वेताम्बर समाज "स्त्री मुक्ति" मानता है यह ठीक है ?

जैन—दिगम्बर आचार्य भी स्त्रीमुक्ति के पक्ष में हैं और यह सर्वथा वास्तविक ही है ।

दिगम्बर—स्त्री जाति में भिन्न २ प्रकार की त्रुटियाँ हैं अतः वो मुक्ति नहीं पा सकती है, जैसे कि—

चित्ता सोहि ण तेसिं, ढिल्लं भावं तहा सहावेण ।
विज्जदि मासा तेसिं, इत्थीसु ण संकया झाणं ॥ २६ ॥

(आ० कुन्दकुन्दकृत सूत्र प्राभृत, गा० २६)

णम्मो देवो णग्गो गुरु णग्गो धर्म तम्हा इत्थीणं ।
ण हंतदि चित्तसोही, चित्त सोहि कथं चरणं ॥१॥

(लोकोक्ति)

जैन—महानुभाव ! त्रुटियां तो जैसी पुरुष में हैं वैसी ही स्त्री में हैं, फिर सिर्फ स्त्री ही मोक्ष में न जाय, यह क्यों ? तीर्थंकर की मातायें, ब्राह्मी वगैरह आर्जिकायें और सीता वगैरह सतीयां ये सब पवित्रता की आदर्श मूर्तियां हैं, सीताजी ने अग्नि प्रवेश किया इत्यादि बलिदान कथायें स्त्रियों की सात्त्विकता का भान करती हैं। मतलब—स्त्री में ऐसी कोई त्रुटी नहीं है कि जो मोक्ष की बाधक हो।

जिस समाज में पूजनीय तीर्थंकर भगवान की शास्त्रोक्त चंदन पूजा वगैरह को देखने मात्र से ही ध्यानभंग—अस्थिरता महसूस होती है, उस समाज में नग्नता के कारण भी अस्थिरता होने का आक्षेप किया जाय तो संभवित है। किन्तु सतीस्त्रियों की कुरबानी सोची जाय तो उक्त आक्षेप निर्मूल हो जाता है।

दिगम्बर—स्त्रियों में "अनृतं, साहस माया" इत्यादि स्वाभाविक दूषण रहे हैं, इसका क्या किया जाय ?

जैन—स्त्रीसमाज में अधिक अज्ञानता के कारण ऐसा हो भी सकता है। किन्तु ये दूषण तो पुरुषों में भी काफी पाये जाते हैं। अधमाधम जीवन के लिये मेघमाली, दृढ़प्रहारी, कमठ समुद्र श्रेष्ठी, मुनिद्वेषी पालक, अलाउद्दीन वगैरह अनेक दृष्टांत मौजूद हैं।

विषय में राजीमती, चन्दनबाला, सीता, सुभद्रा इत्यादि के आदर्श जीवन भी प्रसिद्ध हैं।

भक्तामर श्लो० २२ में स्त्री की ही गौरवगाथा है, देवगण भी जन्मोत्सव के समय स्त्री की पूजा करते हैं, पांचों कल्याणक में स्त्री को धन्यवाद देते हैं, श्री तीर्थंकर भगवान चतुर्विध संघ की ४ आस्थानों में से २ आस्थान स्त्रीसमाज को देते हैं, उनको "णमो तित्थस्स" पाठ से नमस्कार करते और कराते हैं। स्त्रीसमाज की समानता और पवित्रता के लिये इससे अधिक प्रमाण की जरूरत नहीं है।

दिगम्बर-स्त्री, स्त्रीपने में है इस भिन्नता का क्या किया जाय?

जैन-स्त्री और पुरुष में गति जाति काय योग पर्याप्ति वचन लेश्या संघातन संहनन संस्थान प्रमादि संज्ञित्व दर्शन ज्ञान चारित्र आदि के जरिए कुछ भेद नहीं है; यदि भेद है तो सिर्फ शरीर रचना में ही "नामकर्म" के कारण भेद है। नामकर्म की पुद्गल विपाकी पिंडप्रकृतियां शारीरिक भेद कराती हैं॥

दिगम्बर-किन्तु पुरुषचिन्ह स्त्रीचिन्ह वगैरह तो द्रव्य वेद है, ऐसा माना गया है।

पुरिसित्थि-संढ-वेदो-दयेण पुरिसित्थिसंढओ भावे।
णामोदएण दव्वे, पाएण समा कहिं विसमा॥ २७०॥
(गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गा० २७०)

जैन—पुरुषचिन्ह वगैरह नाम कर्म की प्रकृति जरूर है किन्तु "द्रव्य वेद" है।

जैन—यह बेबुनियाद बात है। पुरुषादि की देहरचना नाम कर्म के अन्तर्गत है। औदारिक के अंगोपांगादि तीन भेद हैं

इनमें मूकता, अंधता इत्यादि पाये जाते हैं, उसी तरह लिंगभेद भी पाये जाते हैं, जो द्रव्यवेद नहीं किन्तु "नोकर्म" द्रव्य है। भैंस का दही निद्रा का "नोकर्म" है, इसी प्रकार तीनों लिंग क्रमशः तीनों वेद के "नो कर्म" द्रव्य हैं, यह सर्व साधारण दिगम्बर मान्यता है।

थी-पुं-संढशरीरं ताणं णोकम्म दव्वकम्मं तु।

स्त्री पुरुष और नपुंसक का शरीर उनको "नोकर्म" द्रव्य रूप कर्म है।

(गोम्मटसार, कर्मकाण्ड अधि० १, गा० ७६)

तत्त्वार्थ सूत्र-मोक्ष शास्त्र में द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय के भेद बताये हैं जब कि द्रव्य वेद और भाव वेद का नाम निशान भी नहीं है। फिर भी वेद के ऐसे भेद मानना, यह नितान्त मनमानी कल्पना ही है। उन शरीरों को द्रव्य वेद मानने में और भी बाधा आती है। वेद यह मोहनीय कर्म का अंग है, गोम्मटसार जीवकांड गा० ६ का "वेदे मेहुणसंज्ञा" पाठ मैथुन संज्ञा में ही वेद का अस्तित्व बताता है, इस सत्य को कुचलना पड़ेगा। इसके अलावा जहाँ तक द्रव्य वेद है वहाँ तक द्रव्य मोहनीय कर्म का अस्तित्व मानना पड़ेगा, और केवलज्ञान का निषेध करना पड़ेगा। अन्ततः पुरुष चिन्हादि युक्त शरीर केवलज्ञान का अधिकारी ही नहीं रहेगा। दिगम्बर समाज को यह बात मंजूर नहीं है।

यह तो निर्विवाद मान्यता है कि—चार घातिया कर्म चाहे द्रव्य से विद्यमान हो या भाव से विद्यमान हो, केवलज्ञान को रोकते हैं किन्तु चारों अघातिया कर्म केवलज्ञान को नहीं रोकते हैं। साथ २ में यह भी निर्विवाद है कि पुरुष स्त्री व नपुंसक के शरीर न तो वेद है, न कषाय है, न मोहनीय है, किन्तु स्पष्ट रूप

दिगम्बर मुनिओं को जगत के सामने निंद्य कलंकित जाहिर करती है, इस भूल को उसे सुधार लेना चाहिये । "काहिं विसमा" को झूठा जाहिर कर देना चाहिये और दिगम्बर मुनिमंडली को इस निन्दनीय आक्षेप से बचा लेना चाहिये ।

यदि दिगम्बर शास्त्र छट्टे गुणस्थान में द्रव्य स्त्रीवेद और द्रव्य नपुंसक वेद का उदय विच्छेद और नवमें गुणस्थान में तीनों भाव वेदका उदय विच्छेद बताते जब तो उन दिगम्बर मुनिओं के लिए तीनों वेद का उदय या काहिं समा काहिं विसमा मानना उचित ही था। मगर आ० नेमिचन्द्रजी डंके की चोट ऐलान करते हैं कि-मरद को नवमें गुणस्थान तक पुरुष वेदका उदय होता है, स्त्री वेदका उदय तो उसे कभी भी नहीं होता है (गा० १००) एवं स्त्री को नव में गुणस्थान तक स्त्री वेद का उदय होता है, उसे कभी भी पुरुष वेद या नपुंसक वेद का उदय होता ही नहीं है (गा० १०१)

अतः—पुरुष को तीनों वेद का उदय व वेदपरावर्तन मानना यह दिगम्बर शास्त्रों से खिलाफ सिध्धांत है। वास्तविक बात यही है कि—पुरुष स्त्री व नपुंसक उपशम या क्षपक श्रेणी से नवमें गुणस्थान को पाते हैं वहां तक उन्हें स्वस्ववेदोदय रहता है।

महान् व्याकरण निर्माता दि० आ० शाकटायन वेदभाव के लिये व्यवस्था करते हैं, जिसमें भी वेद परिवर्तन को तर्कणा से भी अग्राह्य बताते हैं देखिये।

'स्तन जघनादि व्यंगे, स्त्री शब्दोऽर्थे न तं विहायैषः
दृष्टः क्वचिदन्यत्र, स्वनिर्मायवदू गौणः ॥ ३७ ॥
'आपाणा स्त्री' स्यादौ, स्तनादिभिस्त्रीलिंगा इति च वेदः
स्त्रीवेदस्यानुबन्धः, पश्यानां शास्त्रपरवोक्तिः ॥ ३८ ॥

न च पुंदेहे स्त्रीवेदोदयभावे प्रमाणभङ्गं च ।
भावः सिद्धो पुंवत्, पुंसोऽपि न नियतो वेदः ॥ ३६॥
पुंसि स्त्रियां स्त्रियां पुंसि, अतश्च तथा भवेद् विवाहादिः ।
यतिषु न संवासादिः, स्यादगतो निष्प्रमाणेष्टिः ॥ ४२ ॥
अनडुहा ऽनड्वाहीं, दृष्टवानड्वाहमनडुहारूढम् ।
स्त्रीपुंसेतरवेदो, वेद्यो नानियमतो वृत्तेः ॥ ४३ ॥
नाम तदिन्द्रिय लब्धेरिन्द्रियनिवृत्तिमिव प्रमाद्यङ्गम् ।
वेदोदयाद् विरचयेद्, इत्यतदङ्गो न तद्भेदः ॥ ४४ ॥
या पुंसि च प्रवृत्तिः, पुंसि स्त्रीवत् स्त्रिया स्त्रियां च स्यात् ।
सा स्वकवेदात् तिर्यक्वद् लाभे मत्तकामिन्याः ॥ ४५ ॥

अर्थात्—वेद कषाय का परिवर्तन नहीं होता है। पुरुष को स्त्री वेदोदय नहीं होता है। अतएव कीसी भी वेद के द्रव्यभाव भेद नहीं हैं स्त्री की शरीर रचना यह नामकर्म का ही भेद है। उसके अस्तित्व में केवलज्ञान हो सकता है एवं स्त्री मोक्ष की अधिकारिणी है।

दिगम्बर—स्त्री को पहिले के "तीन संहनन" का अभाव है अतः मोक्ष नहीं मिलता है। देखिए-

सन्ती छ स्संहडणो, वज्जादि मेघं तदोपरं चापि ।
सेवट्टादि रहितो, पण पण च दुरेग संहडणो ॥ ३१ ॥
अंतिम तिग संहडण स्सुदयो पुण कम्मभूमि महिलाणं ।
आदिम तिग संहडणं, णत्थिति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ३२॥
(गोम्मटसार कर्मकांड गा० ३१, ३२)

माने-स्त्रियों को युगलिक काल में पहिले के तीन संहनन होते हैं पीछे के तीन संहनन नहीं होते हैं बाद में कर्मभूमि होते

ही स्त्रियों को पहिले तीन संहनन नहीं रहते हैं किन्तु अंत के तीन ही रहते हैं।

जैन—विज्ञान के नियमानुसार वस्तु की क्रमशः हानि वृद्धि होना यह तो ठीक बात है किन्तु आपने तो एक ही दुषम से एक दम, एक नहीं, दो नहीं, किन्तु तीन २ संहननों का परिवर्तन कर दिया। वाह जी वाह ! क्या पहिले संहनन वाली सब एक साथ मर गई यानी उन सब को एक साथ में देह पलटा हो गया ? न मालूम ऐसी २ कई कल्पित बातें दिगम्बर शास्त्रों में दाखिल कर दी गई होंगी। वास्तव में दि० शास्त्र तो स्त्री वेद में छै संहनन का उदय मानते हैं। उक्त गा० ३१ में छै संहननों का विधान है। बन्धस्वाधिकार में छै संहनन बताये हैं और गा० १८८ गा० ३१४ इत्यादि कई स्थानों में स्त्री के लिये क्षपक श्रेणी व अयोगिपन वगैरह उल्लेख हैं। फिर भी स्त्रियों के लिये वज्र ऋषभनाराच वगैरह संहननों का निषेध करना यह तो किसी भाषा टीकाकार दिगम्बर विद्वान को ही नई सूझ है।

स्त्री मरकर छट्टे नरक में जाती है कि जहां पहिले तीन संहनन वाले जा सकते नहीं हैं, इसीसे भी स्त्री को छुए के ३ संहनन होना सिद्ध है।

दिगम्बर विद्वान् श्रीमान् अर्जुनलाल सेठी तो स्त्री मुक्ति पृ० ९१ व ९७ में उक्त गाथा को क्षपक ही बताते हैं और दिगम्बर शास्त्रों के अनुसार स्त्रियों को छै संहनन का होना मानते हैं।

दिगम्बर—समकीती मरकर स्त्री वेद में नहीं जाता है, फिर स्त्री वेद में केवल ज्ञान कैसे होवे ?

जैन—समकीती मरकर मनुष्य गति में भी नहीं जाता है फिर तो मनुष्य को भी केवल ज्ञान नहीं होना चाहिये, आपके

दिगम्बर शास्त्रों में भी स्त्री के असहयोगी कुछ बताये गये हैं। जैसा कि—

वेदा हारोत्तिय, सगुणोघं सवरं संढ थी खवगे ।
किण्ह दुग—सुहतिलेसिय वामेवि णं तित्थयरसत्तं ॥

अर्थ-वेद से आहार तक की मार्गणाओं में स्वगुण स्थान की सत्ता है विशेषता इतनी ही है कि क्षपक श्रेणी में चढने वाले नपुंसक स्त्री और पांच लेश्या वाले मिथ्यात्वी को सत्ता में तीर्थंकर प्रकृति नहीं होती है। माने स्त्री क्षपक श्रेणी में चढती है किन्तु तीर्थंकर नहीं बनती है।

(गोम्म० कर्म' गा० ३५४)

मणुसिणी पमत्तविरदे, आहार दुगं तु णत्थि णियमेण ।
(गोम्मट सार जीव कांड गा० ७१४)

अर्थ—मानुषीणी छटे गुण स्थान को पाती है किन्तु उसको आहारकद्विक (पं० गोपालदासजी बरैया के भाषा पाठ के अनुसार आहारक शरीर अंगोपांग) नहीं होता है।

वेदाहारोत्तिय सगुण ठाणाण मोघ आलाओ ।
णवरिय संढि-त्थीणं, णत्थि हु आहारगाण दुगं ॥

अर्थ—वेद से आहार तक की १० मार्गणाओं में स्व स्व गुण स्थान के अनुसार आलापा होते हैं। परन्तु इतना ही है कि नपुं० और स्त्री को आहारकद्विक (आहारककाययोग आहारक मिश्रकाय योग, आ० टी०) नहीं है।

माने स्त्री छटे गुण स्थान में आती हैं, किन्तु उसे आहारकद्विक नहीं होता है।

यहां आहारक और तीर्थंकर प्रकृति के निषेध करने पर भी स्त्री को क्षपकश्रेणी या केवलज्ञान का निषेध नहीं किया है। कारण

यही है कि उनके अभाव में केवल ज्ञान का अभाव नहीं माना जाता है।

इससे स्पष्ट है कि स्त्री केवलिनी और मोक्ष गामिनी हो सकती है।

दिगम्बर—स्त्री आचार्य नहीं होती है और न पुरुष को शिक्षा देती है।

जैन—स्त्री "गणिनी" बनती है, स्त्री समाज की अपेक्षा से यह आचार्य पदवी है, वो "महत्तरा" भी बनती है। क्या स्त्री अपने पुत्र को उपदेश नहीं देती है? और वह ही उसको सन्मार्ग में लाने वाली है। स्वयं दीक्षा लेकर अनेक जीवों को धर्म में लाती है स्थापित कराती है।

दिगम्बर—*दि० पं० न्यामतसिंह का मत है कि एक पुरुष जिस तरह हजारों स्त्रियाँ रख कर प्रति वर्ष हजारों संतान उत्पन्न कर सकती है। क्या स्त्री भी उस तरह कर सकती है? स्त्री वर्ष भर में १ बच्चा कर सकती है। इसलिये पुरुष सबल है स्त्री अबला है मोक्ष नहीं पा सकती है।*

(सत्य परीक्षा पृ० २४ भ्रम निवारण पृ० १२)

जैन—यदि सन्तान की संख्या ही मोक्षगामीके बल-वीर्य का थर्मामीटर है तो सौ पुत्र के पिता ऋषभदेवजी सबल, दो संतान के ही उत्पादक युगलिक मध्यमबल और ब्रह्मचारी नेमिनाथजी वगैरह अबल माने जायँगे, इस हिसाब से तो भ० नेमिनाथ आदि को मोक्ष ही नहीं होना चाहिये था। उस थर्मामीटर से तो कुत्ता सबल और मनुष्य अबल माना जायगा। इतना ही क्यों? सम्मूर्छिम का आदि कारण सबल, और गर्भज का आदि कारण अबल ही माना जायगा। मोक्ष आपके इन सबलों की ही अमानत बनी रहेगी क्या?

महानुभाव ! ऐसी थोथी कल्पनाओं से क्या होता है ! मोक्ष में जाने वाला तो आत्मा ही है। यह निर्विवाद मत है कि सबल आत्मा मोक्ष में जायगी और निर्बल आत्मा संसार में परिभ्रमण करेगी। चाहे वह पुरुष हो या स्त्री।

दिगम्बर—सबल आत्मा उत्कृष्ट ऊर्ध्वगति करे तो मोक्ष में जाती है, उत्कृष्ट अधोगति करे तो सातवें नरक में जाती है। मध्यम बल आत्मा उत्कृष्ट गति करे तो ऊपर, बीच के देवलोक में और नीचा बीच के नारकी स्थानों में जाती है। और अल्प बल आत्मा उत्कृष्ट रूप से शुरू २ के देवलोक में या शुरू २ के नरक में जाती है। इसलिये तय पाया जाता है कि जो आत्मा मोक्ष में जाने की ताकत रखती है वही सातवीं नरकी में जाने की ताकत रखती है और जो आत्मा मोक्ष की ताकत नहीं रखती है वह सातवीं नारकी की भी ताकत नहीं रखती है। यानी जो आत्मा सातवीं नारकी पाने को समर्थ है वही मोक्ष पाने को समर्थ है। सारांश यह है कि आत्मा की शक्ति उच्च या नीच गति करने में ठीक समानता से काम देती है।

संघयणमें भी उत्कृष्टगति निम्न रूपसे बताई है —

संहनन	उ० ऊर्ध्वगति	उ० अधोगति
१ वज्रऋषभ०	मोक्ष	७ नरक
२ ऋषभनाराच	११ देवलोक	६ ,,
३ नाराच	१० ,,	५ ,,
४ अर्धनाराच	८ ,,	४ ,,
५ कीलिका	६ ,,	३ ,,
६ सेवार्त	४ ,,	२ ,,

(जैनधर्मप्रकाश पृ० ५६ अं० ४ सं० १९९१ आषाढ़ पृ० १९८)

अब इस नियम के अनुसार देखा जाय तो मानना अनिवार्य होगा कि स्त्री मोक्ष में नहीं आसकती है कारण ?, स्त्री सातवीं नारकी में भी नहीं जासकती है।

देखिए आगम प्रमाण—

पढमं पुढविमसण्णी, पढमं बिदियं च सरिसवा जंति ।
पक्खी जाव दु तदियं, जाव दु चउत्थीं उरसप्पा ॥ ११२ ॥
आपंचमीत्ति सीहा, इत्थिओ जंति छट्ठि पुढवि त्ति ।
गच्छंति माघवीत्ति, मच्छा मणुया य ये पावा ॥ ११३ ॥
उव्वट्टिया य संता, णेरइया तमतमादु पुढवीदो ।
ण लहंति माणुसत्तं, तिरिक्खजोणी मुवणमंति ॥ ११४ ॥
छट्ठीदो पुढवीदो, उव्वट्टिदा अणंतर भवम्हि ।
भज्जा माणुसलंभे, संजमलंभेण उ विहीणा ॥ ११५ ॥
होज्ज दु संजमलाभो, पंचमखिदि-णिग्गदस्स जीवस्स ।
णत्थी पुण अंतकिरिया, णियमा संकिलेसेण ॥ ११७ ॥
होज्ज दु णिव्वुदिगमणं, चउत्थीखिदि णिग्गदस्स जीवस्स ।
णियमा तित्थयरत्तं, णत्थित्ति जिणेहिं पण्णत्तं ॥ ११८ ॥
तेण परं पुढवीसु, भयणिज्जा उवरिमा दु णेरइया ।
णियमा अणंतरभवे, तित्थयरत्तस्स उप्पत्ती ॥ ११९ ॥
णिरयेहिं णिग्गदाणं, अणंतरभवम्हि णत्थि णियमादो ।
बलदेव वासुदेवत्तणं च तह चक्कवट्टित्तं ॥ १२० ॥

(आ० वट्टकेर 'मूलाचार', परिच्छेद १२)

(मूलाचार, परिच्छेद १२, गाथा १२०)

वैमानिक जीव वहाँ से च्यवन पाकर शलाका पुरुष बन सकता है मगर अनुत्तर विमान से आया हुआ जीव वासुदेव हो सकता नहीं है। आगतिकी कैसी विचित्र घटना है ?

(मूलाचार परिच्छेद १०, गाथा ११६, ११८ से १४१)

इस प्रकार गति की असाध्यता के अनेक दृष्टान्त शास्त्र में अंकित हैं, यानी यहाँ में गतिप्राप्ति की समानता नहीं पाई जाती है।

अतएव स्त्री सातवें नरक पाने में असमर्थ होने पर भी मोक्षको पा सकती है।

दिगम्बर—*वासुदेव और प्रति वासुदेव शुद्ध अध्यवसाय* के न होने के कारण मोक्ष पाने में असमर्थ हैं, भोगभूमि के युगलिक अशुद्ध अध्यवसाय के अभाव से नरक पाने में असमर्थ हैं, और समर्थ शक्तिमान होने पर भी गति और शरीरादि भेद के कारण शुद्ध अध्यवसाय की अंतिम सीमा को नहीं पहुँच सकता है अतः मोक्ष पाने में असमर्थ है, किन्तु स्त्री मोक्ष पाने में समर्थ है तो सातवीं नरक पाने में असमर्थ क्यों है ?

जैन—जैसे वासुदेव आदि में शुद्ध अध्यवसाय का अभाव है, युगलिक में अशुद्ध अध्यवसाय का अभाव है, पशु में मोक्ष के योग्य शुद्ध अध्यवसाय का अभाव है वैसे ही अबला में स्त्री शरीर और मार्दव होने के कारण सातवें नरक के योग्य अशुद्ध अध्यवसायों का अभाव है। वह चाहे जितनी क्रूर बने, मगर पुरुष की समता नहीं कर सकती है। वासुदेव [illegible] वगैरह अशुद्ध अध्यवसाय की आखिरी सीमा तक पहुँच जाते हैं। अतः वे सातवें नरक तक जाते हैं, किन्तु शुद्ध अध्यवसाय की सीमा तक नहीं आ सकते हैं यानी मोक्ष में नहीं जा सकते हैं। वैसे ही स्त्री शुद्ध अध्यवसाय

की अंतिम दशा तक पहुँचती है। और मोक्ष को पाती है। किन्तु अशुद्ध अध्यवसाय की अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँचती है इसलिये सातवीं नारकी में नहीं जा सकती है। यह सप्रमाण बात है कि किसी में उर्ध्वगति की सामर्थ्य विशेष है किसी में अधोगति की। अथवा यों भी कहा जाय कि किसी में बंध की सामर्थ्य विशेष है है किसी में निर्जरा की, तो भी ठीक है। स्त्रीका शरीर उत्कृष्ट आयु बंध के अभाव का उर्ध्व गति के, अधिक सामर्थ्य का, या उत्कृष्ट निर्जरा शक्ति का नमूना है। स्त्री की अशुद्ध भावना अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँचती है।

परमाधामी पुरुष ही होता है स्त्री नहीं होती है, यह समस्या भी स्त्री जाति में आन्तरिक क्रूरता न होने का प्रबल प्रमाण रूप है।

दिगम्बर—स्त्री में शुद्ध भावना की विशेषता है और अशुद्ध भावना की अल्पता या मर्यादा है, इस के लिये प्रमाण क्या है?

जैन—आज कल का विज्ञान भी उक्त बात को ही पुष्ट करता है। पाश्चात्य विद्वान मानते हैं कि स्त्री नम्र होती है। मातृत्व भावना से ओत प्रोत रहती है। वह संघर्ष अशान्ति के बजाय शान्ति को ही अधिक पसंद करती है। इस विषय में जनवरी सन् १९३८ ई॰ के "मोडर्न रीव्यु" में भिन्न २ विद्वानों के मत प्रकाशित हुए हैं (पृ॰ २७) जिनका सार निम्न प्रकार है।

स्त्री की हर एक अंगोपांग पुरुष की अपेक्षा भिन्न बनावट का है × × इसलिये स्त्रियों के शरीर में मधुरता व नम्रता अधिक पाई जाती है।

शारीरिक कमी होने पर भी स्त्रियों में वीरता व साहस पाया जाता है। जब संकट आता है तब स्त्री दृढ़ रहती है शत्रुओं से

अपने बच्चों की रक्षा करती है । और अपनी इज्जत बचाती है। यह वीरता मानसिक है, और शारीरिक बल से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है ।

यांत्रिक क्षेत्र में स्त्री का दरजा पुरुष से नीचा है यह जाँच व अनुभव से सिद्ध है कि कुछ काम स्त्रियाँ अच्छा कर सकती है जब कि कुछ काम पुरुष अच्छा कर सकते हैं ।

स्त्री का मन पुरुष की अपेक्षा भिन्न प्रकार का है हेतु यही है कि उनको माता पने का भारी काम करना पड़ता है । वे शान्ति से सहन कर सकती हैं, भक्ति कर सकती हैं जिन बातों की पुरुष में अयोग्यता है । माता के समान कोमल मन रखने वाली स्त्री पुरुष के व्यवसायों में बराबरी नहीं कर सकती है ।

(प्रो॰ कृष्ण प्रसन्न मूरूका, सॅगविक साहब वगैरह)

स्त्रियों को शान्ति स्थापना की बहुत आवश्यकता विदित होती है ।

स्त्रियाँ जिस प्रकार घर का प्रबन्ध बड़ी चिन्ता और अच्छाई के साथ कर लेती हैं वे उसी भाँति जगत में शान्ति को भी स्थापित कर सकती हैं । शान्ति स्थापक मंडली में बड़ी २ स्त्रियां मेम्बर हैं । लेंडन की मिस स्टाइंट ने एक पुस्तक लिखी है (Wanen in warld History) इसमें दुनियाँ की स्त्रियों ने क्या २ वीरता पूर्ण काम किये हैं, उनका कथन है ।

(मॉडर्न रिव्यु पृ॰ ०९ केदारनाथ गुप्त का लेख)

दिगम्बर ब्रह्मचारी श्रीयुत शीतलप्रसादजी ने मॉडर्नरिव्यु के उक्त लेख का सार दिया है और लिखा है—

"इस लेख का सार यह है कि स्त्रियों का शरीर, मन व उनकी बुद्धि औसत दरजे पुरुष के बराबर नहीं है इसलिये उनको कोमल

काम करने चाहिये"।

(जैन मित्र, व० ३९ अं० २३ पृ० ३६० ता० १४-४-३८)

इन वैज्ञानिक प्रमाणों से निर्विवाद है कि स्त्री जाति की ऋजुता है, नम्र, धीर, साहसिक, सहनशील और कोमल होती है। उससे कठोर काम होना मुश्किल है। माने—स्त्री साहस, नम्रता, धीरता इत्यादि गुणों से कर्म की निर्जरा करने वाली और मोक्ष की अधिकारिणी है। पुरुष के योग्य कठोर काम करने में असमर्थ होने से सातवें नरक में नहीं जाती है।

इसके अलावा वर्तमान में भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्री जाति में अधिक सहृदयता होने के अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण मिलते हैं जैसे— खून, कतल, चोरी, बलात्कार, लूट और दगाबाजी इत्यादि अधम कार्यों में कितने पुरुष और स्त्रियों की औसत कितनी २ है? इसका खुलासा अदालती दफ्तरों से मिल सकता है। साधारण तया ऐसे क्रूर कार्यों में मर्दों की संख्या ही अधिक मिलेगी।

अब पचक्खान, सामायिक, तपस्या इत्यादि कार्यों में तो स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कई गुनी बढ़ जाती है।

एक महर्षि ने ठीक ही कहा है

सत्त्वस्थो मुनि नो गतिः परिणामः प्रायो न साहसाद्वे ।
नो सिन्धु प्रतिनिपातु पातकभया यस्या न वैराग्यता ॥
हीनाम् पुरुषस्तो स्त्रियो मृदुमता सत्त्वा प्रशान्ताशय
क. सिद्धि प्रतिपत्ति न विपुल संकर्मणो मायया ॥ १ ॥
अर्हन्नाम मह महेन्द्र महिमा कीर्तिपूर्ण यां गुणैः ॥ १ ॥

इस प्रकार भिन्न २ प्रमाणों की उपस्थिति में मानना पड़ता है कि स्त्री सातवें नरक में न जाय, किन्तु मोक्ष में जाय, यह होना अत्यन्त स्वाभाविक है।

मानें—स्त्री मोक्ष में जाय, इस सिद्धांत में तनिक भी शंका नहीं है।

दिगम्बर—असल में तो स्त्री जिनेश्वर देव की अभिषेक आदि पूजा भी नहीं कर सकती है।

जैन—अनेकान्त दर्शन ऐसा संकुचित नहीं है कि जिसमें ईश्वर की पूजा के लिये भी पुरुष ही ठेकेदार हो।

भूलना नहीं चाहिये कि तीर्थंकर भगवान अवेदी हैं वीतराग हैं पतित पावन हैं मरद और जनाना उनके पुत्र पुत्री हैं इनके स्पर्श से उनको किसी भी प्रकार का वेदोदय नहीं होता है, अतः पुरुष और स्त्री तीर्थंकरदेव की सब तरह की पूजा कर सकते हैं करते हैं। तीर्थंकर की प्रतिमा लाखों के मन्दिर या रथ में बैठाने से सराग प्रतिमा नहीं मानी जाती है एवं स्त्री के स्पर्श से भी सराग नहीं मानी जाती है।

दिगम्बर शास्त्र भी स्त्री के लिये जिन पूजा बताते हैं। जैसा कि—

पूर्वमष्टान्हिकं भक्त्या, देव्यः कृत्वा महामहम्।
प्रारब्धा जिनपूजार्थं, विशुद्धेन्द्रियगोचराः ॥ १४० ॥
धाराभिः पंचवर्णैश्च, स्वजमाल्यानुलेपनैः।
दीपैश्च बलिभिश्चूर्णैः पूजां चक्रुर्मुदान्विताः ॥ १४१ ॥

(आ० जटासिंह नन्दि कृत वरांग चरित्र स० १५ पृ० १४०)

उपोपविष्टा प्रयुनैव मार्द्दं।

(वरांग चरित्र स० २२ श्लो० ७१, पृ० २२०)

कियत् काले गते कन्या, आसाद्य जिनमन्दिरम्।
सपर्या महता चक्रुः मनोवाक्काय शुद्धितः ॥ ५६ ॥

तीन बड़ कन्याओं ने पूजा की (गौतम चरि० अधि १)

[illegible]

[illegible]

[illegible]

([illegible])

[illegible]

([illegible] पृ० १८९)

दिगम्बर—जब दिगम्बर समाज स्त्री दीक्षा का ही निषेध करती है तो फिर स्त्री को मोक्ष कैसे मिल सकती है।

जैन—दिगम्बराचार्य भी पांचवें छट्ठे और सातवें गुणस्थान की उदय विच्छेद प्रकृतियों में स्त्री का निषेध नहीं करते हैं फिर कैसे माना जाय कि स्त्री को मुनि दीक्षा नहीं है।

देसे तदिय कसाया, तिरिया उज्जोय णीच तिरिय गदी।
छट्ठे आहारदुगं, थीणतियं उदय वोच्छिण्णा ॥ २६७ ॥

(गोम्मटसार कर्म० गा० २६७)

पाँचवें गुणस्थान में प्रत्याख्यानी ४ कषाय, तिर्यंच आयु, उद्योत, नीचगोत्र व तिर्यंचगति का, और छट्ठे गुणस्थान में आहारक शरीरद्विक व निद्रा ३ का उदय व्युच्छेद होता है ॥२६७॥

सातवें गुणस्थान में सम्यक्त्व प्रकृति व अन्तिम ३ संहनन का उदयव्युच्छेद होता है ॥२६७॥ इसमें साफ प्रकट है। कि इन गुणस्थानों में स्त्री वेद या स्त्री जाति का निषेध नहीं है। . . .

अतः यो मुनि दीक्षा ले सकती है। उसके "स्त्री वेद मोहनीय कर्म" का उदयविच्छेद नव में गुणस्थान में हो जाता है।

यदि नग्नता का ही आग्रह हो तो स्त्री के लिये नग्न रहना भी कोई मुश्किल बात नहीं है। देखो ! स्त्री पति आदि के निमित्त सर्वस्व वालि कर देती हैं, भाँति २ के कष्ट सहती है, जिन्दा ही अग्नि में प्रवेश कर सती होती है, जौहर करती हैं तो वह धर्म के लिये कष्ट सहे तपस्या करे और नग्न बन कर रहे उसमें कौन सी असंभव बात है ? अत एव दिगम्बर शास्त्र भी स्त्री दीक्षा की हिदायत करते हैं।

खुद तीर्थंकर भगवान ही चारों संघों में श्रमणी (आर्जिका) का पवित्र स्थान रखकर स्त्रीदीक्षा फरमाते हैं। जहां आर्जिका का अभाव है वहां सम्पूर्ण जैन संघ ही नहीं है, इस हालत में स्त्रीदीक्षा भी अनिवार्य हो जाती है।

दिगम्बर—इसमें तो जरा सी शंका नहीं है कि स्त्रीदीक्षा सिद्ध है तो स्त्री मुक्ति भी सिद्ध है। ऊपर का अनुसन्धान स्त्री दीक्षा के पक्ष में है. किन्तु इस विषय में दिगम्बर शास्त्रों में साफ २ उल्लेख क्या है ? यह स्पष्ट कर देना चाहिये।

जैन—दि० शास्त्र स्त्रीदीक्षा और स्त्रीमुक्ति को स्वीकार करते हैं। कतिपय प्रमाण निम्न प्रकार हैं :—

दिगम्बर प्रथमानुयोग शास्त्रों के प्रमाण—

१-मन्त्रीश्वरामात्य पुरोहितानां पुरप्रधानर्द्धिमतां गृहिण्यः।
नृपाङ्गनाभिः सुगति प्रियाभिः, दिदीक्षिरे ताभिरमा तरुण्यः
(आचार्य कृत वरांग चरित स० ३० श्लो० ६९ स० ३१ श्लो १११)

२-भरतस्यानुजा ब्राह्मी, दीक्षित्वा गुर्वनुग्रहात्।
गणिनीपद मार्याणां, सा भेजे पूजितामरैः॥ १७५॥

रराज राजकन्या सा, राजहंसीव सुस्तना ।
दीक्षा शरन्नदी शील-पुलिन स्थल शायिनी ॥ १७६ ॥
सुंदरी चात्त निर्वेदा, तां ब्राह्मी मन्वदीक्षत ।
अन्ये चान्याश्च संविग्ना, गुरो प्राव्राजिषु स्तदा ॥ १७७ ॥

(आ० जिनसेन कृत आदि पुराण पर्व २४)

शामिता चक्रवर्तीष्ट-कांतयाऽऽशु सुभद्रया ।
ब्राह्मी समीपे प्रव्रज्य, भाविसिद्धिश्चिरं तपः ॥ २८८ ॥
कृत्वा विमाने मानुत्तरे, ऽभूत्कल्पे ऽच्युते ऽमरः ॥

(—आदि पुराण पर्व—४७)

३-जिनदत्तार्यिकाभ्यर्णे, श्रेष्ठीभार्या च दीक्षिता ॥ २०६ ॥

(आ० गुण भद्र कृत उत्तर पुराण पर्व ७१, देव की पुत्र पूर्वभव)

तथा सीता महादेवी पृथिवी सुन्दरी युताः
देव्यः श्रुतवती क्षांति-निकट तपसि स्थिताः ॥ ७१२ ॥
सीताजी अच्युत देवलोक में गईं । ७१६ ।

(उत्तर पुराण पर्व ६८ सीताधिकार)

भ० महावीर स्वामी के साधु आर्यिका - श्रावक और श्राविका की संख्या का वर्णन है । इनमें एलक क्षुल्लक का नाम निशान नहीं है ।

(महावीर संघ) (उत्तर पुराण प० ७४ श्लो० ३७१, ३७९)

चंदना साध्वी (उत्त० प० ७४ श्लो० ३७६)
सुमतानामिनी, गुणवती आर्या (उत्त० ७६ श्लो० १६४, १६७)
पांचवें आरा की अन्तिम आर्यिका सर्व श्री ।

(उत्त० पर्व ७६ श्लो० ४३१)

ये सब आर्याएं पांच महाव्रत धारिणी थीं, छट्ठे, सातवें गुण

स्थान की अधिकारिणी थी, श्रावक (ब्रह्म० एलक क्षुल्लक आदि) और श्राविका को पाँचवाँ गुण स्थान होता है।

४—राजीमती की दीक्षा (पर्व० ५६ श्लो० १३० से १३४) द्रौपदी दीक्षा प्रमाण (प० ६३ श्लो० ७८) धन श्री मित्र श्री की दीक्षा (प० ६४ श्लो० १३) कुन्ती द्रौपदी सुभद्रा आदि की दीक्षा (प० ६४ श्लो० १४४) जय कुमार मुनि १२ अगपाठी, और सुलोचना आर्या ११ अंग पाठी (पर्व १२ श्लो० ५२)

तीर्थंकर की आर्यिका की संख्या (प० ६० श्लो० ४१-७८)

(आ० द्वि० जिनसेन कृत हरिवंश पुराण)

५—सम्यक् दर्शन संशुद्धाः, शुद्धैक वसना वृताः ।
सहस्रशो दधुः शुद्धाः नार्य स्तत्रार्यिका व्रतम् ॥ १२३ ॥

यदुवंश की उपजी सम्यक् दर्शनधार शुद्ध काहजे। निर्मल और शुद्ध कहिए श्वेत वस्त्र की धारनहारी हजारों रानी अर्यका भई।

(जिनवाणी कार्यालय-कलकत्ता से मुद्रित पं० दौलतराम जैपुर निवासी कृत हरिवंश पुराण स० २, श्लो० १२३ की वचनिका, पृ० १३-१८)

६-वसुदेव की पत्नी प्रियंगुसुन्दरी ने जिनदीक्षा ली थी। ७-अनंग सेना नाम की वेश्या ने वेश्यावृत्ति को छोड़कर जिनदीक्षा ली और स्वर्ग को गई। ८-ज्येष्ठा आर्यिका ९-शिवभूति ब्राह्मण की पुत्री देववती के साथ शम्भु ने व्यभिचार किया, बाद में यह भ्रष्ट देववती विरक्त होकर हरिकांता आर्जिका के पास दीक्षा लेकर स्वर्ग गई।

दिगम्बरीय द्रव्यानुयोग शास्त्रों के प्रमाण—

१—दिगम्बरों के नन्दीगण पुन्नागवृक्ष और मूलसंघ के अनुयायी यापनीय संघवाले "यथायापनीयतंत्र" ग्रंथ की चोट

जाहिर करते हैं कि—

"णो खलु इत्थी अजीवो, ण या वि अभव्वा, ण या वि दंसण विरोहिणी, णो अमाणुसा, णो अणारिउप्पत्ती, णो असंखेज्जाउआ, णो अइ कूरमइ, णो ण उवसंतमोहा, णो ण सुद्धाचारा, णो असुद्धबोंदी, णो ववसायवज्जिआ, णो अपुव्वकरण विरोहिणी; णो णवगुणठाण रहिया, णो अजोगा लद्धीए, णो अकल्लाण भायणं ति, कहं न उत्तमधम्म साहिग त्ति" ।

(मुनिचन्द्र कृत ललितविस्तरा पृ० १०६)

स्त्री जीव है, भव्य है सम्यक्त्व युक्त है, मनुष्य है, आर्योत्पन्न है, संख्यात वर्ष की आयु वाली है, अक्रूर बुद्धि वाली है, उपशान्त मोहनीय है, शुद्धाचारिणी है, शुद्ध बोन्दि है, व्यवसाय युक्त है, अपूर्वकरण साधिका है। नवम गुणस्थान सहित है, लब्धियोग्य है, कल्याण के पात्र रूप है, फिर भी वो उत्तम धर्म की साधिका नहि है, यह कैसे माना जाय ?

२—दिगम्बराचार्य शकटायन फरमाते हैं कि—

मायादिः पुरुषाणामपि, द्वेपादि प्रसिद्ध भावश्च ।
षण्णां संस्थानानां, तुल्यो वर्णो श्रयस्यापि ॥ २८ ॥
"स्त्री" नाम मन्दसत्वा, उत्संग समभ्रता न तेनात्र ।
तत्कथ मनल्प धृत्तयः, सन्ति हि शीलाम्बुधेर्वेलाः ॥ २६ ॥
संत्यज्य राज्य लक्ष्मी–पति पुत्र भ्रात् बन्धु सम्बन्धम् ।
परिव्राज्य वहायाः कि मसत्वं सत्यभामादेः ? ॥ ३२ ॥
अन्तः कोटी कोटी स्थितिकानि, भवन्ति सर्वकर्माणि ।
सम्यक्त्व लाभ एवा, उशेषो प्यत्तयकरो मार्गः ॥ ३४ ॥
अष्टशत मेक समये, पुरुषाणा मादिरागमः॥ ३५ ॥
क्षपक श्रेण्यारोहे, वेदेनोच्येन भूतपर्वेण ।

क्षीति नितरामभि मुख्येर्थे युज्यते नेतराम् ॥ ४० ॥
मनुषीषु मनुष्येषु, चतुर्दशगुणोक्ति गायिकासिद्धौ ।
भावस्त यो परिहृप्य ०००० नवस्यो नियत उपचारः ॥४१॥
विगतानुवाद नीतौ, सुरकोपादिषु चतुर्दश गुणाः स्युः ।
नव मार्गणान्तर इति, प्रोक्तं वेदे ऽन्यथा नीतिः ॥ ४५ ॥
न च बाधकं विमुक्तेः, स्त्रीणामनु शासनं प्रवचनं च ।
संभवति च मुख्येर्थे, न गौण इत्यार्यिका सिद्धिः ॥ ४६ ॥

सारांश-पुरुष और स्त्री दोनों में माया आदि, द्वेष आदि, छै संस्थान वगैरह समान रूप से हैं। स्त्री राज्य लक्ष्मी पति,पुत्र,भाई बन्धु वगैरह को छोड़कर दीक्षा लेवे फिर भी उसे श्रमण क्यों माना जाय ?

एक समय में १०८ पुरुष मोक्ष में जाय, उसके अनुसन्धान में भी स्त्री मोक्ष सिद्ध है। क्षपक श्रेणी में "अवेदि" बनने के बाद भी वो पूर्वकाल की अपेक्षा से स्त्री मानी जाती है। मनुष्य और मनुष्यणी दोनों १४ वे गुण स्थान में जाते हैं तब तो आर्यिका-मोक्ष स्वयं सिद्ध है।

नव मार्गणाद्वार में पुरुष व स्त्री के लिये एकता है सिर्फ वेद में पुरुष और स्त्री का भेद है। स्त्री मुक्ति का बाधक कोई प्रमाण नहीं मिलता है, स्त्री मुक्ति की आज्ञा व प्रवचन मिलते हैं।

(स्त्री मुक्ति प्रकरण)

३—दिगम्बर भट्टारक देवसेन लिखते हैं कि—

आ० जिनसेन के गुरुभ्राता विनयसेन के शिष्य कुमारसेन ने सं० ७५३ में काष्ठासंघ चलाया, और स्त्री दीक्षा की स्थापना की (दर्शन सार गा०) इतिहास कहता है कि श्वेताम्बर दिगम्बर के भेद होने के बाद दिगम्बर समाज में स्त्री दीक्षा को स्थगित कर दिया था, तीन संघ का ही शासन चल रहा था। अतः

मुमकिन है कि आ० कुमारसेन ने दिगम्बर आर्यिकासंघ चलाया।

४—आ० पूज्यपाद स्पष्ट करते हैं कि—

येनात्मना नुभूया हमात्म नैवात्मनात्मनि।
सोहं न तन्न मा नासौ, नैको न द्वौ न वा बहु ॥ २३ ॥

आत्मा आत्म भाव को पाता है तब उसे ज्ञान होता है कि मैं न पुरुष हूं, न नपुंसक हूं और न स्त्री हूं। अर्थात् आत्मा आत्मा ही है, और मोक्ष में वही जाता है। पुरुष स्त्री, नपुंसक शरीर मोक्ष में नहीं जाते हैं।

त्यक्त्वैव बहिरात्मानम् ॥ २७ ॥

मैं पुरुष हूं, इत्यादि बहिरात्म भाव को छोड़ो।

यो न वेत्ति परं देहात् ॥ ३२ ॥

दृष्यमानमिदं मूढः, त्रिलिङ्ग मव बुध्यते ॥ ४४ ॥

बेचारा कम अक्ल आदमी मैं पुरुष हूं, मैं नपुंसक हूं, तू स्त्री है, ऐसा मानता है, जब कि मोक्षगामी आत्मा इन लिंगों से रहित है। उसके तो लिंग ज्ञानादि हैं।

शरीरे वाचि चात्मानं० ॥ ५४ ॥

शरीर को आत्मा मानना, यह अज्ञानता है। अतः पुरुष मोक्ष जाय, स्त्री नहीं, इत्यादि कहना भी अज्ञानता है।

जीर्णे स्वदेहे प्यात्मानं, न जीर्णं मन्यते बुधः ॥ ६४ ॥

इसके अनुकरण में ऐसा श्लोक भी बन सकता है।

स्त्रियो देहे तथात्मानं, न स्त्रियं मन्यते बुधः।

स्त्री का शरीर होने से आत्मा स्त्री नहीं बनती है।

लिङ्गं देहाश्रितं दृष्टं, देह एवात्मनो भवः

मगर भूलना नहीं चाहिये कि नवम गुणस्थान के पहिले या बाद में पर्याप्त पुरुष को स्त्रीवेद और अपर्याप्तपन का उदय कभी भी नहीं होता है।

यह भी ख्याल में रखना चाहिये कि पर्याप्त स्त्री को भी पुरुषवेद, नपुंसक वेद और आहार द्विक का उदय कभी नहीं होता है।

(कर्म गा० ३००—३०१)

और नवम गुण स्थान में वेद का उदय विच्छेद होने के पश्चात वे अवेदि होते हैं।

पुरुष, स्त्री और नपुंसक ये तीनों क्षपक श्रेणी करते हैं। तेरहवें गुण स्थान में पहुँचते हैं किन्तु स्त्री और नपुंसक तीर्थंकर नहीं बनते हैं क्योंकि उन दोनों में तीर्थंकर नाम की प्रकृति सत्ता में ही नहीं होती है।

(गोम्मट सार कर्मकांड गा० ३४४)

थी पुरुमोदय चडिदे, पुव्वं संढं खवेदि थीअथ्थी।
संढस्सुदये पुव्वं, थी खविदं संढ मत्थिथि ॥ ३८८ ॥

क्षपक श्रेणी में चढ़ने समय पुरुष नपुंसकवेद का स्त्री नपुंसक वेद का और नपुंसक स्त्रीवेद का प्रथम क्षपण करते हैं। (कर्म० गा० ३८८)

वेदे मेहुण संणा ॥ ६ ॥

वेद है, वहां तक "मैथुन संज्ञा" है।

(गोम्मटसार जीवकाण्ड गा० ६)

थावर काय प्पहुदी संढो, सेसा असण्णी आदी य।
अणियट्टि स्स य पढमो, भागोत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ६८४

नपुंसकवेद स्थावरकाय मिथ्यादृष्टि आदि से लेकर अनिवृत्ति के प्रथम भाग तक होता है और शेष दोनों वेद असंज्ञी पंचेन्द्रिय से आगे

अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग तक होते हैं।

(गोम्म० जीवकांड गा० १८७)

अनिवृत्ति गुण स्थान में मैथुन विच्छेद होता है

(गोम्म० जीव० गा० ७०१)

मणुसिणि पमत्त विरदे, आहार दुगं तु णत्थि णियमेण।
अवगद वेदे मणुसिणि सण्णा भूद गदिमासेज्ज ॥ ७१४ ॥

मनुष्यिणी जब प्रमत्त गुण स्थान में होती है तब उसे आहार द्विक तो कतई होता ही नहीं है। और नवम गुण स्थान के ऊपर अवेदी हो जाती है तब भी वो भूतगति न्याय से "मनुष्यिणी" संज्ञा पाती रहती है।

(गोम्मट सार, जीवकाण्ड गा० ७१४)

वेद से आहार तक की १० मार्गणा वाले ऊपर के गुणस्थान को प्राप्त करते हैं मगर विशेषता इतनी है कि नपुंसक और स्त्री छठे गुण स्थान में आहारकद्विक को नहीं पाते हैं।

(गोम्मटसार जीव० गा० ७२३)

गोम्मटसार के कथन का सारांश यह है कि पुरुष स्त्री और नपुंसक ये सब क्षपकश्रेणी द्वारा मोक्ष में जाते हैं. किन्तु फरक इतना ही है कि स्त्री और नपुंसक को आहारक द्विक नहीं होता है प्रत्याख्यानकषाय का क्षय पुंवेद के क्षय के पूर्व ही हो जाता है, स्त्री और नपुंसक की संज्ञा अवेदी दशा में भी उन्हें दी जाती है और तीर्थंकर पद नहीं होता है।

६—आ० कुन्द कुन्दजी ने "बोध प्राभृत" गा० ३३ में "वेद" बताया है। उसकी "श्रुतसागरी" टीका में लिखा है कि

वेद- स्त्री, पु० नपुंसक वेदत्रय मध्ये ऽर्हतः कोपि वेदो नास्ति। अरिहंत वेदरहित हैं (पृ० १०१) याने स्त्री पुरुष और नपुंसक ये तीनों ९ वें गुण स्थान के बाद अवेदी कहे जाते हैं और अवेदी ही मोक्ष के अधिकारी हैं।

जैन—इस बात को दिगम्बर समाज ठीक २ समझ ले तो जैन समाज में एक बड़े एकान्ताग्रह से खड़ा हुआ सम्प्रदायवाद का आज ही अन्त होजाय। अनेकान्तवादी जैनों का फर्ज है कि इसके लिये उचित प्रयत्न करे और जैनसंघ को पुनः अविभक्त संघ बनावें।

दिगम्बर—ऊपर के पाठों में षंढ दीक्षा और षंढ मुक्ति का भी विधान मिलता है तब तो षंढ मुक्ति भी दिगम्बर शास्त्रों से सिद्ध हो जाती है।

जैन—दिगम्बर शास्त्र नपुंसक को भी मोक्ष मानते है। मगर उसमें संभवतः इतनी विशेषता है। कि वो नपुंसक असली नहीं, किन्तु कृत्रिम नपुंसक होना चाहिये।

गोम्मटसार कर्म्म कान्ड गा० ३०१ में पर्याप्त स्त्री को पुरुष वेद और षंढ वेद के उदय की ही मना की है और पुरुष को सिर्फ स्त्री के उदय की ही मना की है। इसी से स्पष्ट है कि—पुरुष किसी निमित्त से षंढ बन जाता है, वह षंढ "कृत्रिम षंढ" है और वही मोक्ष का अधिकारी है।

जिनवाणी गांगय को कृत्रिम नपुंसक मानती है और उसको मोक्ष गामी भी बताती है।

सारांश-दिगम्बर शास्त्र स्त्री मुक्ति के साथ षंढमोक्ष की भी हिदायत करते हैं माने "षंढ मोक्ष" मानते हैं

प्रथम भाग समाप्त

गुणस्थानका व्यवस्था द्वारा ही हो सकता है। केवली भगवानमें जिस २ कर्मप्रकृतिका उदय विच्छेद हो जाता है, उस २के कार्य का भी अभाव हो जाता है, यह सीधी-सादी बात है। तो आप उनकी उदय प्रकृति और उदय विच्छेद प्रकृति का विश्लेषण करें, जिससे-केवलीओंकी रहन-सहन और प्रवृत्ति का बहुत खुलासा मिल जायगा।

दिगम्बर-केवली भगवानको १२२ उदय प्रकृतिमें से घातीये ४ कर्मकी सब प्रकृतियाँ और अघातिये ३ कर्मकी कुछ २ प्रकृतियां एवं ८० कर्मप्रकृतिओंका "उदय विच्छेद" हो जाता है, जो इस प्रकार है।

(१) १ मिथ्यात्वमोहनीय, २ आतप, ३-५ सूक्ष्मादि तीन। (२) ६-९ अनन्तानुबन्धी चार, १० स्थावर, ११ एकेन्द्रियजाति, १२-१४ विकलेन्द्रियजाति। (३) १५ मिश्रमोहनीय। (४) १६-१९ अप्रत्याख्यान चतुष्क, २० से २५ वैक्रीयादि षट्क, २६ नरकायु, २७ देवायु, २८ मनुष्यगतिआनुपूर्वि, २९ तीर्यंच०आनु०, ३० दुर्भग, ३१ अनादेय, ३२ अयशकीर्ति, (५) ३३-३६ प्रत्याख्यान चतुष्क, ३७ तिर्यंचआयु, ३८ उद्योत, ३९ नीचगोत्र, ४० तिर्यंचगति। इन ४० कर्मप्रकृतियोंका उदय विच्छेद होने पर मुनिपना प्राप्त होता है।

(६) ४१-४२ आहारकशरीर युग्म, ४३ स्त्यानर्धि, ४४ प्रचला प्रचला, ४५ निद्रानिद्रा इन ४५ प्रकृतिका उदय विच्छेद होने पर अप्रमत्त गुणस्थान प्राप्त होता है।

(७) ४६ सम्यक्त्व मोहनीय, ४७ सेवार्त, ४८ कीलिका ४९. अर्धनाराच। (८) ५०-५५ हास्यादि षट्क।

(९) ५६ नपुंसकवेद, ५७ स्त्रीवेद, ५८ पुरुषवेद, ५९-६१ सं. क्रोध मान माया। (१०) ६२ सूक्ष्म सं. लोभ। (११) ६३ नाराच, ६४ ऋषभ नाराच। (१२) ६५से ८० ज्ञानावरणीय पंचक, दर्शनावरणीय चतुष्क, निद्रा, प्रचला, अंतराय पंचक। इन ८० प्रकृतिओंका उदय विच्छेद होनेसे मनुष्य केवली होता है।

(गोम्म० कर्म० गा० २६५ से ३००)

केवली भगवानको ४ कर्म और ४२ उत्तर प्रकृतिका "उदय" हो सकता है, वे इस प्रकार हैं।

(१३) १ शातावेदनीय या अशातावेदनीय, २ वज्रऋषभनाराच संघयण, ३ निर्माण, ४-५ स्थिर-अस्थिर, ६-७ शुभ, अशुभ, ८-९ सुस्वर, दुस्वर, १०-११ शुभ विहायोगति, कुविहायोगति, १२-१३ औदारिकयुग्म, १४-१५ तैजस, कार्मण, १६-२१ संस्थानषट्क, २२-२५ रूप, रस, गंध, स्पर्श, २६-२९ अगुरु लघु, उपघात, पराघात उश्वास, ३० प्रत्येक शरीर।

(१४) ३१ शाता या अशातावेदनीय, ३२ मनुष्यगति, ३३ पंचेन्द्रिय जाति, ३४ सुभग, ३५-३७ त्रस, बादर, पर्याप्त, ३८ आदेय, ३९ यशःकीर्ति, ४० तीर्थंकर नाम, ४१ मनुष्यायु, ४२ उच्च गोत्र। इनमेंसे ३० प्रकृतिका उदय विच्छेद होनेपर "सयोगी गुणस्थान" और शेष १२ प्रकृति का उदय विच्छेद होते पर "सिद्ध पद" प्राप्त होता है।

(गोम्म० कर्म० गा० २७१, २७२)

वास्तवमें यह निश्चित है कि-केवली भगवान को तेरहवें गुणस्थानमें १२० बंध प्रकृतिओंमें से १ शाता वेदनीयका बंध (गोम्म० क० गा० १०२), १२२ उदय प्रकृतिओंमें से ४२ प्रकृतिओं का उदय (गा० २७१, २७२), १२२ उदीरणा प्रकृतिओंमें से शाता, अशाता और मनुष्यायु सिवाय की उदय योग्य ३९ प्रकृतिओंकी उदीरणा (गा० २७९ से २८१) और १४८ सत्ता प्रकृतिओंमें से ८५ प्रकृतिओंकी सत्ता (गा० ३४०, ३४१ कवि पुष्पदंतकृत 'अपभ्रंश महापुराण' संधि ९ गा०...) होती हैं।

केवली भगवानको ४ कर्म उदयमें रहते हैं—

१ आयुकर्म—केवली भगवानको मनुष्यायु उदयमें है, केवलज्ञान होने के बाद कोई केवली भगवान तो क्रोडों वर्षों से भी अधिक आठ वर्ष न्यून क्रोड पूर्व तक जिन्दे रहते हैं। उनका आयु अनपवर्तनीय होता है।

२ नामकर्म—आयुष्य है वहां तक शरीरस्थिति अनिवार्य है। इसीसे केवली भगवानको मनुष्य गति, औदारिक शरीर, संघयण, निर्माण, पंचेन्द्रियजाति वगैरह ३८ प्रकृति उदयमें होती है।

३ गोत्र—मनुष्यगति है-शरीर है वहां तक गोत्र भी रहता है। नीचगोत्र-१४ वें गुणस्थान तक सत्तामें रहता है, किन्तु दीक्षा

प्रकृतियों के बिना खोले यथार्थ ज्ञान होना मुश्किल है अतः इनका अलग २ विचार और समन्वय करना चाहिये।

इसमें भी सबसे पहिले वेदनीय कर्म का विचार करो, कि बाद में और २ कर्म का विचार करना आसान हो जायगा।

दिगम्बर—वेदनीय कर्म का बंध १३ वे गुणस्थान तक, उदय १४ वे गुणस्थान तक, उदीरणा छठे गुणस्थान तक, (गो० क० गा० २७९ से २८१) और सत्ता १४ वे गुणस्थान तक होती है। इसकी साता और असाता ये दो प्रकृतियां हैं। १४ वे गुणस्थान तक दोनों प्रकृतियां उदय में रह सकती हैं। यह "जीवविपाकी" कर्म-प्रकृति है। जीवविपाकी ७८ हैं, जिनमें वेदनीय भी है। केवली भगवान को दोनों वेदनीय रहती हैं। और उसी के जरिये ११ परिषह होती है। देखिये

(१) मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥

क्षुत् पिपासा० ॥९॥

एकादश जिने ॥११॥

वेदनीये शेषाः ॥१६॥

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नेकोनविंशतिः ॥१७॥

(दिगम्बर मोक्षशास्त्र अध्याय ९)

(२) उक्ता एकादश परीषहाः। तेभ्योऽन्ये शेषा वेदनीये सति भवन्तीति वाक्यशेषः। के पुनस्ते ?

क्षुत्-पिपास-शीतो ष्ण-दंशमशक-चर्या-शय्या-वध-रोग-तृणस्पर्श-मलपरीषहाः।

(आ० पूज्यपाद अपरनाम आ० देवनन्दिकृत सर्वार्थसिद्धि)

(३) (जिने) तेरहवें गुणस्थानवर्ति जिनमें अर्थात् केवलि भगवानके (एकादश) ग्यारह परिषह होती हैं। छद्मस्थ जीवों को वेदनीय कर्म के उदय से १ क्षुधा, २ तृषा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दंश मशक, ६ चर्या, ७ शय्या, ८ वध, ९ रोग, १० तृणस्पर्श और ११ मल ये ग्यारह परिषह होती हैं, सो केवली भगवान के भी वेदनीय का उदय है, इस कारण केवली को भी ११ परिषह होना कहा है।

(श्रीयुत पन्नालालजीकृत मोक्षशास्त्र भाषा टीका दिगम्बर एकादश, ११ वां [illegible], पृष्ठ ८१)

५ डंसमसकपरीषह—डंस मसक माखी तनु काटैं, पीडैं बन पक्षी बहुतेरे। डसैं व्याल विष हारे बिच्छू लगैं खजूरे आन घनेरे॥ सिंह स्याल सुण्डाल सतावैं, रीछ रोझ दुख देहिं घनेरे। ऐसे कष्ट सहैं सम भावन, ते मुनिराज हरो अघ मेरे ॥१०॥

६ चर्यापरीषह—चार हाथ परवान परख पथ, चलत दृष्टि इत उत नहीं तानैं। कोमल चरण कठिन धरती पर, धरत धीर बाधा नहीं मानैं॥ नाग तुरङ्ग पालकी चढ़ते, ते सवादि याद नहीं आनैं। यों मुनिराज सहैं चर्या दुःख, तब दृढ़कर्म कुलाचल भानैं॥

७ शयनपरीषह—जो प्रधान सोनेके महलन, सुन्दर सेज सोय सुख जोवैं। ते अब अचल अंग एकासन, कोमल कठिन भूमिपर सोवैं॥ पाहन खण्ड कठोर कांकरी, गड़त कोर कायर नहीं होवैं। पांचो शयन परीषह जीतैं, ते मुनि कर्म कालिमा धोवैं ॥१२॥

८ वधबन्धनपरीषह—निरपराध निर्वैर महामुनि, तिनको दुष्ट लोग मिलि मारैं। कोई खैंच खम्भ सैं बांधै, कोई पावक में परजारैं॥ तहां कोप करते न कदाचित्, पूरब कर्म विपाक विचारैं। समरथ होय सहैं वध बन्धन, ते गुरु भव भय दारण हमारैं ॥१३॥

९ रोगपरीषह—वात पित्त कफ श्रोणित चारों, ये जब घटैं बढ़ैं तनु माहीं। रोग संयोग शोक जब उपजत, जगत जाय कायर हो जाहीं॥ ऐसी व्याधि वेदना दारुण, सहैं सूर उपचार न चाहीं। आतम लीन विरक्त देह सों, जैन यती निज नेम निवाहीं ॥१४॥

१० तृणस्पर्शपरीषह—सूखे तृण अरु तीक्ष्ण कांटे, कठिन कांकरी पांव विदारैं। रज उड़ आन पड़े लोचनमें, तीर फांस तनु पीर विथारैं॥ तापर पर सहाय नहीं वांछत, अपने करसे काढ न डारैं। यों तृणपरस परीषह विजयी, ते गुरु भव भव दारण हमारैं ॥१५॥

११ मलपरीषह—यावज्जीव जल न्हौन तजो जिन, नग्न रूप वन थान खड़े हैं। चलै पसेव धूप की बेला, उड़त धूल सब अंग भरे हैं॥ मलिन देह को देख महामुनि, मलिन भाव उर नाहिं करें हैं। यों मल जनित परीषह जीतैं तिनहिं हाथ हम शीश धरे हैं ॥१६॥

इनमें से एक भी दूषण केवली भगवान में नहीं होता है।

जैन—केवली भगवान के भूख, प्यास, स्वेद, रोग आदि होने का प्रमाण दिगम्बर शास्त्रोंमें भी उपलब्ध हैं। जैसा कि—

केवली भगवान को शाता, अशाता, उदयमें रहते हैं अतः भूख आदि की मना नहीं हो सकती है, उनको ११ परिषह होती हैं, जिनमें भूख प्यास वध रोग और मल भी शामिल हैं। मल परिषह है तो निहार है, स्वेद भी है। सिर्फ तीर्थंकरों को अतिशय के जरिये जन्मसे ही स्वेद की मना है। घातिकर्मज अतिशयों में निःस्वेदता का सूचन नहीं है इस दिगम्बरीय पाठ से केवली भगवान को स्वेद सिद्ध हो जाता है। अशाता का उदय है, रोग परिषह है, तो रोग भी होता है।

पांचों इन्द्रिय तीनों बल श्वासोश्वास व मनुष्यआयु ये १० प्राण उदय में हैं वहां तक "जीवन" रहता है (बोध प्राभृत ३५, ३८) और उन १० प्राणों के छूटने पर प्राण विच्छेदरूप "मृत्यु" भी होता है। वधपरिषह भी इस मान्यता की ताईद करता है।

वेदनीय कर्मके बंध उदय और सत्ता होनेसे पुण्य पाप भी हैं, अस्थिर, अशुभ, दुस्वर वगैरह पाप प्रकृति हैं। स्थिर जिन नामकर्म वगैरह पुण्य प्रकृतियाँ हैं।

ये सब बातें दिगम्बर शास्त्रों से सिद्ध हैं।

इनके अलावा दिगम्बर शास्त्रमें १४ ग्रन्थी माने गये हैं उनका विवेक करने से भी केवली के १८ दूषण कौन २ हैं, यह स्वयं समझमें आ जाता है। देखिए—

> क्षेत्रं वास्तु धनं धान्यं, द्विपदं च चतुष्पदं।
> हिरण्यं च सुवर्णं च, कुप्यं भाण्डं बहिर्दश ॥१॥
> मिथ्यात्ववेदौ हास्यादि-षट् कषायचतुष्टयं।
> रागद्वेषौ च संगाः स्यु-रन्तरंगाश्चतुर्दश ॥२॥
>
> (दर्शनप्राभृत गा० १४ टीका, भावप्राभृत गा० ५६ टीका)

मिथ्यात्व, तीनों वेद, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग और द्वेष ये १४ अभ्यंतर ग्रंथ हैं। क्षपकश्रेणीमें इनका अभाव हो जाता है, अथवा यों कहा जाय तो भी ठीक है कि-बाह्य निर्ग्रन्थों में निर्दिष्ट चतुर्थ

निर्ग्रन्थ को ये मोहनीय कर्मजन्य दूषण होते नहीं हैं। यह तो दिगम्बर शास्त्र से स्पष्ट है।

यह निर्ग्रन्थ अन्तर्मुहूर्त में केवली बनता है, तब ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय व अन्तराय कर्म का क्षय हो जानेसे उक्त १४ दूषणों के उपरांत अज्ञान, मद, निद्रा, हिंसा, जूठ व चोरी इत्यादि दूषणों से रहित हो जाता है।

इस विश्लेषणसे तय है कि-केवली भगवान के अज्ञानता वगैरह जो १८ दोष माने गये हैं यह ठीक है।

और दिगम्बर शास्त्रों में जो उक्त क्षुधा वगैरह १८ दूषण गिनाये हैं, ये सिर्फ सिद्धोंके हिसाब से हैं, मगर केवली भगवान से जोड़ दिये गये हैं, वो ठीक नहीं है।

वास्तव में क्षुधा वगैरह १८ दूषण केवलीके दूषण नहीं हैं। अज्ञानता आदि १८ दूषण ही केवलीके १८ दूषण हैं।

आचार्य पूज्यपादकृत "सिद्धभक्ति" श्लोक ६ और ८ से भी यह मान्यता अधिक पुष्ट होती है।

यद्यपि केवली भगवान को आहार निहार रोग मल परिषह उपसर्ग शाता अशाता चलना समुद्घात और मृत्यु ये सब देह प्रवृत्ति अवश्य होती हैं, किन्तु ये निरीह भाव से होती हैं।

दिगम्बरसम्मत शास्त्र में भी निर्देश है कि—

प्रातिहार्यविभवैः परिष्कृतो, देहतोऽपि विरतो भवानभूत् ।
मोक्षमार्गमशिषन् नरामरान्, नापि शासनफलैषणातुरः ॥७३॥
काय-वाक्य-मनसां प्रवृत्तयो, नाभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया ।
नाऽसमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो, धीर ! तावकमचिन्त्यमीहितम् ॥७४॥

(स्वामी समन्तभद्र का स्वयंभू स्तोत्र, श्लो० ११)

कायवाङ्मनसां सपायां गत्वामपि ॥

(बोधपाहुड गा० ३५ टीका)

केवली भगवान् केवली समुद्घात करते हैं।

माने केवली भगवान को आहार वगैरह शारीरिक प्रवृत्तियां होती हैं।

दिगम्बर-केवली भगवान् नोकर्म आहार लेते हैं, कहा भी है कि—

कम्मा हारु असेसहं जीवहं । णोकम्माहारु विभवभावहं ॥
लेवाहारु वि दिमइ रुक्खहं । कवलाहारु णरोह तिरीक्खहं ॥
ओजाहारु पक्खि संघायहं । मणभोयणु चउदेव निकायहं ॥

(कवि पुष्पदन्तकृत महापुराण, सन्धी ११ वी)

यहां विभव भाव में "णोकर्म" आहार और मनुष्य और तिर्यंच के लिये कवलाहार बताया है।

यद्यपि केवली भगवान् मनुष्य ही हैं, किन्तु वे "णोकर्म" आहार लेते हैं, कवलाहार नहीं लेते हैं। निद्रा का नोकर्म दही वगैरह पदार्थ हैं, वेदोदय का नोकर्म भोगांग है, वैसे शरीर आदि की अमुक नोकर्म वर्गणा है, केवली भगवान् उनका ही आहार लेते हैं। इसके लिये कहा है कि—

आहारदंसणेण य, तस्सुवजोगेण ओमकोट्ठाए।
सादिदरुदीरणाए हवदि हु आहारसण्णा हु ॥१३४॥

आहार देखने से अथवा उसके उपयोग से, और पेटके खाली होने से तथा असातावेदनीय के उदय और उदीरणा होने पर जीवको नियमसे आहारसंज्ञा उत्पन्न होती है।

(पं० गोपालदासजी बरैयाकृत भावानुवाद)

उदयावण्णसरीरोदयेण, तद्देह-वयण-चित्तानाम् ।
णोकम्मवग्गणाणं, गहणं आहारयं नाम ॥६६३॥
आहरदि सरीराणं, तिण्हं एयदर वग्गणाओ ।
भासा मणाणं णियदं, तम्हा आहारओ भणिओ ॥८६४॥

(गोम्मटसार, जीवकाण्ड)

माने-औदारिक वैक्रिय आहारक भाषा और मनकी वर्गणाओं का ग्रहण करना, यही आहार है, केवली भगवान् "णोकर्म वर्गणा" का आहार लेते हैं।

जैन—णोकर्म वर्गणा का आहार लेना, उस आहार द्वारा

करके सातवें अप्रमत्त गुणस्थान में जाता है। इनमें ऐसी कोई प्रकृति नहीं है कि जिससे खाने-पीने का निषेध हो जाय।

दिगम्बर-आहारक द्वय का उदय विच्छेद है।

जैन-इन आहारक द्वय से आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग का विच्छेद होता है, न कि आहारग्रहण का।

दिगम्बर-अप्रमत्त दशावाला क्या खावे पीवे?

जैन-खाना प्रमाद नहीं है, खाते खाते तो शुद्ध भावना से कभी केवलज्ञान भी हो जाता है। अप्रमत्त को निद्रा और प्रचला का भी उदय होता है फिर खाने पीने का तो पूछना ही क्या?

दिगम्बर-केवली भगवान् अनन्त वीर्यवाले हैं, अतः क्षुधा को दबा देवे।

जैन-जैसे वे आयुष्य को नहीं बढ़ा सकते हैं और न घटा सकते हैं, वैसे ही क्षुधा को भी नहीं दबा सकते। उनको लाभांतराय भोगांतराय या कोई अंतराय नहीं है अतः आहारप्राप्ति का अभाव नहीं है, फिर क्षुधा को क्यों दबावें? अंतराय का क्षय होने से लब्धि होती है, किन्तु क्षुधा का अभाव नहीं होता है।

दिगम्बर-तीर्थंकर भगवान को स्वेद नहीं है तो आहार भी न होना चाहिये।

जैन-स्वेद तो निहार है, वह शरीर से निकलता है, आहार तो ग्रहण किया जाता है; इनकी समानता कैसे की जाय? फिर भी केवलीको तो स्वेद होता है, आहार भी होता है।

दिगम्बर-भूख वेदनीय कर्म की सहकारिणी है।

जैन-नहीं, वेदनीय कर्म भूख का सहकारी है। वेदनीय कर्म का उदय विच्छेद होते ही भूख का भी अभाव हो जायगा।

दिगम्बर-वेदनीय अघातिया कर्म है, मामूली है, वह उदय में आने पर भी कुछ नहीं करता है। और वे ११ परिषह भी उपचार से हैं। (सर्वार्थसिद्धि ९-११)

जैन-कर्म घातिया हो या अघातिया मगर उदय में आने से अपना कार्य अवश्य करता है, इतना ही क्यों केवलीको

समुद्घात भी कराता है। वेदनीय मामूली नहीं है, यदि मामूली होता तो सातवें गुणस्थान से ही वेदनीयकी उदीरणा की क्यों मना कर दी गई? मामूली था तो उसकी उदीरणा भी कुछ नहीं करने पाती। मगर उदीरणा का यहां से निषेध है, अतः वेदनीयकी ताकतका परिचय हो जाता है जिसकी उदीरणा का पहिले से निषेध है यह कर्म मामूली कैसे माना जाय? यह अपना कार्य अवश्य करता है और उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।

११ परिषह भी उपचार से नहीं हैं, सिर्फ उपचार से ही बताना था तो २२ ही क्यों न बताये? वास्तव में ११ परिषह भी उपचारसे नहीं हैं, परिषह परिषह के रूप में ही होते हैं और वे भी अपना कार्य अवश्य करते हैं।

आचार्य पूज्यपादजीने भी परिषहों का उपचार होना लिख दिया, किन्तु यह दलील कमजोर थी अत एव उन्होंने "न सन्तीति" कल्पना भी बताई, अन्ततः "एकादश जिने" इस पाठ के सामने यह कल्पना भी निराधार बन जाती है। वास्तव में केवली भगवान को ११ परिषह हैं और वे सहने पड़ते हैं।

दिगम्बर—मोहनीय कर्म न होने से वे सताते नहीं हैं।

जैन—अशाता वेदनीय व परिषह अपना २ कार्य करते हैं किन्तु उनसे केवली भगवान को ग्लानि नहीं होती है। कारण? अरतिका अभाव है। किन्तु इससे यह नहीं माना जाय कि केवली भगवान को अशाता व परिषह नहीं होते हैं।

दिगम्बर—कर्मप्रकृतिओं का आपस २ में संक्रमण भी होता है तो अशातावेदनीय का शाता के रूप में संक्रमण हो जायगा।

जैन—दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्रसूरिने १३ वे गुणस्थान में संक्रमण की मना की है।

(गोम्मटसार, कर्मकांड, गा० ४४२)

अतः यहां संक्रमण मानना ही भूल है। अशाता वेदनीय अशाता रूप से ही उदयमें आवेगी, और उसको वैसे ही भोगनी पड़ेगी।

सारांश यह है कि-केवली भगवान को भूख प्यास वगैरह होते हैं और वे आहार पानी लेते हैं।

दिगम्बर—केवली भगवान किस कारणसे आहार लेवे ? दिगम्बर शास्त्रमें आहार के त्याग और स्वीकार के लिये निम्न कारण माने हैं।

छहिं कारणेहिं असणं, आहारंतो वि आयरदि धम्मं।
छहिं चेव कारणेहिं दु, णिज्जुहवंतो वि आचरेदि ॥५९॥
वेणयं वेयावच्चे, किरियाट्ठाणेये संजमट्ठाए।
तधपाण धम्मचिन्ता, कुज्जा एदेहिं आहारं ॥६०॥
आदंके उवसग्गे, तिरिक्खणे बंभचेरगुत्तीओ।
पाणिंदया तवहेऊ, सरीरपरिहारं वुच्छेदो ॥६१॥

टीका—तितिक्षणायां ब्रह्मचर्यगुप्तेः सुष्ठु निर्मलीकरणे,
सप्तमधातुक्षयाय आहारव्युच्छेदः ॥६१॥
ण बलाउसाउ अट्ठं, ण सरीरस्सुवचयट्ठ तेजट्ठं।
णाणट्ठ संजमट्ठं, झाणट्ठं चेव भुंजेज्जो ॥६२॥
(मूलाचार पंचिंदि ६ पिंडशुद्धि अधिकार)

जैन—केवली भगवान शरीर, संयम, धर्म और शुक्ल ध्यान आदि के कारण आहार लेते हैं, और आहारत्याग भी करते हैं।

दिगम्बर—दिगम्बरीय शास्त्रमें मौन आहार व चार आहार के त्यागरूप तपस्या है जिसके नाम चतुर्थ भक्त छट्ठ अट्ठम दशम वगैरह हैं देखिये

(१) खवणं छट्ठ ट्ठम दसम समणं, समणं च छट्ठ अट्ठमयं।
समयं समणं समणं, छट्ठं च गद्दिलिमो छेदो ॥७८॥
(आ॰ इन्द्रनंदिकृत छेदपिंड)

(२) जदि गिलाणखमणे चउविह णहविह छट्ठमसणाओ।
टीका—क्षपणे उपवासे चतुर्विधाहारे ॥२०॥
(छेदशास्त्र का प्रमाण)

उपवासः प्रदातव्यः षष्ठमेव यथाक्रमम् ॥३३॥

टीका-चतुर्विधे चतुष्प्रकारे अशने पाने खाद्ये स्वाद्ये च। उपवासः क्षमणं ॥

(प्रायश्चित्त चूलिका श्लो॰ ३३)

उपवास में गरम पानी पीने से उपवासका आठवां हिस्सा कम हो जाता है। +

(भा॰ सकलकीर्तिकृत प्रश्नोत्तरोपासकाचार प्रोषधोपवासकथन, चर्चासागर, चर्चा ३५.)

दिगम्बरोंकी तपस्याकी परिभाषामें छट्ठ अट्ठम वगैरह शब्द-प्रयोग किये गये हैं इसी प्रकार सामान्य तपस्या के लीये "योगधारण" इत्यादि शब्दप्रयोग भी किये गए हैं। *

+ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी "अंग्रेजी जैन गजट" (जुलाई का सार) शीर्षक लेख में लिखते हैं कि:-

"नोट-भादों मास में जैन समाज में स्त्रीपुरुष बहुत उपवास करते हैं सो लाभप्रद है, ऊपर के वर्णन से यह सिद्ध है कि-चार प्रकार के आहारको त्यागते समय शुद्ध प्रासुक पानी रख लेना चाहिये।

यह बात अनुभवसे सिद्ध है कि-पानी के बिना उपवासके दिन बहुत आकुलता हो जाती है। धर्मध्यान भी कठिनता से होता है। श्वेताम्बर समाज में पानी को रख कर उपवास करने का रिवाज है, सो ठीक विदित होता है। जिनको आकुलता बिल्कुल न होवे सो पानी भी न लेवें परन्तु डाक्टरी सिद्धान्त में पानी लेना लाभकारी है। गृहस्थ को हर अष्टमी चौदसको पानी लेते हुए उपवास करना ही चाहिये।"

(ता २१-७-१९ वी. सं. २४६४ आ. व॰ ९ का जैनमित्र, पु. ३९ अं. ३७ पृ॰ ५६४-५६५)

* आदिपुराणादि ग्रन्थोंमें छह महिना तपश्चरण के पश्चात् पारणा के लिए चर्याको जानेका उल्लेख है और अंतराय होने पर पुनः छह महिना का योग धारण करने का विधान किया गया है। इस तरह आदि पुराणादि ग्रन्थों से भी एक वर्ष में पारणा होने की बात सिद्ध हो जाती है।

(पं. परमानन्द जैन शास्त्रीका "दिगंबरग्रंथोंमें उपलब्ध ऋषभदेव चरित्र" लेख, अनेकान्त व॰ ४, कि॰ ५. पृ॰ ३१० की टीप्पणी)

१

यदि केवली भगवान आहार लेते हैं तो क्या उक्त्य तप भी करते हैं?

जैन–हाँ, वे आहार के अभावरूप तप भी करते हैं।

दिगम्बर–केवली भगवान के आहार और तप के लिये शास्त्र प्रमाण दीजिये!

जैन–दिगम्बर शास्त्रों में केवली भगवान के आहार और तपके प्रमाण ये हैं।

(१) सर्व मान्य आ० श्री उमास्वातिजी कहते हैं–

एकादश जिने। (तत्त्वार्थ० अ० ९ सू० ११)

केवली भगवान को ११ परिषह होती हैं माने शुद्ध आहार पानी मिलने पर क्षुधा और प्यास का शमन होता है।

(२) आ० कुन्दकुन्द बताते हैं कि–

गइ इंदियं च काए, जोए वेए कसाय णाणे य।
संजम दंसण लेसा, भविया सम्मत्त सण्णि आहारे ॥३३॥

टीका–आहारे आहारकद्वयमप्येऽर्जत आहारकानाहारकद्वयं।

यहाँ टीकाकार ने आहारक शब्द बना लिया है यह उसका अनाभोग है। वास्तविक बात यह है कि–केवली भगवान आहार लेते हैं, नहीं भी लेते हैं, आहारी हैं, अनाहारी भी हैं॥

आहारो य सरीरो, तह इंदिय आण पाण भासा य।
पज्जत्तिगुणसमिद्धो, उत्तमदेवो हवइ अरहो ॥३४॥
पंच वि इंदिय पाणा, मण वय काएण तिण्णि बलपाणा,
आणप्पाणप्पाणा, आउग पाणेण होंति दह पाणा ॥३५॥
(बोधपाहुड)

(३) आ० समन्तभद्रजी लिखते हैं कि–

बाह्यं तपः परम दुश्चरमाचरंस्त्वं।
आध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम्॥
ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरस्मिन्।
ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ॥८३॥
(बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र)

(४) आ० शाकटायन स्पष्ट करते हैं—

अस्ति च केवलिभुक्तिः, समग्रहेतुर्यथा पुराभुक्तेः।
पर्याप्ति–वेद्य–तैजस–दीर्घायुष्कोदयो हेतुः ॥१॥
तैजससमूहकृतस्य, द्रव्यस्याऽभ्यवहृतस्य पर्याप्त्या।
अनुत्तरपरिणामे क्षुत्क्रमेण भगवति च तत् सर्वम् ॥९॥
नष्टविपाका क्षुदिति, प्रतिपत्तौ भवति चागमविरोधः।
शीतोष्णक्षुदुदन्या–ऽऽदयो हि ननु वेदनीय इति ॥१३॥
रत्नत्रयेण मुक्तिर्न विना तेनास्ति चरमदेहस्य।
भुक्त्या तथा तनोः स्थितिरायुषि न त्वनपवर्त्येऽपि ॥१९॥
अपवर्तहेत्वभावे, ऽनपवर्तनिमित्तसंपदायुष्कः।
स्याद् अनपवर्त इति, तत् केवलिभुक्तिं समर्थयते ॥२५॥
कायस्तथाविधोऽसौ, जिनस्य यद् भोजनस्थितिरितीदम्।
वाङ्मात्र नात्रार्थे, प्रमाणमाप्तागमोऽन्यद् वा ॥२६॥
अस्वेदादि मागपि, सर्वाभिमुखादि तीर्थकरपुण्यात्।
स्थितनखतादि सुरेभ्यो, न क्षुद् देहान्यता वास्ति ॥२७॥
भुक्तिर्दोषो यद्युष्यते, न दोषश्च भवति निर्दोषैः।
इति निगदतो निष्पधा–र्हति न स्थान–योगादेः ॥२८॥
रोगादिवत् क्षुधो, न व्यभिचारो वेदनीयजन्मायाः।
प्राणिनि "एकादश जिन" इति जिनसामान्यविषयं च ॥२९॥
तैलक्षये न दीपो, न जलागममन्तरेण जलधारा।
तिष्ठति, तथा तनोः स्थितिरपि न विनाहारयोगेन ॥३१॥
विग्रहगतिमापन्नाऽऽद्यागमवचनं च सर्वमेतस्मिन्।
भुक्तिं ब्रवीति तस्माद्, द्रष्टव्या केवलिनि भुक्तिः ॥३५॥
तस्य विशिष्टस्य स्थिति–रभविष्यत् तेन सा विशिष्टेन।
यद्यभविष्यदिहैषां, शालीतरभोजनेनेव ॥३७॥

(केवलिभुक्तिप्रकरण)

(५) आ० पूज्यपाद तीर्थंकर का तप फरमाते हैं—

ऋजुकूलायास्तीरे, शालद्रुमसंश्रिते शिलापट्टे।
अपराह्णे षष्ठेनाऽऽस्थितस्य खलु जृंभिकाग्रामे ॥११॥

यह भगवान का आखिरी छद्मस्थ तप है। वैसे तीर्थंकर भगवान् केवली जीवन में भी तप करते हैं। केवली तीर्थंकर खाते हैं पीते हैं और तप भी करते हैं, देखिये—

आद्यश्चतुर्दशदिनै–र्विनिवृत्तयोगः।
षष्ठेन निष्ठितकृतिर्जिनवर्धमानः।
शेषा विधूतघनकर्मनिबद्धपाशाः।
मासेन ते यतिवरास्त्वभवन् वियोगाः ॥२६॥

(निर्वाणभक्ति श्लो० २६)

मोक्ष जाने से पहिले केवली भगवान् आदिनाथने चौदह दिन के उपवास किये, केवली तीर्थंकर श्री वर्धमान स्वामी ने षष्ठ तप किया, और शेष २२ केवली तीर्थंकरोंने एक महिने का अनशन तप किया। अंतमें ये सब कर्मपाश को तोड़कर अयोगी-अशरीरी बने व मोक्षमें पधारे, यह निर्वाण तप है। यहां षष्ठ शब्द का अर्थ दो दिन किया जाय तो यह भ्रम है, यह शब्द दिगम्बर परिभाषामें भी तपस्या का ही सूचक है, इससे षष्ठ का अर्थ बेला—तप ही होता है। इस निर्वाण तपके पाठसे स्पष्ट है कि-केवली भगवान् केवली जीवन में आहारपानी लेते हैं, और निर्वाणसे अमुक दिन पहिले आहार पानी को छोड़ देते हैं, और सूक्ष्म मन, वचन, और काया की क्रियाओं को तो अयोगी अवस्था में आने पर ही रोक देते हैं।

श्वेताम्बर आम्नाय में भी तीर्थंकरों का निर्वाणतप उपरोक्त पाठ के अनुसार ही है या कहा जाय कि उक्त पाठ श्वेताम्बर आम्नाय का प्रतिबिंब ही है। देखिये, चतुर्दश पूर्वधारी श्री भद्रबाहुस्वामी फरमाते हैं कि--

निव्वाणमंतकिरिया, सा चोद्दसमेण पढमनाहस्स।
सेसाण मासिएणं, वीरजिणिंदस्स छट्ठेणं॥ ॥३०६॥

अट्ठावयम्मि सेले, चौदसभत्तेण सो महारिसिणं।
दसहिं सहस्सेहिं, समं निव्वाणमणुत्तरं पत्तो ॥४३४॥

(आवश्यकनिर्युक्ति, गा० ३०६, ४३४)

(६) आ० शुभचन्द्रजीने "क्रियाकलाप" के निर्वाणसूत्र में भगवान् महावीरस्वामी का निर्वाण तप "छट्ठ" बताया है। इसी प्रकार सब तीर्थंकरों को विभिन्न निर्वाण तप है।

(७) आ० नेमिचन्द्रजी फरमाते हैं—
सयोगि केवली भगवान को बंध में १, उदय में ४२, उदीरणा में ३९ और सत्ता में ८५ प्रकृति होती हैं।

(गोम्मटसार कर्मकांड गा० १०२, २७१, २७२, २७५ सेर८१, ३४०, ३४१)

जोगिम्हि य समयिक ट्ठिदि सादं (गो. क. १०२)

माने-केवली भगवान शाता वेदनीय को बांधते हैं, जिसकी स्थिति एक समय की होती है।

तदियेक-वज्ज-णिमिणं, थिर सुह-सर गदि-उराल-तेजदुगं।
संठाणं वण्णा-गुरुचउक्क पत्तेयं जोगिम्हि ।२७१॥

तदियेक्कं मणुवगदी, पंचिंदियसुभगतसविगाऽऽदेज्जं।
जसतीत्थं मणुवाऊ, उच्चं च अजोगि चरिमम्हि ॥२७२॥

माने-केवली भगवान को एक वेदनीय, वज्रऋषभनाराच संहनन, निर्माण, स्थिर शुभ स्वर गति औदारिक और तेज का युग्म, संस्थान, वर्णादि चार, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रत्येक, दूसरा वेदनीय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यश, तीर्थंकर, मनुष्यायु और उच्च गोत्र ये ४२ प्रकृतियां उदय में होतीं हैं। इनमें से अंत की १२ प्रकृतियाँ अयोगीकेवली को भी उदय में होती हैं। (गो. क. २७१, २७२)

वेदनीय, संहनन, निर्माण, औदारिक युग्म, तैजस, पर्याप्त, मनुष्यायु वगैरहका उदय है वहाँ तक आहार अनिवार्य है।

केवली भगवान को शाता अशाता और मनुष्यायु सिवायकी सब उदय प्रकृति, यानी ३९ प्रकृतियों की उदीरणा होती है।

(गो० क० गा० २७५ से २८१)

केवली भगवानको ६३ प्रकृतिके क्षय होनेसे और ८५ प्रकृतियां सत्ता में रहती हैं, वे ये हैं—

'५. शरीर, '५. बन्धन, '५ संघात, ६ संस्थान, ६ संहनन, ३ अंगोपांग, २० वर्णादि, २ शुभ, २ स्थिर, २ स्वर, २ देवगति देवानुपूर्वी २ विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयश, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, ४ अगुरुलघु, एक वेदनीय, नीच गोत्र मनुष्यानुपूर्वी और १२ अयोगि की उदय प्रकृतियां, इनमें से अन्तकी १३ प्रकृतियां अयोगि केवली को भी सत्ता में रहती हैं।

(गोम्मटसार कर्मकांड गाथा ३४०–३४१)

(प्र. हीनलप्रसादजीकृत मोक्षमार्ग प्रकाशक भा. २ पृ० ८७)

वेद से आहार तक की १० मार्गणाओं में, अपने २ गुणस्थानकी सत्ता होती है।

(गोम्मटसार, कर्मकांड, गा० ३५४, जीवकांड ७१३)

इस तरह केवली भगवानके आहार की स्वीकृति दी गई है।

विग्गहगदिमावण्णा, केवलिणो समुग्घदो अजोगी य।
सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारया जीवा ॥६६५॥

अर्थ—१ विग्रह गतिवाले, २ केवली समुद्घातवाले केवली, ३ अजोगी केवली और ४ सिद्ध ये अणाहारी हैं इनके सिवाय के सब जीव आहारी हैं।

(गोम्मटसार जीवकाड गाथा ६६५)

दिगम्बर टीका-भाषाकारों ने इस गाथा के अर्थ में केवली भगवानका अलग नम्बर लगाकर पांच अणाहारी गिनाये हैं, मगर यह उनका केवलीभुक्ति-निषेधरूप ख्याल का ही परिणाम है।

यदि केवली नामको अलग करके सब केवली अणाहारी मान लिये जाँय तो अकेले समुद्घात शब्द से सातों समुद्घातवाले अणाहारी माने जावेंगे और अजोगी शब्द से केवलज्ञानरहित किसी अयोगिकी कल्पना करनी पड़ेगी या पुनरुक्ति माननी पड़ेगी, जो कल्पना या मान्यता दिगम्बर शास्त्र से प्रतिकूल है।

असल में आहारी और अणाहारीका विवेक किया जाय तो-जीवों के १४ भेदो में से विग्रह गतिवाले ७ अपर्याप्त और केवली समुद्घातवाले १ संज्ञी पर्याप्त यह ८ ही अणाहारी होते हैं

(कर्मग्रन्थ, ४–१८)

अनाहार मार्गणा में १, २, ४, १३, १४, गुणस्थान हैं

(कर्मग्रन्थ, ४-२३) (गुजराती पं० ५ गा० १४० टीका)

अब इनका समन्वय किया जाय तो विग्रह गतिवाले केवली समुद्घाती, अयोगी केवली और सिद्ध ही अनाहारी हैं।

वास्तव में संसार में कार्मण काययोगी ही अनाहारी होते हैं। (कर्मग्रन्थ ३-२४, ४-२४) जब यहां तेरहवें गुणस्थानवाले सयोगी केवलियों को तो सिर्फ कार्मणकाययोग नहीं किन्तु १५ में से ७ काययोग होते हैं (कर्मग्रन्थ ४।२८)

फिर वे अनाहारी कैसे माने जाय?

दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्रसूरि भी दिगम्बर विद्वान् उक्त गल्ती न करें, इस लिये साफ २ कार्मणकाययोगीको ही अनाहारी बता कर सिवाय के सब संसारियों को आहारवाले बताते हैं।

कम्मइयकायजोगी, होदि अणाहारयाण परिमाणं।
तव्विरहिद संसारी, सव्वो आहार परिमाणं॥

(गोम्मटसार जीवकांड गा० ६७०)

जो २ कार्मण काययोगी हैं वे सब अनाहारी हैं। इसके सिवाय सब संसारी जीव आहारवाले हैं।

अर्थात्-विग्रह गतिवाले, समुद्घाती केवली और अयोगी केवली ये ही अनाहारी हैं, सयोगी केवली आहारवाले हैं।

इस कथन से स्पष्ट है कि दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्रजी केवली भगवानको अनाहारी नहीं मानते हैं!

यानें-केवली भगवान आहारी हैं-आहार लेते हैं।

(८) रेवतीश्राविकया श्रीवीरस्य औषधं दत्तं। तेनौषधदानफलेन तीर्थंकरनामकर्मोपार्जितमत एव औषधिदानमपि दातव्यम्।

(दि० सम्यक्त्वकौमुदी पृष्ठ ६५)

अर्थ-भगवान् महावीर स्वामी को गोशाले की तेजोलेश्या के कारण रोग हुआ था उस समय रेवती श्राविकाने कोलापाक (पेठा) बहराया था, उससे भगवानको रोगशमन हुआ और रेवती को तीर्थंकर नामकर्मका बंध हुआ। यानें तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी आहार लेते थे, औषधि भी लेते थे।

(९) आ. श्रुतसागरजी तीर्थंकरों के अतिशय में बताते हैं कि कवलाहारो न भवति, भोजनं नास्ति।

अर्थ–अतिशय के कारण तीर्थंकर भगवान को कवलाहार होता नहीं है, वे भोजन करते नहीं है।

अर्थात् तीर्थंकर सिवाय के केवली भगवान कवलाहार लेते हैं, भोजन करते हैं।

(बोधपाहुड गाथा ४२ की टीका, पृष्ठ ९९)

(१०) कम्मइय कायजोगी, विग्गहगइ समावण्णाणं, केवलीणं वा समुग्घाद गदाणं।६८।

(षट्खंडागम, सूत्र ६८, पृ० २९८)

(११) आहारए इंदिय-पाहुड़ि जाव सजोगि केवलित्ति

(षट्खंडागम, सूत्र १७६ पृ० ४०९)

(१२) अणाहारा चदुसु ठाणेसु विग्गहगइसमावण्णाणं, केवलीणं वा समुग्घादगयाणं, अजोगिकेवली, सिद्धा, चेदि।

(षट्खंडागम, सूत्र १७७ पृ ४१०)

दिगम्बर शास्त्रों के उक्त प्रमाण केवली भगवान के कवलाहार की गवाही देते हैं।

सारांश–केवली भगवान कवलाहार करते है।

दिगम्बर–यदि दिगम्बर शास्त्र ही केवलिआहार का विधान करते हैं तो निःशंक मानना पडता है कि केवली कवलाहार लेते हैं। क्या उनको रोग भी होता है?

जैन–रोग होता है इस लिए तो केवली भगवान को असाता का उदय माना जाता है, रोग परिषह भी माना जाता है! हां तीर्थंकरों को अतिशय के जरिये रोग होने की मना है, किन्तु केवली भगवान को रोग होना सम्भव है,वेदनीय भोगना ही पड़ता है।

दिगम्बर–अगर केवली भगवान आहार ले तो निहार भी करे।

जैन–यह भी देह-प्रवृत्ति है. आहार और निहार ये दोनों सहकारी हैं। केवली भगवानको श्वासोश्वास है, मलपरिषह है। तीर्थंकरके सिवाय केवली को स्वेद है, छींक भी होती है, ये भी निहार ही हैं।

दिगम्बर-दिगम्बर शास्त्रों में तीर्थंकर वगैरहको निहारकी आजीवन साफ मना है। देखिये—

तित्थयरा तप्पियरा, हलहर चक्की य अद्धचक्की य।
देवा य भूयभूमा, आहारो अत्थि, णत्थि नीहारो॥१॥
(भा० श्रुतसागरीय बोधप्राभृत टीका पृ० ९८)

तित्थयरा तप्पियरा, हलहर चक्कीइ वासुदेवाहि।
पडिवासु भोगभूमि य, आहारो णत्थि णिहारो। १॥
(पं० चपालाल्कृत चर्चासागर चर्चा-१)

माने-तीर्थंकर वगैरह को जन्मसे ही निहार नहीं होता है।

जैन-महानुभाव ! आहार तो लेवे और निहार न करे यह दिगम्बरीय विधान तो अजीब है। कुछ भी हो किन्तु तीर्थंकर, उनके पिता, चक्री, वासुदेव, युगलिक वगैरहको पुत्र पुत्री होते हैं संतान होती हैं रोग होता है, स्वेद है, मल परिग्रह है जब निहार होने में कौनसी रुकावट है ? फिर भी यह कथन सिर्फ तीर्थंकरके निहार को ही मना करता है केवली निहार के खिलाफ नहीं है। जहां आहार है वहां निहार भी है। केवली भगवान आहार लेते हैं और निहार करते हैं।

दिगम्बर-केवली का शरीर केवलज्ञानकी प्राप्ति होते ही परमौदारिक बन जाता है।

जैन-केवली या तीर्थंकर भगवान के शरीर को परमौदारिक मानना यह किसी भक्त या विद्वान की अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पना ही है, यद्यपि उनका शरीर अतिशय सुन्दर होता है किन्तु वास्तव में तो औदारिक ही रहता है। जो बात द्रव्यानुयोग के जरिये स्पष्ट है, देखिए।

(१) बारहवें क्षीणमोहनीय गुणस्थान में ऐसी कोई प्रकृतिका उदयविच्छेद परावर्तन या नामकर्मकी विशेष प्रकृति का उदय नहीं होता है कि सहसा तेरहवें सयोगी केवली गुणस्थानमें औदारिक शरीर परमौदारिक बन जाय।

(२) केवलज्ञानीको औदारिक शरीर औदारिक अंगोपांग, छ संस्थान, वर्णचतुष्क, निर्माण, तैजस, वज्र ऋषभनाराच संघयण

मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय, त्रस, बादर, प्रत्येक, पर्याप्त वगैरह प्रकृतियों का उदय है, जो प्रकृतियां औदारिक शरीरको व्यक्त करती हैं।

(३) औदारिक काययोग, वचनयोग और मनोयोग होने के कारण "सयोगी" दशा है, जो औदारिक शरीर की ताईद करती है।

(४) केवलि समुद्घात होता है, वह भी केवली के औदारिक शरीर के पक्षमें ही है।

(५) वर्गणा भी औदारिक आदि आठ प्रकारकी ही हैं, उनसे अधिक वर्गणा नहीं है, और उन आठों में परमौदारिक नामवाली वर्गणा भी कोई नहीं है।

(६) 'ततो रालिय देहो", माने-केवली भगवानको औदारिक शरीर है।

(मूलाचार, परि० १२ गा० २०६)

(७) कायजोगि-केवलीणं भण्णमाणे अत्थि एगं गुणट्ठाणं, एगो जीवसमासो दो वा, छपज्जत्तिओ, चत्तारिपाण दोपाण, खीण सण्णाओ, मणुसगदी, पंचिदिय जादी, तसकाओ, ओरालिय मिस्स-कम्मइय कायजोगो, इदि तिण्णिजोग, अवगद वेदो।

[छक्खडागम, धवल टीका पु. २ पृ० ६४८]

(८) ओरालिय कायजोगीणं भण्णमाणे अत्थि तेरह गुणट्ठाणाणि, ++ ओरालिय कायजोगो।

[छक्खडागम धवलटीका, पु० २, पृ० ६४९]

इन प्रमाणों से केवली भगवान के शरीर को औदारिक ही मानना प्रमाणसंगत है।

दिगम्बर–केवली को तेरहवें गुणस्थान में वज्र ऋषभनाराच संहनन है, यह बात तो ठीक है। दिगम्बर शास्त्र भी ऐसा ही मानते हैं। देखिए—

अपूर्वकरणाख्ये, चानिवृत्तिकरणाभिधौ।
सूक्ष्मादिसांपरायाख्ये, क्षीणकषायनामनि ॥१२७॥
सयोगे च गुणस्थाने, ह्याद्यं संहननं भवेत्।
केवले क्षपकश्रेण्यारोहणे कृतयोगिनाम् ॥१२८॥

क्षपकश्रेणी में ८ से १३ तक वज्रऋषभनाराच संहनन

अयोगिजिननाथानां देवानां नारकात्मनां ।
आहारकमनुष्याणां एकाक्षाणां वपुंषि च ॥१२९॥
यानि कार्मणकायानि मजतां परजन्मनि ।
षण्णां सर्वशरीरिणां नास्ति संहननं क्वचित् ॥१३०॥

(सिद्धान्तसारप्रदीप)

अर्थात्-सयोगी केवली को वज्रऋषभनाराच संहनन है मगर उनके शरीर में सातों धातु नहीं रहती हैं, केवलज्ञान होते ही उनके शरीर की सातों धातु विनष्ट हो जाती हैं, इस हालत में वह शरीर परमौदारिक माना जाता है। भूलना नहीं चाहिये कि-रस, खून, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा और शुक्र ये सात धातु हैं तथा वात, पित्त, कफ, नस, स्नायु, चमडी और पेट ये उपधातु हैं।

जैन-दिगम्बर शास्त्रों में ही केवली के शरीर में सातों धातुएं होने का विधान है। देखिये—

(१) केवली भगवान्को औदारिक आदि ४२ प्रकृतिओं का उदय है, उनमें से कई प्रकृति सातों धातुके लिये हैं। जैसा कि-

दिगम्बर ग्रन्थके अनुसार पर्याप्तकर्म, तैजसके सहयोग से आहार ग्रहण-पाचन, शरीर व इन्द्रियोंका निर्माण करता है।

निर्माणकर्म, अंग उपांग और धातुओंकी व्यवस्था करता है।

(मूला० प० १२ गा० १९६ टीका)

पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांग, ये पंचेन्द्रिय योग्य नस-हड्डी आदि युक्त, शरीर बना रखते हैं

वज्रऋषभ नाराच संहनन रग हड्डी और ग्रन्थिओं को वज्र के समान बना रखता है।

वर्णादि चतुष्क खून मांस और चमड़ी में ५ रंग ५ रस २ गंध और ८ स्पर्श को जमा रखता है।

उपघातकर्म शरीर में नुकसान करने वाले अंगोपांग और मांस ग्रन्थी आदि को बनाता है।

स्थिर अस्थिर नामकर्म "थिरजुम्मस्स थिराथिर रस रुहिरादीणि" (गो० क० गा० ८३)

शरीर की सातों धातु और उपधातुओंको स्थिर और अस्थिर रखते हैं।

(गोम्मटसार, मूलाचार परि० १२ गा० १९६ टीका पृ० ३११)

उदय प्राप्त प्रकृति निरर्थक नहीं होती है वो अपना कार्य अवश्य करती है। इन उदय प्रकृतियों से सिद्ध है कि केवलीओं के शरीर में ७ धातुएं हैं।

(२) ब्र० शीतलप्रसादजी केवली के शरीर में नस त्वचा रोम और त्वचा पर की महीन झिल्लीका भी भेद बताते हैं। (चर्चासमीक्षा पृ ८०) जब सात धातुओं का अभाव कैसे माना जाय?

(३) तीर्थंकरों के ३४ अतिशय में एक अतिशय यह है कि तीर्थंकरों के खून और मांस सफेद होते हैं—

केशाः श्मश्रु च लोमानि नखाः दंताः शिरास्तथा।
धमन्यः स्नायवः शुक्र-मेतानि पितृजानि हि॥

(चर्चासागर, चर्चा ११९)

पितृ प्राप्त केश वगैरह रहें और दांत नस शुक्र वगैरह न रहें, यह असम्भवित है। पुवेद में मोक्ष माननेवालों समाज स्त्री प्राप्त नहीं किन्तु पुरुषप्राप्त अंशोंका निषेध करे, यह भी एक विचार है।

(४) आ० कुन्द कुन्द फरमाते हैं कि—अरिहंत भगवान् को १० प्राण, ६ पर्याप्ति, १००८ लक्षण और गाय के दूधसा सफेद और तथा सफेद रुधिर होते हैं।

(बोध प्राभृत गा० ३११३८)

(५) केस णह मंसु लोमा, चम्म वसा रुहिर मुत्त पुरिसं वा।
णेवट्ठी णेव सिरा, देवाण सरीर संठाणे॥

(मूलाचार अ० १२ श्लो० ११। चर्चा सागर चर्चा ११९)

संहनन रहित देवों को केश आदि का अभाव होता है, अर्थात् मानना पड़ेगा, कि—संहनन वाले को ये सब वस्तुएं होती हैं-रहती हैं।

(६) १२ प्रकृति "ध्रुव उदय" कहलाती है, जो सबके उदय में रहती हैं। वे ये हैं—तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णादि चतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ १२।

(ब्र० शीतलप्रसादजी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible])

जो प्रकृति ध्रुवउदयी है, उसका कार्य न होवे, यह कैसे हो सकता है ? उदय प्रकृति अपना कार्य अवश्य करती है, उक्त १२ प्रकृति धातु और उपधातु में अपना कार्य अवश्य करती हैं।

(७) (जीने) तेरहवें गुणस्थानवर्ती जिनमें अर्थात् केवली भगवान के (एकादश) ग्यारह परिषह होती हैं। छद्मस्थ जीवों के वेदनीय कर्म के उदय से क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंश मशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल ये ग्यारह परिषह होती हैं, सो केवली भगवान् के भी वेदनीय का उदय है इस कारण केवली के भी ग्यारह परिषह होना कहा है।

(मोक्षशास्त्र श्रीयुत पन्नालालजी विरचित भाषा टीका, जैनग्रन्थ रत्नाकर ११ वां रत्न, पृ ८३)

ये सब परिषह केवली भगवान के शरीर में धातु और उपधातुओं का होना सिद्ध करते हैं।

(८) गजसुकुमाल आदि अन्तकृत केवली को अंगारादिका दाह होना माना गया है तथा पांडवों को भी गरम लोहे की जंजीर का उपसर्ग होना, माना गया है।

वास्तव में केवल ज्ञानीओं के शरीर में सात धातुएं व उपधातुएं हैं और अंगारादि से उनको दाह होता है यह मानना अनिवार्य होगा।

ये सब प्रमाण केवलीओं के शरीर में सात धातुओं का अस्तित्व बनाते हैं और परमौदारिकता के विपक्ष में जाते हैं।

दिग-दिगम्बर शास्त्र के अनुसार जब केवली भगवान का निर्वाण होता है तब उनका शरीर बिखर जाता है

कारण ? वे सात धातुओंसे रहित हैं परमौदारिक हैं।

जैन-दिगम्बर शास्त्र निर्वाण के बाद भी केवली का शरीर कायम रहता है ऐसा मानते हैं-देखिए-

(१) परिनिर्वृत्तं जिनेन्द्रं, ज्ञात्वा विबुधा ह्यथाशु चागम्य।
देवतरु रक्तचंदन कालागुरु सुरभि गोशीर्षैः। १८
अग्नीन्द्राज्जिनदेहं, मुकुटानलसुरभि धूपवरमाल्यैः
अभ्यर्च्य गणधरानपि गता दिवं खं च वनभवने। १९

(श्री पूज्यपाद स्वामीकृत, निर्वाणभक्ति)

(२) भगवान महावीर स्वामी मोक्षपधारे ऐसा जानकर

हैं। वे देखती हो, बोलती हो ऐसी भगवान आदिनाथके समान ५०० धनुष्य ऊंची रत्नमय १००८ जिन प्रतिमाएं हैं।

स्पष्ट बात है कि जिनेश्वरकी आंखे खुली हुई रहेती है।

(५) पं. घानतराय कृत दिगम्बरीय नंदीश्वर द्वीप पूजा में अकृत्रिम प्रतिमाओं का स्वरूप बताया है कि—

शैल बतीस ३२ एक सहस जोजन कहे।
चार ४ सोलह १६ मिले सर्व बावन ५२ लहे॥
एक इक शीप पर एक जिनमंदिरं।
भवन बावन्न ५२ प्रतिमा नमों सुखकरं॥६॥
बिंब अठ एक सौ १०८ रतन मई सोहहीं।
देव देवी सरब नयन मन मोहहीं॥
पाँच सौ ५०० धनुष तन, पद्म आसन परं।
भवन बावन्न ५२ प्रतिमा नमों सुखकरं॥७॥
लाल–नख–मुख, नयन श्याम अरु श्वेत हैं।
श्याम रंग भौंह–सिर केश, छवि देत हैं।
बचन बोलत मनो हँसत कालुष हरं।
भवन बावन्न ५२ प्रतिमा नमों सुखकरं॥८॥

माने—अकृत्रिम जिन प्रतिमाओं का मुख लाल है नख लाल हैं आँख सफेद हैं। बीचमें काला रंग है। आँखकी भौंह काली हैं सिरके केश काले हैं। जिनमुद्रा भी वास्तवमें ऐसी ही होती है। अतः अकृत्रिम प्रतिमाकी मुद्रा भी ऐसी बताई है कृत्रिम प्रतिमा बनानेवाले भी आँख वगैरह में ऐसा ही रंग लगावे तब ही दिगंबर शास्त्र प्रमाण प्रतिमा बन सकती है। आज कल दिगम्बर समाजमें आँख रहित और तंबोल आदि रंगसे रहित जो प्रतिमाएं बनाई जाती हैं-रखी जाती हैं, वे सब दिगम्बर शास्त्र से विरुद्ध एवं कल्पित हैं।

(६) दिगम्बर सम्मत तीर्थंकर के ३४ अतिशय में मैत्री में मेघोन्मेष के अभावको अतिशय माना है, तब भी तीर्थंकरके सिवाय केवली भगवान् में मेघोन्मेष सिद्ध हो जाता है।

पगदीए अक्खलिओ, संझत्तिदयम्मि णवमुहुत्ताणि ।
णिस्सरदि णिरुवमाणो, दिव्वझुणी जाव जोयणयं ॥९०३॥
सेसेसुं समएसुं, गणहर देविंद चक्कवट्टीणं ।
पण्हाणुरूवमत्थं, दिव्वझुणीए य सत्तभंगीहिं ॥९०४॥
छद्दव्व णवपयत्थे, पंचट्ठीकाय सत्ततच्चाणि ।
णाणाविह हेदूहिं, दिव्वझुणी भणइ भव्वाणं ॥९०५॥

मतलब तीर्थंकर भगवान दिव्यध्वनिसे उपदेश देते हैं प्रश्नों का उत्तर देते हैं मगर उनकी वह भाषा कंठ तालु आदिके व्यापारसे रहित या निरक्षरी होती है।

(तिलोय पण्णत्ति, गा० [illegible])

जैन—तीर्थंकर व केवली भगवान साक्षरी भाषामें ही उपदेश देते हैं, अतः यह हम समझते हैं लाभ उठाते हैं और प्रसन्न होते हैं। यदि वे निरक्षरी भाषामें बोलें और हम समझ न सकें तो उनके पास क्यों जायँ? इस हालतमें उनकी परिषदा तो सिर्फ दिखाव मात्र ही मानी जायगी।

दिगम्बर—तीर्थंकर भगवान निरक्षरी भाषा से उपदेश देते हैं उसको गणधर ही समझाते हैं। और गणधर द्वारा हमें जिनवाणी का ज्ञान होता है। बिना गणधर तो तीर्थंकर की वाणी खिरती ही नहीं है।

भगवान महावीरस्वामी ऋजु बालुका नदी पर देवकृत समवसरण में उपदेश देने मगर गणधर हुए ही नहीं थे, अतः गणधर के अभाव में ६६ दिन तक उनकी वाणी न खिरी।

जैन—यदि हमको गणधर से ही लाभ होता है इस हालतमें जब तीर्थंकर उपदेश देवें तो समवसरण में जाना फिजूल है और केवलियोंको गणधर न होने के कारण वाणी खिरेगी ही नहीं, अतः उनके उपदेश में भी जाना फिजूल है। इसके अलावा यह भी मानना पड़ेगा कि तीर्थंकर उपदेश देनेमें पराश्रित है। अफसोस! न मालूम! यह बात दिगम्बर विद्वानों ने कैसे उठाई होगी? दिगम्बर शास्त्र में भी बिना गणधर तीर्थंकरों का उपदेश होने का स्पष्ट उल्लेख है। देखिए—

भ० ऋषभनाथ तीर्थंकर की भी दिव्य ध्वनि सबसे पहिले बिना गणधर के ही खिरी थी।

दि० पं० परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ कृत चर्चा सागर समीक्षा पृ० १८

इसके अलावा दिगम्बर पुराणों में कई तीर्थंकर व केवलीओ से राजा और गृहस्थों के प्रश्नोत्तर का उल्लेख है।

सारांश-तीर्थंकर वगैरह साक्षरी भाषा बोलते हैं और बिना गणधर ही स्वयं जनता समझ लेती है।

दिगम्बर-तीर्थंकर की निरक्षरी वाणी को "मागधदेव" समझता है और उसके द्वारा जनता समझती है।

अतएव यह एक "देव कृत अतिशय" माना जाता है।

जैन-यह दूसरी कल्पना भी कल्पना ही है हम तीर्थंकर की वाणी को नहीं समझें अविरति मागध देव ही उनकी वाणी समझे और हम उस अल्पज्ञ दुभाषिया की वाणी को ही जिनवाणी यानी आप्तागम मान लेवें यहतो अजीब दिगम्बर फरमान है।

हां ऐसा सम्भव हो सकता है कि देव भगवान की वाणी का ब्रोडकास्ट करें किन्तु भगवान् की निरक्षरी वाणी को साक्षरी बना देवें यह नहीं हो सकता है।

इसके अलावा केवली भगवान् को तो वह "देवकृत-अतिशय" नहीं है अतः उनकी वाणी तो निष्फल ही रहेगी।

दिगम्बर-यद्यपि दिगम्बर शास्त्र तीर्थंकरकी निरक्षरी वाणी को देवकृत अतिशय के जरिए साक्षरी बनना मानते हैं। किन्तु दिगम्बर मान्य आचार्य यति वृषभ उस बातका स्वीकार करते नहीं है। वे तो दिव्यध्वनिको देवकृत अतिशय में नहीं किन्तु केवलज्ञान के अतिशय में गिनाते हैं। कहा है कि—

घादिक्खएण जादा, एक्कारस अदिसया महत्यरिया।
एदं तित्थयराणं, केवलणाणम्मि उप्पण्णे ॥१०३॥

माने तीर्थंकर भगवान् को घाति कर्मों के क्षय होने पर ११ अतिशय उत्पन्न होते हैं।

(आचार्य यतिवृषभ कृत त्रिलोक प्रज्ञप्ति, प० ४ गा० १०३)

भगवतीजी सूत्र)भी ६०००० प्रश्नोत्तर का संग्रह था, इस से भी साक्षरी वाणीकी ताईद होती है। मगर दिगम्बर शास्त्र कहते हैं कि-तीर्थंकर भगवान् मुखसे नहीं बोलते हैं, ब्रह्मरन्ध्र के द्वार से आवाज देते हैं, वही निरक्षरी जिन वाणी है।

जैन-यह तो अपौरुषेय वाद सा हो गया। वेद भी विना मुख के विनामुख वाले के रचे माने जाते हैं, यह ब्रह्मरन्ध्र निर्गत निरक्षरी जिनागम भी वैसा ही "आप्तागम" माना जायगा, मगर भूलना नहीं चाहिए कि पुद्गल के संयोग या वियोग से शब्द उत्पन्न होते हैं जो संयोग, वियोग ब्रह्मरन्ध्रमें नहीं हैं। वास्तवमें वाणीका स्थान तो मुख ही है।

दिगम्बर-किसी दिगम्बर आचार्य के मतसे "तीर्थंकर भगवान् सर्व शरीर से बोलते हैं" ऐसा माना जाता है।

जैन-यदि सर्व शरीर से वाणी निकले तो एकेन्द्रिय को भी वचन लब्धि का अभाव मानने की जरूरत नहीं रहेगी। क्यों कि विना मुखके वचन लब्धि होती हो तो एकेन्द्रीं भी उसका अधिकारी हो जायगा मगर शास्त्र इस बात की गवाही नहीं देते हैं। दिगम्बर शास्त्र तो साफ २ बताते हैं कि—

(१) मुखवाले को ही वचन योग होता है, यानी वचन का स्थान मुख ही है।

(२) मुख वाले को ही भाषा पर्याप्ति होती है, माने-मुखसे ही वाणी निकलती है।

(३) मुख वाले को ही वचन बल है। माने-वचन का सामर्थ्य मुखमें ही है। बात भी ठीक है कि-कंठतालु वगैरह मुखमें ही होते है अतएव कंठपतालव्य वगैरह की रचना भी मुख से ही होती है।

गणधर, मागधदेव, अतिशयमें संख्याभेद ब्रह्मरन्ध्र और सर्वावयव वगैरह भिन्न २ कल्पना ही इस विषय का कमजोरी जाहिर करती हैं।

श्वेताम्बर शास्त्र तो बताते हैं कि-

तीर्थंकर देव साक्षरी वाणी से उपदेश देते हैं। मालकोष वगैरह राग गाते हैं और उनके साथ देवों के बाजे बजते हैं।

दिगम्बर-दिगम्बर शास्त्रोंसे केवली की साक्षरी वाणीके प्रमाण दीजिए

जैन-दिगम्बर समाज शास्त्र भी केवली की वाणी को साक्षरी मानते हैं। देखिये प्रमाण—

(१) केवलीओंको सुस्वर और दुःस्वर दोनों प्रकृतियाँ उदय में होती हैं।

(गोम्मटसार कर्मकांड गा० १०१)

(२) तीर्थंकर भगवान् पर्याप्त हैं, 'भाषापर्याप्ति'वाले हैं।

(बोधप्राभृत गा० १४-१८, गोम्मटसार कर्म० गा० २७१,५९५,५९६,५९७)

(३) केवली को १० प्राण हैं, माने भाषाप्राण भी है।

(बोधप्राभृत गा० १५, १८)

(४) केवली को १ औदारिक काययोग, २ औदारिक मिश्रकाययोग, ३ कार्मणकाययोग, ४ सत्य मनोयोग, ५ असत्या मृषा मनोयोग, ६ सत्य वचनयोग, ७ असत्यामृषा वचनयोग ये ७ योग होते हैं

(क० ४।२८)

(५) छप्पिय पज्जत्तिओ, बोधव्वा होंति सण्णिकायाणं।
एदा हि अणिवत्ता, ते दु अपज्जया होंति ॥६॥

(मूलाचार परि० १२ पर्याप्ति श्लो० ६)

(६) सार्वार्ध मागधीया भाषा ॥३९॥

अर्थ—भगवान की दिव्य ध्वनि अर्धमागधी भाषा में होती है। भगवान् की दिव्य ध्वनि एक योजन तक सुनाई पड़ती है परन्तु मागध जातिके देव उसे समवसरण के अंत तक पहुँचाते रहते हैं ॥३९॥ (अन्य-प्रति श्लो० ४१)

ध्वनिरपि योजनमेकं प्रजायते श्रोत्रहृदयहारी गंभीरः ॥५५॥

(अन्य प्रति श्लो० ५८)

(आ० पूज्यपादकृत नंदीश्वरभक्ति पं० लालारामजी जैनशास्त्रीकृत अर्थ पृ० १४७,१५२)

(७-८) सार्वार्ध मागधीया० भाषा।

(बोधप्राभृत गा० ३२ टीका, दर्शनप्राभृत गा० ३५ टीका)

(९-१०) तस्सइ पडिहारा ॥

तीर्थंकर भगवान की दिव्य ध्वनि और दुंदुभि ये प्रातिहार्य होते हैं।

(बोधप्राभृत गा० ३२ दर्शनप्रा० गा० ३५ टीका)

(११) अर्हद् वक्त्र प्रसूतं ॥ (दिगम्बर पूजापाठ)

(१२) तीर्थंकर व केवली प्रश्न का उत्तर देते हैं जिसमें मुख व्यापार होता है। (आदि पुराण २४, तथा भरत प्रश्नोत्तर)

(१३) कर्मप्रकृति ३० का उदयस्थान। नं. ३ वाले ऊपरके २४ में अंगोपांग संहनन परघात प्रशस्तविहायोगति उच्छ्वास व कोई स्वर जोड़ने से ३० का उदय सामान्य समुद्घात केवली के "भाषापर्याप्ति" काल में होता है।

(ब्र० शीतलप्रसाद का मोक्षमार्ग प्रकाशक भा० २ अ०४ पृ०१५५,१०५,१०१)

(१४) पेच्छंत इव वदंता वा।

"स्वयं तीर्थंकर भगवान् मुझसे बोलते हैं" यह 'भाव' तीर्थंकर की प्रतिमाओंके मुख पर भी बना रहता है।

(आ० नेमिचन्द्रजीकृत त्रिलोकसार गा० ९८१)

(१५) वचन बोलत मनो हंसत कालुष हरं।
भवन वासन ५२ प्रतिमा नमों सुखकरं ॥६॥

(दिगम्बर प० द्यानतरायकृत नंदीश्वरपूजा)

जिनेन्द्रबिंब के मुख की आकृति ही बताती है कि-तीर्थंकर भगवान मुझसे बोले।

(१६) जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा ॥४॥
मोक्षमार्गमशिषन् नरामरान् ।
नापि शासनफलैषणातुरः ॥७३॥
काय-वाक्य-मनसां प्रवृत्तयो ।
नाभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया ॥
नासमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो ।
धीर ! तावकमचिन्त्यमीहितम् ॥७४॥
तव वागमृतं श्रीमत्, सर्वभाषास्वभावकम् ।
प्रीणयत्यमृतं यद्वत्, प्राणिनो व्यापि संसदि ॥९७॥

यस्य च मूर्तिः कनकमयीव,
स्वस्फुरदाभा कृतपरिवेषा ॥
वागपि तत्त्वं कथयितुकामा,
स्यात्पदपूर्वं रमयति साधून् ॥१०७॥
विधेयं वार्यं चानुभयमुभयं मिश्रमपि तद् ।
विशेषैः प्रत्येकं नियम विषयैश्चापरिमितैः ॥
सदान्योन्यापेक्षैः सकलभुवन ज्येष्ठ गुरुणा ।
त्वया गीतं तत्त्वं बहुनय विवक्षेतरवशात् ॥११८॥

(स्वामी समन्तभद्रकृत बृहत्स्वयंभूस्तोत्र)

(१७) तस्याग्रशिष्यो वरदत्त नामा,
सद्दृष्टि-विज्ञान-तपःप्रभावात् ।
कर्माणि चत्वारि पुरातनानि,
विभिद्य कैवल्यमतुल्यमापत् ॥२॥
एवं स पृष्टो भगवान् यतीन्द्रः,
श्रीधर्मसेनेन नराधिपेन ।
हितोपदेशं व्यपदेष्टुकामः,
भारत्यवान् वक्तुमनुग्रहाय ॥४२॥
येऽर्थास्त्वया प्रश्नविदा नरेन्द्र !
चतुर्गतीनां सुखदुःखमूलाः ।
पृष्टा यथावद्विनयोपचार-
रेकाग्रबुद्ध्या शृणु ते ब्रवीमि ॥४३॥

(आ० जटासिंहनन्दिविरचित, वरांगचरित सर्ग ३ पृ० २६-३०)

इन दिगम्बर प्रमाणों से निर्विवाद है कि-तीर्थंकर व केवलीओं की वाणी मुखसे निकली है, साक्षरी है, मनोहर है, गम्भीर है, स्याद्वादवाली है, नयनिक्षेपादियुक्त है और गेयपद्धतिवाली है।

दिगम्बर-केवलीओं को मन होता है या नहीं इसके लिये भी कुछ मतभेद है।

जैन—केवली भगवान को केवलज्ञान होने के कारण भावइन्द्रिय नहीं हैं किन्तु द्रव्यइन्द्रिय रहती हैं, वैसे भाव मन नहीं होता है किन्तु द्रव्यमन रहता है और वे शरीर से व वचन योगसे आहार निहार विहार उपदेश वगैरह काम लेते हैं। वैसे द्रव्य मन से भी काम लेते हैं।

दिगम्बर—केवलीओं को द्रव्यमन होने का दिगम्बर प्रमाण दीजीए—

जैन—दिगम्बर शास्त्र भी मानते हैं कि केवली भगवान् को द्रव्यमन है। देखीए—

(१) केवली को मन है, अत एव वे पर्याप्त हैं।

(गोम्मटसार कर्मकांड, गाथा ११९)

(२) पज्जत्तिगुणसमिद्धो उत्तमदेवो हवइ अरुहो ॥३४॥

टीका—मनःपर्याप्ति एवं कायवाङ्मनसां।

दसपाणा पज्जत्ती ॥३८॥

टीका—षट् पर्याप्तयश्चार्हति भवन्ति।

(आ० कुन्दकुन्दकृत बोधपाहुड)

(३) पंचवि इंदियपाणा मणवयकायेण तिण्णि बलपाणा ॥३५॥

दसपाणा पज्जत्ती ॥३८॥

टीका—दशप्राणाः पूर्वोक्त लक्षणाः अर्हति भवन्ति।

माने—अरिहंत में-केवली में १० प्राण हैं जिनमें एक मन भी है।

(बोधपाहुड)

(४) सम्मण सण्णि आहारे ॥३३॥

टीका—पंचेन्द्रियमध्येऽर्हन् संज्ञी होकर एव....

अरिहंत केवली संज्ञी है माने मनवाले हैं। मनरहित होता है वह असंज्ञी माना जाता है, तीर्थंकर भगवान् मन वाले हैं अतएव संज्ञी हैं।

(आ० कुन्दकुन्दकृत बोधपाहुड)

(५) केवली को सत्य मनोयोग और असत्यामृषा मनोयोग होते हैं।

(६) सयोगी केवली को वचन योग है, अतः औपचारिक मनोयोग भी है। वे मनोवर्गणा के स्कंध लेते हैं।

(गोम्मटसार, जीवकांड, गा० २२७, २२८, ६६३, ६६४)

केवलीओंको द्रव्यमन है, मगर जा वस्तु है वह तो है ही, असत् नहीं है, फिर भी उसे औपचारिक मानना, यह शब्दव्यवहार मात्र ही है वस्तुतः केवलीको द्रव्यमन है।

(७) छप्पिय पज्जत्तीओ, बोधव्वा होंति सण्णिकायाणं ॥६॥

टीका—आहारशरीरेन्द्रियानमाणभाषामनःपर्याप्तयः बोधव्वा बोधव्याः सम्यगवगन्तव्याः होंति भवन्ति सण्णिकायाणं संज्ञिकायिकानां, ये संज्ञिनः पंचेन्द्रियास्तेषां षडपि पर्याप्तयो भवन्ति इत्यवगन्तव्यम् ॥६॥

(दि० आ० वट्टकेरस्वामीकृत मूलाचार परि० १२ पर्याप्तिधिकार)

(८) समनस्कामनस्काः। मनो द्विविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति। तत्र पुद्गलविपाकि कर्मोदयापेक्षं द्रव्यमनः। वीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमापेक्षया आत्मनो विशुद्धिर्भावमनः तेन मनसा सह वर्तन्ते इति समनस्का। न विद्यते मनो येषां ते इमे अमनस्काः। एवं मनसो भावाभावाभ्यां संसारिणो द्विधा विभज्यन्ते।

(तत्त्वा० अ० २ सू० ११) (सर्वार्थ सिद्धि पृ० ९९)

माने—संसारी जीव दो प्रकार के हैं, मनवाले वे समनस्क और मन से रहित वे अमनस्क हैं, तीर्थंकर अमनस्क नहीं हैं, समनस्क हैं-मनवाले हैं।

भावमन स्तावत् लब्धि उपयोग लक्षणं, पुद्गलावलंबनात् पौद्गलिकं। द्रव्यमनश्च पौद्गलिकम्।

(सर्वार्थसिद्धि अ० ५ सू० १९ पृ० १८१)

(९) एकेन्द्रियास्तेपि पद्दपत्रपद्माकारं द्रव्यमनस्तदाऽऽधारेण शिक्षालापोपदेशादिग्राहकं भावमनश्चेति, तदुभयाभावात् संज्ञिन एव।

माने—एकेन्द्रियको द्रव्य या भाव में से कोई भी मन नहीं है, अतः वो असंज्ञी माना जाता है, तीर्थंकर भगवान् भावे अपि संज्ञी हैं।

(बृहद् द्रव्यसंग्रह, जै० द० व० पृ० २०५ से २०७)

(१०) मनोबलप्राणः पर्याप्तसंज्ञिपंचेन्द्रियेष्वेव संभवति, बंधि बन्धन-वीर्यान्तराय-नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमस्यान्यत्राऽभावात्।

(आ० माघनन्द त्रैविद्यदेवकृत गोम्मटसार की टीका पृ० १०)

माने—पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में मनप्राण होता है अतः केवली भगवान में भी मन है।

(११) कायवाक्यमनसां प्रवृत्तयो।

नाभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया॥७४॥

केवली तीर्थंकर भगवान् मन की प्रवृत्ति करते हैं

(स्वामी समन्तभद्रकृत बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र)

(१२) सण्णीण दस पाणा॥१५२॥

टीका—संज्ञिनः पर्याप्तस्य पुनः सर्वेऽपि प्राणा भवन्ति।

(मूलाचार परि० १२, पर्याप्त्यधिकार)

केवली संज्ञीपर्याप्ता हैं उन्हें दशा प्राण हैं।

(१३) न विद्यते योगो मनवचनःकायपरिस्पंदो द्रव्यभावरूपो येषां तेऽयोगिनः।

माने—केवली भगवान् को मन वाणी और देह की क्रिया है, अयोगी केवलीको नहीं है।

(मूलाचार प० १२ गा. १५५ टीका पृ० २०)

दिगम्बर—केवली भगवान् मुक्त होते हैं तब सिद्ध बनते हैं। यहाँ श्वेताम्बर मानते हैं, कि सिद्ध दशा में उनके आत्म प्रदेश में किञ्चिन्न्यून २/३ अवगाहना रहती है। परन्तु दिगम्बर विद्वान इसका इन्कार करते हैं।

श्वेताम्बर-आ० श्रीन रत्नाचार्य लिखते हैं कि

"सिद्धात्मा का आकार पूर्वशरीर प्रमाण सांगोपांग बना रहता है 'किंचित' ऊनका अर्थ यह है कि जहाँ २ आत्मा के प्रदेश नहीं थे इतना आकार कम होजाता है, जैसे नख केश व रोओं का व त्वचा पर की महीन झिल्ली का" (पृ० ८०)

जैन-दिगम्बर विद्वान भी सिद्ध भगवान् का आकार मुक्त शरीर से २/३ प्रमाण में ही मानते हैं। देखिये प्रमाण-

(१) पं० लालारामजी सिद्धभक्ति में लिखते हैं "उसका परिमाण अन्तिम शरीर से कुछ कम रहता है। क्योंकि-शरीर के जिन २ भागों में आत्मा के प्रदेश नहीं हैं उतना परिमाण घट जाता है।शरीर के भीतर पेट नाक कान आदि भाग ऐसे हैं जिनमें (पोले भागमें) आत्माके प्रदेश नहीं हैं। इसलिये आचार्य कहते हैं कि अन्य ऐसे कारण हैं जिनसे यह सिद्ध हो जाता है कि मुक्त जीव का परिमाण अन्तिम शरीर के परिमाण से कुछ कम है। यह कमी आकार की अपेक्षा से नहीं है किन्तु घनफल की अपेक्षा से है" ॥

(दशभक्त्यादि संग्रह पृ० ४४)

(२) वे ही अन्यत्र बताते हैं कि—

"यह दो भाग का रह जाना घनफलकी अपेक्षा है। अन्तिम शरीर का जो घनफल है उससे सिद्ध अवस्था घनफल एक भाग कम है, क्योंकि पेट आंटी शरीर के भीतर का पोला भाग भी उस घन फल में से निकल जाता है"।

(चर्चासागरसमीक्षा पृ० ७८)

(३) चम्पालाल पांडे लिखते हैं कि—

"जिस शरीर से केवली भगवान् मुक्त होते हैं उसका तीसरा भाग कम हो जाता है। दो भाग प्रमाण सिद्धों की अवगाहना रहती है। जैसे तीन धनुष के शरीर वाले मनुष्य की अवगाहना सिद्ध अवस्था में आकर दो धनुषकी अवगाहना के समान रह जाती है। जो जीव केवल नख केश रहित सिद्धों की अवगाहना मानते हैं वह भ्रम है"।

(च० पृ० ७७)

(४) "जैन गजट"-सोलापुरके तंत्री पं० वंशीधरजी लिखते हैं
"किंचिदूनका मतलब २/३ क्यों न समझा जाय?"

+ + "उपांगादि ३०, प्रकृतियों का उदयोग केवलीके अन्त
समय में नाश हो जाता है। तब अन्त में नासिका आदि अनेक
उपांगों के छिद्र थे नहीं रह सकते"

(जैन गजट व० ३७ अं० २ और व० पृ० ५९

इन प्रमाणों से निर्विवाद स्पष्ट है कि—सिद्ध भगवान की
अवगाहना त्यक्त अंतिम शरीर के २/३ हिस्से में रह जाती है।

दिगम्बर-केवली भगवान ४ कर्मयुक्त हैं औदारिक शरीरवाले
हैं ११ परिषह उपसर्ग सहते हैं आहार लेते हैं पानी पीते हैं
रोगी होते हैं निहार करते हैं सातों धातु युक्त हैं देहप्रवृत्ति
करते है साक्षरी भाषा बोलते हैं इत्यादि २।

यदि यह बातें दिगम्बर शास्त्रों से सिद्ध हैं तो फिर दिग-
म्बर विद्वान् इनकी मना क्यों करते हैं?

जैन-दिगम्बर विद्वान्-दिगम्बरत्व की रक्षाके लिये इन बातों
की मना करते हैं। वे एकान्त नग्नत्व में जोर देते हैं और उसी
के कारण वस्त्र, पात्र, गोचरी विधि, आहार लाना इत्यादि की
मना करते हैं। ठीक उसी सिलसिले में क्रमशः केवली के लिये
आहार लाना आहार करना औदारिक शरीर सातधातु रोग
परिषह उपसर्ग निहार अग्निसंस्कार देहप्रवृत्ति १८ दूषण वाक्
प्रवृत्ति साक्षरी भाषा और द्रव्यमन वगैरह की मना करते हैं॥

माने-यह सारी बात दिगम्बरत्व के कारण खड़ी की गई है
दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि दिगम्बर विद्वानों ने जग-
त्कर्ता ईश्वर अपेक्षा तीर्थंकर का जीवन कुछ विशेषता युक्त है
ऐसा बतलाने के लिये आहार, रोग, निहार, अग्निसंस्कार, साक्षरी
वाणी इत्यादि का निषेध करदिया होगा। और उस अतिशयोक्ति
पूर्ण वर्णन को ही वास्तविक रूप न शास्त्रों में दाखिल करदिया
होगा। कुछ भी हो, उन कल्पनाओं को दिगम्बर शास्त्रों का आधार
नहीं है।

३४ अतिशय–अधिकार

दिगम्बर–तीर्थंकर भगवान को ३४ अतिशय होते हैं, जो अन्य साधारण मनुष्यों में नहीं किन्तु सीर्फ तीर्थंकर भगवान् में ही होते हैं वे अतिशय माने जाते हैं। वे, सफेद खून वगैरह १० जन्मसे, चतुर्मुख वगैरह १० घातिक्षय से, और अर्धमागधी भाषा वगैरह १४ देवसान्निध्यसे यूं ३४ होते हैं।

(आ० पूज्यपाद कृत नंदीश्वर भक्ति श्लो० ३५ से ४८ दूसरी प्रतिमें श्लो० ३८ से ५१ दर्शनप्राभृत गा०३५ श्रुतसागरी टीका पृ० २८ बोधप्राभृत गा० ३२ श्रुतसागरी टीका पृ ९८)

जैन–तीर्थंकर की जीवनी में ये "अतिशय" ही प्रधान वस्तु हैं, अतः इन पर अधिक गौर करना चाहिये।

दिगम्बर–तीर्थंकरके शरीर में जन्म से १० अतिशय होते हैं। १ पसीनाका अभाव २ निर्मलता ३ सफेदखून और मांस ४ समचतुरस्रसंस्थान ५ वज्रऋषभनाराच संहनन ६ सुरूप ७ सुगंध ८ सुलक्षण ९ अनन्त बल १० प्रियहितवादित्व।

जैन–वज्रऋषभनाराच संहनन सब मोक्षगामी मनुष्यको होता ही है, अतः उसे तीर्थंकरका अतिशय नहीं मानना चाहिये। खून और मांस दो भिन्न२ हैं पर उनके निमित्त का अतिशय एक है, इसी तरह सर्वाङ्गसुन्दर शरीर ऐसा १ अतिशय रखने से उसमें निर्मलता सुरूपता वगैरह अतिशयोंका भी समावेश हो सकता है। इस हिसाब से इन अतिशयों की संख्या भी कम हो जायगी।

तीर्थंकर को शुरूसे १० अतिशय होते हैं बढते २ केवली दशामें ३४ अतिशय हो जाते हैं माने—शुरूके १० अतिशय उन्हें

आजीवन रहते हैं। नतीजा यह है कि सफेद खून और सफेद मांस अतिशय तीर्थंकरमें आजीवन रहता है। इस हालतमें केवली तीर्थंकर के शरीर में खून मांस आदि सात धातुओंका अभाव मानना, यह तो नितान्तभ्रम ही है।

दिगम्बर–आ० श्रुतसागरजीने बोधप्राभृतकी टीकामें निर्मलता अतिशय से निम्न प्रकार की ३ बातें बताई हैं।

१–तीर्थंकरको जन्मसे मलमूत्र नहीं होते हैं।

२–उनके मातापिताको भी मलमूत्र निहार नहीं होते हैं।

तीत्थयरा तप्पियरा, हलहर चक्की य अद्धचक्की य

देवा य भूयभूमा, आहारो अत्थि नत्थि नीहारो।

३–तीर्थंकरके दाढी मूंछ नहीं होते हैं सिर्फ सिर पर केश होते हैं।

देवा वि य नेरइया, हलहर चक्कीय तहय तित्थयरा।

सव्वे केसव रामा, कामा निक्कुंचिया होंति॥१॥

जैन–खाना पीना और निहार नहीं करना, यह तो अजीब मान्यता है। वे बीमार होते हैं दवाखोराक लेते हैं पसीने आते हैं छींक खाते हैं डकार लेते हैं जंभाई करते हैं उनको मल परिषह होता है उनके पुत्र पुत्री सन्तान होती हैं, फिर भी वे निहार नहीं करते हैं यह कैसे मान लिया जाय? हां यह हो सकता है कि उनकी निहार क्रिया गुप्त रहे। विशिष्ट मनुष्योंके लिये इतना होना संभवित है, किन्तु वे मलमूत्र निहार ही करते नहीं है, यह नहीं हो सकता है। यह अतिशय है तीर्थंकर का और निहार नहीं करते हैं उनके मातापिता, यह भी बेहद बात है।

दिगम्बर विद्वान मल और केश इत्यादिको मल ही मानते हैं, फिर इनके रहने पर भी सिर्फ दाढी मूछोंके अभाव को ही निर्मलता अतिशय मानते हैं। यह भी विचित्र घटना है।

सारांश–यह बातें गलत और आगमसे निराधार हैं। कल्पनामात्र हैं।

दिगम्बर—तीर्थंकर भगवानको ४ घातिकर्मके क्षय होने से १० अतिशय उत्पन्न होते हैं। वे हैं ११ चारसौ कोश अकाल न पड़े १२ आकाशमें चले १३ प्राणि घात न होवे १४ कवलाहारका अभाव १५ उपसर्ग का अभाव १६ चतुर्मुखता १७ सब विद्याओं प्रभुत्व १८ प्रतिबिंब न पड़े १९ आंखोंमें पलकोंका अभाव (आंखकी टीमकार न करे) २० नख केश बढ़ नहीं।

ये अतिशय तीर्थंकरको ही होते हैं, केवलीको नहीं होते हैं अतः यह ये तीर्थंकरके अतिशय गिने जाते हैं और इनके जरिये तीर्थंकर भगवान की विशेषता कही जाती है। बात भी ठीक है कि केवली भगवानको ४०० कोश तक सुभीक्षता, चतुर्मुखता वगैरह अतिशय नहीं होते हैं।

आ० पूज्यपाद फरमाते हैं कि "घात्यतिशयगुणा भगवतो (श्लो० २८)" पं० लालाराम जैन शास्त्री भा० २ बताते हैं कि—ये दश अतिशय भगवान तीर्थंकर परमदेवके घातिया कर्मोंके नाश होने पर होते हैं (पृ. १४७)

जैन—यह सचमुच बात है कि—ये अतिशय तीर्थंकरके हैं, केवलीके नहीं हैं। अतः केवली भगवानके लिये कवलाहार और उपसर्गका अभाव बताना भी भ्रम ही है। जो कि यह वस्तु केवली अधिकारमें सप्रमाण स्पष्ट कर दी गई है। अस्तु

अब रही तीर्थंकरदेव की बात। तीर्थंकरोंके इन अतिशयोंमें कई अतिशय सिर्फ कल्पनारूप ही है क्योंकि इनके खिलाफ में दिगम्बर शास्त्र प्रमाण मिलते हैं।

दिगम्बर—मानलिया जाय कि—सुभीक्षताके लिये कुछ कम शेष होगा किन्तु तीर्थंकरदेव आकाशमें विहार करते हैं, यह तो ठीक है।

जैन—हम केवलीअधिकारमें केवली भगवान् भूमि पर विहार करते हैं और शिलापट्ट पर बैठते हैं यह उल्लेख कर दिया गया है वास्तव में तीर्थंकर भगवानके लिये भी वैसा ही है। वे आसन पर बैठते हैं और भूमि पर पैर धर कर विहार करते हैं फरक इतना ही है कि—उनके पैरके नीचे देव कमलोंकी रचना करते हैं।

आहारोय......हयाई अवहो ॥३४॥

(आ० कुन्दकुन्दाचार्य [illegible])

(३) यातं ततः परमदुग्धरमानतर्क्यं ॥८३॥

(आ० समन्तभद्र स्वयंभू स्तोत्र)

(४) तैजस समूह कृतस्य, द्रव्यस्याभ्यवहरणस्य पर्याप्त्या
अनुत्तरपरिणामे अत्र क्रमेण भगवति न तत्सर्वम् ।१।

(५) आद्यश्चतुर्दशदिनै र्विनिवृत्त योगः ।
षष्ठेन निष्ठितकृति र्जिन वर्धमानः ॥
शेषा विधूत घनकर्म निबद्धपाशाः ।
मासेन ते यतिवरास्त्वभवन् वियोगाः ॥२६॥

मोक्ष पाने समय के० भ० आदिनाथ जीने चौदह दिन का के० भ० वर्धमानस्वामीने छट्ठ का और शेष २२ के०तीर्थंकरों ने महीना का तप किया। माने वे कवलाहार लेते है उनका त्याग किया।

(आ० पूज्यपादकृत-निर्वाण भक्ति)

सारांश—तीर्थंकर भगवान् आहार लेते है, तप भी करते हैं, उनको आहार का अभाव मानना यह कल्पना ही है,

इस तरह और २ अतिशयों में भी कुछ २ कम वेशी होगी।

दिगम्बर—तीर्थंकर भगवान को केवलज्ञान होने से १४ अतिशय देवकृत होते हैं। वे ये हैं—।

२१ भाषा सार्वामागधी होवे २२ सब जीवों से मैत्री रहे, २३ छै ऋतुओं के वृक्ष एक साथ पत्ते, फूल, गुच्छे, और फलों से सुशोभित रहे २४ भूमि रत्नमयी और शीशा के समान निर्मल बनी रहे २५ अनुकूल हवा चले २६ जनता में आनन्द बढ़े २७ वायु, विहारभूमि से एकेक योजन तक कुडा, कर्कट कांटे और कँकरी को हटा देवे और भूमि में खुशबू फैली रक्खे, २८ स्तनितकुमार खुशबू पानी की वर्षा करे २९ विहार में तीर्थंकर के पैर के नीचे एकेक योजन प्रमाण १५ (२२५) कमल रहे । ३० भूमि में सब अनाज होवे । ३१ आठों दिशाएं और आकाश स्वच्छ निर्मल रहे ३२ देवों को महापूजा के निमित्त आह्वान होता रहे । ३३ आकाश में निराधार धर्मचक्र चले ३४ अष्ट मांगलीक चले।

जैन—इन अतिशयों के चुनाव में एक बड़ी कमी है कि-जिनको शामिल नहीं छोड़ना चाहिये ऐसे ८ अतिशय छोड़ दिये गये हैं, संभव है कि कवलाहार का अभाव इत्यादि कल्पित अतिशयों ने उनका स्थान ले लिया है और उनको कम कर दिया गया है। मगर यह ठीक नहीं है। आखीर में उनको दूसरे रूप में स्वीकार करना ही पड़ता है। इसलिये उनको अतिशयों में ही रखना उचित था। इसके अलावा यह भी कमी है कि चतुर्मुखता और छाया पड़े नहीं ये अतिशय केवल ज्ञान के बताये हैं जो देवकृत होने चाहिये, और अर्धमागधीभाषा जिसका सम्बन्ध सर्वविद्या में प्रभुत्व के साथ है यह और सर्वजीवों से मैत्री ये अतिशय देवकृत बताये हैं याने-तीर्थंकर की वाणी को देव के अधीन और "अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः" ऐसी शान्ति को देवकृत बताई है किन्तु ये अतिशय तो केवल ज्ञान के ही होने चाहिये।

आचार्य यति वृषभने भी दिव्यध्वनि को तिलोयपण्णत्ति पर्व ४ श्लोक ९०४ में केवल ज्ञान का अतिशय माना है, और आ० पूज्यपादने भी "सर्वभाषा-स्वभावकम्" से दिव्यध्वनि को स्वाभाविक अतिशय रूप माना है।

नतीजा यह है कि-ये ३४ अतिशय वास्तविक नहीं है इनमें कुछ कल्पना है, कुछ कम वेशी है और कुछ अव्यवस्था भी है।

दिगम्बर-सब तो तीर्थंकरों के ३४ अतिशय संभवत श्वेताम्बर शास्त्रोक्त ठीक माने जायेंगे। वे ये हैं-

जन्म के ४ अतिशय-१ रज रोग और पसीना आदि से रहित सर्वांगसुन्दर देह, २ सफेद खून और मांस, ३ गुप्त (अदृश्य) आहार और गुप्त निहार, ४ सुगन्धि श्वासोच्छ्वास।

घातिकर्मक्षय (केवलज्ञान) के ११ अतिशय-५ योजनप्रमाण समवसरण में कोटाकोटी प्रमाण परिषदा का समावेश, ६ वाणी का मेघ की वर्षा के समान श्रोताओं की भाषा में परिणमन, और उसके द्वारा बोधकथन *७ पच्चीस २ योजन तक पुराने रोगों

* इमामगीह व उसके शिष्यों की वाणीमें भी ऐसाही भाषा परिणमन माना गया है। अकमाल पुस्तक में लीखा है कि—

का विनाश, ८ जातिवैर का भी अभाव, ९ अकाल का अभाव, १० युद्धविप्लव का अभाव, ११ प्लेग आदि का अभाव, १२ अनाज के विनाश करने वाले तीड़ चूहा वगेरह का अभाव, १३ अतिवृष्टि न होवे १४ अनावृष्टि न होय १५ शिर के पीछे भामण्डल का उद्योत रहे।

देवकृत १९. अतिशय–१६ पाद पीठ युक्त मणिमय सिंहासन, १७ तीन छत्र, १८ इन्द्रध्वज, १९ दो सफेद चामर, २० धर्मचक्र, ये ५ साथ में रहे आकाश में चले। २१ स्थिरता में अशोक का प्रादुर्भाव, २२ समवसरण में चतुर्मुखता चारों दिशा में ४ तीर्थंकर दीख पड़ें, २३ समवसरण में मणि स्वर्ण और चांदी के तीन गढ की रचना, २४ विहार के निमित्त ९ कमलों की रचना, २५ कांटे मुड़ जांय यानी कांटे की नोक उलटी हो जाय, २६ केश रोम और नख एक ही स्वरूप में रहें, २७ स्पर्श रस रूप गन्ध और शब्द अच्छे २ बने रहें, २८ छै ऋतु बनी रहें, २९ खुशबू पानी की वर्षा होय, ३० पांचो रंग के फूल बरसें, ३१ पक्षी प्रदक्षिणा देवें शुभ शकुन रहे, ३२ अनुकूल हवा चले, ३३ दरख्त झुकते रहें झुक २ कर नमस्कार करें, ३४ दुन्दुभि बाजे।

तीर्थंकर भगवान को ये ३४ अतिशय होते हैं
(आ० नेमिचन्द्रसूरिकृत प्रवचन सारोद्धार)

जैन—ये अतिशय वास्तविक हैं व्यवस्थित हैं और इनमें कमी नहीं है।

▷<❀>◁

उन ११ शिष्यों पर "हद"की असर होती थी, और युनानी वगेरह हर एक भाषावाले उनके उपदेशको अपनी २ भाषामें समज लेते थे।

भूलना नहीं चाहिए कि–इसामसीह ने हिन्द में आकर जैनधर्म का अभ्यास किया था (देखिए भा० १ पृ० ११) उपरोक्त उपदेश परिणमन की बात भी उसने श्वेताम्बर जैनधर्म से ली है।

तीर्थंकराधिकार

दिगम्बर-तीर्थंकर सम्बन्धी कई मान्यतायें और वर्तमान चौवीसी के तीर्थंकरों की जीवनीयों के लिए श्वेताम्बर और दिगम्बर में कुछ २ मतभेद है।

जैन—उनको भी सुलझाना चाहिये.

दिगम्बर—भगवान् ऋषभदेव की माता मरुदेवी भरत क्षेत्रके प्रथम तीर्थंकरके पिता की युगलिनी बहिन है, और भरत क्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर की माता वह मानते नाभिराजाकी युगलिनी बहिन है, इस प्रकार अयुगलिक मातापिता से तीर्थंकर का जन्म होता है, जब श्वेताम्बर मानते हैं कि नाभिराजा और मरुदेवी ये दोनों युगलिक राजारानी है उनसे भगवान ऋषभदेवका जन्म हुआ है.

जैन—इसका निर्णय करनेके पूर्व अपने को युगलिक व्यवस्था देखलेनी चाहिये। भोग भूमिके काल में भाई बहिन का एक साथ ही जन्म होता था, और बाद में वे दोनों पतिपत्नी बनते थे, उस समयमें अपनी २ युगलिनी को छोड़ दूसरी से सम्भोग करना व्यभिचार माना जाता था इत्यादि सीधी सादी बातें थी। २० लाख पूर्व की उम्र होने के पश्चात भ० ऋषभदेव ने इनका संस्कार किया।

आ० जिनसेनजीने विक्रमी नवमी शताब्दी में आदिनाथ पुराण बनाया है देवबंदवाले बाबू सूरजभान वकील के "ब्राह्मणों की उत्पत्ति" और "आदि पुराण समीक्षा" वगैरह लेखों से पता चलता है कि रचना काल की परिस्थिति को मद्दे नजर रख कर यह पुराण बनाया गया है, आ० जिनसेनजी ने स्वकालीन कर्णाटक की ब्राह्मणी सभ्यता को सामने रखकर उस पुराण का संदर्भ किया है उसमें प्रधानतया भगवान आदिनाथ-का चरित्र

है। किन्तु तत्कालीन सभ्यताके योग्य कुछ २ संस्काररूप भी है, सम्भवतः ईश्वर के माता पिता युगलिक न हों पर्भी २ बात भी कुछ उस संस्कार का ही फल है।

भ० आदिनाथ ने २० लाख पूर्व के बाद युगलिक प्रवृत्ति में संस्कार दिया यह बात उक्त पुराण के पर्व १६ में श्लो० १४२ से १९० तक हैं जिसका परमार्थ यह है—

"भोग भूमि की रीति के समान होने पर भगवान ने विचार किया कि पूर्व और पश्चिम विदेह में जो स्थिति विद्यमान है प्रजा अब उसीसे जीवित रह सकती है. यहाँपर जिसप्रकार षट्कर्मों की और वर्णाश्रम आदि की स्थिति है वैसे ही यहां होनी चाहिए। इन्हीं उपायों से इनकी आजीविका चल सकती है, अन्य कोई उपाय नहीं है। इसके बाद इन्द्रने भगवान की इच्छानुसार नगर ग्राम देश आदि बसाये, और भगवान् ने प्रजाको छह कर्म सिखला कर क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की स्थापना की।

(ब्राह्मणों की उत्पत्ति पृ० ३१)

इस पाठ से तय होता है कि-भगवान् ऋषभदेवने ही स्वराज्यकाल में भोगभूमि की मर्यादा का परावर्त्तन किया। आजतक युगलिक व्यवहार था, उस को भी भ० ऋषभदेवने ही छुड़ाया है। इस हालतमें "भ० ऋषभदेव के समय तक युगलिक मर्यादा थी और नाभिराजा व मरुदेवी ये दोनो भाई-बहेन थे एवं युगलिक-युगलिनी थे यह मानना अनिवार्य हो जाता है। नाभिराजाने तो युगलिक रीति को संस्कार दिया नहीं है, फिर उसने ऐरवत के राजाकी भगिनी से ब्याह किया, यह कैसे? वे युगलिक ही थे आदिपुराण का उपरका पाठ उसी बातकी ताईद समर्थन करता है, माने नाभिराजाने ऐरवतकी राजभगिनी से ब्याह किया, यह निराधार मान्यता है।

इसके अलावा भरत और ऐरवत क्षेत्रमें आपसी मुसाफरी सम्बन्ध नहीं है, इतना ही क्यों तीर्थंकर या चक्रवर्ती भी यहां आते नहीं हैं-आ सकते नहीं है, अत एव यह नामुमकीन है-कि युगलिक यहां आय, युगलिक मर्यादाको तोडे और यहांकी कन्यासे ब्याह शादी करे।

सारांश यह है कि नाभिराजा और मरुदेवी माता ये दोनों भोग भूमिके युगलिक थे, उस जमाना के आदर्श पति-पत्नी थे।

भगवान ऋषभदेवका व्याह उसी प्रकार का था।

दिगम्बर- आदिपुराण पर्व १६ के कथनानुसार "भगवान ऋषभदेवके ५० लाख पूर्व की उम्र होने के बाद भोगभूमिकी मर्यादाको उल्लंघन करके कर्मभूमि की स्थापना की। कर्मभूमि की यह ठीक बात है, किन्तु उनका व्याह तो कच्छ महाकच्छ की बहिन यशस्वती और सुनन्दा से हुआ है। श्वेताम्बर मानते हैं कि उनका व्याह अपनी सहजात सुमंगला और दूसरे अकाल मृत युगलिक की बहिन सुनन्दा से हुआ है यह बात ठीक नहीं है। युगलिया से व्याह मानना, यह तो सर्वथा विचारणीय समझना है।

जैन- भगवान ऋषभदेवका व्याह माता-पिताकी इच्छानुसार हुआ है। युगलिक भाई बहिन अथवा युगल सम्बन्ध युगलिक रीतिसे ही प्रमाण यह सर्वथा संभवित है।

ऋषभदेव और सुमंगला के व्याह के उल्लेख भी अनिवार्य है इस बनावटकी या शास्त्री सभ्यता के पूर्वक है, इस मान्यता में श्वेताम्बर दिगम्बर के वास्तविक भेद वाला विषय भी नहीं है और यह भी प्रमाण नहीं मिलता है कि भगवानने २० लाख पूर्व पहिले भोगभूमिकी मर्यादाओं का उल्लंघन किया था। आदिनाथ पुराणका पर्व, श्लोक २ बताता है कि भगवान् ऋषभदेव का व्याह हुआ उस समय तक, भोगभूमि की मर्यादाएं ज्यों कि त्यों प्रचलित थी। नाभिराजाने भगवान के साथ युगलिका भी व्याह कर दिया था यह भी मर्यादा को तोड़नेके लिये नहीं किन्तु स्वाभाविक थे। हाँ भगवानने उसके बाद कर्मभूमि की निर्माण स्थापित की तबसे सब बातों में कुछ न कुछ परिवर्तन होने लगा। अब तक पुत्र और पुत्रीका एक ही साथ जन्म होता था उसमें न तो दो पुत्र होते थे, और न दो कन्याएं होती थीं, एकपुत्र और एक कन्या ही होते थे, भगवान् की सन्तान में यह क्रम बदल गया। भगवान को १०० पुत्र हुए २ कन्याएँ हुई और भरत-ब्राह्मी का युगलिक व्याह भी नहीं हुआ।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि भरतचक्रवर्ती बाहुबली के साथ में जन्मी हुई सुन्दरी को स्त्रीरत्न बनाना चाहता था।

तीर्थंकर का जन्म जो जब होगा तब इतना प्रकार उनके माता पिता उनके आवेंगे, बाद ही नहीं किन्तु आप के जन्म से ही आजीवन तक मिलता ही न करे, पर कैसी विचित्र मान्यता है? अस्तु। ऐसी मान्यता जो लिये, सम्प्रदायमें ही विश्वास पैदा होता है, बाद उनकी ही सीमापाता होती है।

दिगम्बर- श्वेताम्बर मानते हैं कि तीर्थंकर भगवान गर्भमें आवे तब उनकी माता १४ स्वप्न देखती है

१ गय २ वसह ३ सीह ४ अभिसेय-
५ दाम ६ससि ७ दिणयरं ८ झयं ९ कुम्भं।
१० पउमसर ११ सागर १२ विमाण भवण
१३ रयणुच्चय १४ सिहिं च ॥१॥
(कल्पसूत्र)

तीन नारक और वैमानिक देवलोक से आया हुआ जीव तीर्थंकर हो सकता है। जैसा कि-

होज्जदु णिव्वुदि गमणं, चउत्थी खिदि णिग्गदस्स जीवस्स।
णियमा तित्थयरत्तं, णत्थि त्ति जिणेहिं पण्णत्तं ॥११८॥
तेण परं पुढवीसु, भयणिज्जा उवरिमा हु णेरइया
णियमा अणंतर भवे, तित्थयरस्स उप्पत्ती ॥११९॥

पहेली, दूसरी व तिसरी नरकसे निकला हुआ जीव तीर्थंकर बन सकता है, चौथी वगैरह नरक से निकला हुआ जीव तीर्थंकर होता नहीं है [११८-११९]

मनुष्य, तीर्यंच, भुवनपति, व्यंतर और ज्योतिष से आया हुआ जीव तीर्थंकर न होवे (गा १२९, १३८) विमान ग्रैवेयक अनुदिशा के विमान और सर्वार्थसिद्ध विमानसे निकला हुआ जीव तीर्थंकर चक्रवर्ती और राम होवे (गा. १३७ से १४१)
(आ० वट्टेरक कृत मूलाचार, परिच्छेद १२)

इस प्रकार आगति के प्रश्न पेत मद्दे नजर रखकर श्वेताम्बर मानते हैं कि- भगवान् वैमानिक देवलोक से च्यवन पावे तो उनकी माता बारहवें स्वप्नमें "विमान" को

देखती है और भगवान् नरकसे आकर गर्भमें रहे तो उनकी माता बारहवे स्वप्नमें "भवन" को देखती है। इस बातको सूचन करके लिये बारहवे स्वप्नमें विमान और भवन ये दो नाम बताए जाते हैं फलस्वरूप तीर्थंकर की माता १४ स्वप्न देखते हैं, मगर यह श्वेताम्बर का भ्रम है। तीर्थंकर की माता तीर्थंकर के च्यवन में १६ स्वप्न देखती है। उक्त १४ स्वप्नों से अधिक सींहासन और मीनयुगल इन दो स्वप्न को भी देखती है।

जैन-तीर्थंकर की माताएं १४ स्वप्न देखें या १६, इस बारेमें अनेक पहेलुसे निर्णय हो सकता है। जैसा कि-

(१) दिगम्बर कवि पुष्पदन्तजी ने अपभ्रंश भाषा के महापुराण की तिसरी संधीमें मारुदेवा के १६ स्वप्न में सिंहासन और नागभुवन ये दो स्वप्न अधिक बताये हैं।

इनमें "नागभुवन" यह तो कल्पसूत्रोक्त नरक के भव को सूचित करनेवाला "भवन" ही है।

अर्वाचीन दिगम्बर शास्त्र तो नागभुवन को स्वप्न मानते नहीं है। अतः उस स्वप्न को अलग न गिना जाय तो १५ स्वप्न रहते है। माने-दिगम्बर समाज कवि पुष्पदंत के समय तक १५ ही स्वप्न मानती होगी और बादमें उसने १६ वे स्वप्न को स्थान दिया होगा। कुछ भी हो। मीनयुगल का स्वप्न बादमें बढा है यह निर्णित बात है।

(२) तीर्थंकर की माता देवविमान को देखती है जब उसमें सींहासन को भी देखती है और सरोवर को देखती है जब उसमें मीनयुगल को भी देखती है। पुनः सिंहासन और मीनयुगलको फिर भी देखे तब तो पुनर्दर्शन हो जाता है स्वप्न की महत्ता कम हो जाती है, और अव्यवस्था हो जाती है।

(३) यूं तो सुपार्श्वनाथ भगवान की माता ने सांप का, नेमिनाथ भगवान की माता ने अरिष्टरत्नों का और पार्श्वनाथ-भगवान की माताने सांप का स्वप्न भी देखा था, यदि स्वप्नमें इनको भी गीनें जाय तो न रहेंगे चौदह, न रहेंगे सोलह। फिर तो संख्याका बंध ही टूट जायगा। मगर ऐसे २ स्वप्न से मुकरर संख्यामें फेरफार किया जाता नहीं है।

शास्त्र में १६ की संख्या भी उसी तरह हो बन गई है।

(४) पं. दौलतरामजीने आदिपुराण पर्व ४३ की वचनिका पृ-२४ में पं. सदासुखजीने रत्नकरंड श्रावकाचार भाषा वचनिका षोडशभावना विवेचन पृ० २४१ में, और पं० परमेष्ठीदास न्यायतीर्थजी ने चर्चासागर समीक्षा पृ २४१में, बताया है कि-

"भगवान् गुणस्थान तीन कल्याणक के धारक हैं, महाविदेह क्षेत्रमें तीर्थंकरों के कल्याणक पांच भी होय तीन भी होय और केवल निर्वाण होय भी होय"।

इस दिगम्बरी मान्यता के अनुसार न च्यवन-कल्याणक नियत है न स्वप्नों के आनेका ही नीयत है। जब तो स्वप्न १४ हो तो भी क्या? और १६ होवे तो भी क्या? दिगम्बर समाज के लिये तो यह चर्चा ही निरर्थक है।

श्वेताम्बर समाज तीर्थंकर के ५ कल्याणकों को नियत रूपसे ही मानता है, १४ स्वप्नों को भी विना विसंवाद एकरूपसे ही मानता है। इस हिसाब से श्वेताम्बर समाज सर्वथा सुव्यवस्थित है।

(५) स्वप्नों का समुच्चय फल देखा जाय तो, १६ स्वप्नों का फल १६ देवलोक के अग्रभागमें गमन, और १४ स्वप्नोंका फल १४ राजलोकके अग्रभागमें गमन हो सकता है। इस हिसाब से १४ स्वप्न ही समुचित है।

ये सब प्रमाण चौदह स्वप्नों के पक्षमें हैं।

दिगम्बर—दिगम्बर ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी लीखते हैं कि-कवि पुष्पदंत के महापुराण में भ० ऋषभदेव के १०१ पुत्र माने हैं।

जैन—दिगम्बर शास्त्र की रचना श्वेताम्बर शास्त्रों की अपेक्षा अर्वाचीन मानी जाती है, इस हालतमें दिगम्बर विद्वान और कुछ २ साम्प्रदायिक भेद लीख देवे यह तो संभवित है। किन्तु यहां १०१ पुत्र क्यों माने गये? यह समझमें आता नहीं है। अन्य दिगम्बर शास्त्र भगवान ऋषभदेव को १०० पुत्र थे वैसा ही मानते हैं।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि तीर्थंकर भगवान् दीक्षा लेनेके पहिले वार्षिक दान देते हैं।

जैन—तीर्थंकर भगवान् कृपण होते नहीं है, दानी होने से राज्यकालमें फुटकर दान देते रहते हैं दीक्षा लेने के पहिले परोपकारके लीये वार्षिकदान देते हैं, और सर्वज्ञ होने के बाद धर्मोपदेश देते हैं दर्शन, ज्ञान व चारित्र का दान करते हैं।

दिगम्बर आदिनाथ पुराणमें भी भगवान के समय में भगवान की आज्ञासे भरतचक्रीने दिया दानका अधिकार हैं। यह वार्षिक दानका नामान्तर है।

दिगम्बर—आदिपुराण में उल्लेख है कि-भगवान् ऋषभ नीलांजना देवीका नाच देख कर वैराग्य पाकर दीक्षा स्वीकार किया। श्वेताम्बर वैसा मानते नहीं है।

जैन—जो ७२ कलाओं का, जिन में नृत्य कलाका भी स दोता है, आदि सृष्टा है। जो कर्मभूमि और धर्मभूमिका निर्माता है उन ऋषभदेव के वैराग्य के लिये दूसरे निमित्त मानना, यह विचित्र समस्या है।

तीर्थंकर भगवान् तीन ज्ञानवाले होते हैं अपने काल को ठीक जानते ही हैं और स्वयंबुद्ध होते हैं। उ बाह्य निमित्त की एकान्त अपेक्षा रहती नहीं है। यद्यपि न्तिक देव अपने आचार के अनुसार तीर्थंकर देव को लेकर तीर्थ प्रवर्तन करो" इत्यादि विनति करते हैं भगवान् तो अपने ज्ञानसे दीक्षाकालको देखकर ही लेते हैं।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि-भगवान् ऋषभदेव कालपर्यन्त देवानीतकल्पवृक्ष के फलोंका ही आहार कि

जैन—देवो भक्ति से कल्पवृक्षके फल लाते थे और उन्हें खाते थे इसमें अजीब बात क्या है? इन्द्र भगवान को ईख देकर इक्ष्वाकुवंश स्थापित किया है देवभक्ति की ही प्रधानता है। दिगम्बर भी कहते हैं कि-भ महावीरने देवोपनीत भोग भोगे हैं। (नि० ७)

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि-जब तीर्थंकर भ दीक्षा लेते हैं तब इन्द्र उनके कंधे पर देवदूष्य-वा

देते हैं, जो शास्त्र सार्वजनिक ज्ञान तक भी रखता है दिगम्बर जैन मानते नहीं हैं।

जैन—दिगम्बर सम्प्रदाय की नींव ही जब दिगम्बरत्व पर रखी हुई है अतः दिगम्बर विद्वान दिगम्बर मुनि को ही मुनि मानते हैं फिर तीर्थंकर या केवली भगवान को वे सवस्त्र कैसे मान सके ? । मगर पक्षपात को छोड़कर अनेकान्त दृष्टि से सोचा जाय तो तीर्थंकर के लिये भी वस्त्र सिद्ध है।

मुनि और केवली सवस्त्र भी होते हैं, उसका विशेष समाधान पंडित "मुनि उपाधि अधिकार" में कर दिया गया है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि-भ० ऋषभदेवने इन्द्रकी विनति से ५ मुष्टि लोच न करके ४ मुष्टि लोच किया।

जैन—ठीक बात है वास्तव में तीर्थंकर के केश की वृद्धि न होना यह अतिशय देवकृत है, तो इन्द्र की इच्छा से वे केश रक्खे जावें उसमें अनुचित क्या है ? और असंभवित भी क्या है ?। मथुरा के कंकालीटिलासे प्राप्त दो हजार वर्ष पूर्व की भ० ऋषभदेव की प्रतिमाओं के कंधे पर केश उत्कीर्ण हैं, अतः उनके ४ मुष्टि लोच की बात सप्रमाण है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि भगवान् ऋषभदेव और महावीर स्वामी अनार्य देश में भी विचरे थे।

जैन—मनुष्यका जन्म और मृत्यु मनुष्य क्षेत्र में ही होते हैं, वैसे तीर्थंकरों के पांचों कल्याणक आर्यभूमि में ही होते हैं मगर उसका यह अर्थ नहीं है कि वे अपनी सीमासे बहार भी न जाय ! मनुष्य मानुषोत्तर पर्वत से बहार भी जाता है वैसे तीर्थंकर आर्य देश के बाहिर भी विचरते हैं। साधारण तया आर्य और अनार्य ये परस्पर सापेक्ष नाम हैं, अतः आर्यखंड में आर्य और अनार्यों का समकालीन अस्तित्व भी संभवित है और इस हालत में वहां विहार होना भी समुचित है।

भगवान् शान्तिनाथ वगैरह भी दिग्विजय के निमित्त अनार्य देश में गये थे।

यह भी भूलना नहीं चाहिये कि दिगम्बर शास्त्र

जैन—तीर्थंकर भगवान् कृपण होते नहीं है, दानी होते हैं। वे राज्यकालमें फुटकर दान देते रहते हैं दीक्षा लेने से पहिले परोपकारके लीये वार्षिकदान देते हैं, और सर्वज्ञ होनेके बाद धर्मोपदेश देते हैं दर्शन, ज्ञान व चारित्र का दान करते हैं।

दिगम्बर आदिनाथ पुराणमें भी भगवान के दीक्षा समय में भगवान की आज्ञासे भरतचक्रीने दिया हुआ दानका अधिकार है। यह वार्षिक दानका नामान्तर ही है।

दिगम्बर—आदिपुराण में उल्लेख है कि-भगवान् ऋषभदेवने नीलांजना देवीका नाच देख कर वैराग्य पाकर दीक्षा का स्वीकार किया। श्वेताम्बर ऐसा मानते नहीं है।

जैन—जो ७२ कलाओं का, जिन में नृत्य कलाका भी समावेश होता है, आदि सृष्टा है। जो कर्मभूमि और धर्मभूमिका आदि निर्माता है उन ऋषभदेव के वैराग्य के लिये दूसरे निमित्त को मानना यह विचित्र समस्या है।

तीर्थंकर भगवान् तीन ज्ञानवाले होते हैं अपने दीक्षा काल को ठीक जानते ही हैं और स्वयंबुद्ध होते हैं। उन को बाह्य निमित्त की एकान्त अपेक्षा रहती नहीं है। यद्यपि लोकान्तिक देव अपने आचार के अनुसार तीर्थंकर देव को "दीक्षा लेकर तीर्थ प्रवर्तन करो" इत्यादि विनति करते हैं किन्तु भगवान तो अपने ज्ञानसे दीक्षाकालको देखकर ही दीक्षा लेते हैं।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि भगवान् ऋषभदेवने दीक्षा कालान्तर्गत देवानीतकल्पवृक्ष के फलोंसे ही आहार किया था।

जैन—देवों भक्ति से कल्पवृक्ष के फल लाते थे और भगवान् उन्हें खाते थे इसमें अनौचित्य बात क्या है? इससे भी भगवान को हीन देकर स्वतन्त्रता स्थापित किया है। यहाँ देवभक्ति की ही प्रधानता है। दिगम्बर भी कहते हैं कि भगवान महर्द्धिक देवांगनाएं भोग भोगते हैं। (दि० ३)

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि-जब तीर्थंकर भगवान दीक्षा लेते हैं तब इन्द्र उनके कंधे पर देवदूष्य वस्त्र रख

देते हैं, जो वस्त्र आजीवन काल तक भी रहता है। दिगम्बर वैसे मानते नहीं है।

जैन—दिगम्बर संप्रदाय की नींव ही एक दिगम्बरत्व से खड़ी हुई है अतः दिगम्बर विद्वान दिगम्बर मुनि को ही मुनि मानते हैं फिर तीर्थंकर या केवली भगवान को वे सवस्त्र कैसे मान सके!। मगर एकान्त को छोडकर अनेकान्त दृष्टिसे शाचा जाय तो तीर्थंकर के लिये भी वस्त्र सिद्ध है।

मुनि और केवली सवस्त्र भी होते हैं, उसका विशेष समाधान पहिला "मुनि उपाधि अधिकार "में कर किया गया है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि-भ० ऋषभदेवने इन्द्रकी विनति से ५ मुष्टि लोच न करके ४ मुष्टि लोच किया।

जैन—ठीक बात है वास्तव में तीर्थंकर के केश की वृद्धि न होना यह अतिशय देवकृत है, तो इन्द्र की इच्छा से वे केश रक्खे जावे उसमें अनुचित क्या है ? और असंभवित भी क्या है ?। मथुरा के कंकालीटिलासे प्राप्त दो हजार वर्ष पूर्व की भ० ऋषभदेव की प्रतिमाओं के कंधे पर केश उत्कीर्ण है, अतः उनके ४ मुष्टि लोच की बात सप्रमाण है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते है कि भगवान् ऋषभदेव और महावीर स्वामी अनार्य देश में भी विचरे थे।

जैन—मनुष्यका जन्म और मृत्यु मनुष्य क्षेत्र में ही होते हैं, वैसे तीर्थंकरो के पांचो कल्याणक आर्यभूमि में ही होते हैं मगर उसका यह अर्थ नहीं है कि वे अपनी सीमासे बहार भी न जाय ? मनुष्य मानुष्योत्तर पर्वत से बहार भी जाता है वैसे तीर्थंकर आर्य देश के बाहिर भी विचरते है। साधारण तया आर्य और अनार्य ये परस्पर सापेक्ष नाम हैं, अतः आर्यखंड में आर्य और अनार्यो का समकालीन अस्तित्व भी संभवित है और इस हालत में वहां विहार होना भी समुचित है।

भगवान् शान्तिनाथ वगैरह भी दिग्विजय के निमित्त अनार्य देश में गये थे।

यह भी भूलना नहीं चाहिये कि दिगम्बर शास्त्र

आर्यखंड सिवाय के सब खण्डो को भी अकर्मभूमि मानते हैं, इस हिसाब से सारा ही आर्यखण्ड कर्मभूमि-धर्मभूमि हो जाता है। देखिये पाठ–

भरहैरावयविदेहेसु विणीत सण्णिद मज्झिम खंडं मोत्तूण सेस पंचखंड विणिवासी मणुओ एत्थ अकम्मभूमिओ त्ति विवक्खिओ। तेसु धम्मकम्म पवुत्तीए असंभवेण तब्भावो ववत्तीओ।

"भरत ऐरवत और विदेहक्षेत्रो में "विनीत" नाम के मध्यमखंड (आर्य खण्ड) को छोड़कर शेष पांच खण्डो का विनिवासी (कदीमी वाशींदा) यहां 'अकर्मभूमिक' इस नाम से विवक्षित है, क्यों कि उन पांच खडों में धर्म कर्म की प्रवृत्तियां असंभव होने के कारण उस अकर्मक भावकी उत्पत्ति होती है"

(जयधवला टीका–अनेकान्त, व० २ कि० ३ पृ० १९९)

इस हालतमें आर्यखण्डके अनार्य देशोमें विश्वोपकारी जगपूज्यके तपस्याकालीन विहारका एकान्त अभाव मानना यह ठीक नहीं है।

दिगम्बर—दिगम्बर मानते हैं कि-तीर्थंकरभगवान् नग्न ही होते है किन्तु अतिशयके कारण वे नग्न दीख पडते नहीं है।

जैन—तीर्थंकरोको ३४ अतिशय होते हैं उनमें एसा कोई भी अतिशय नहीं है कि जो नग्नता को छीपाते हो।

वास्तविक बात यही है कि-तीर्थंकर भगवान् देवदुष्यवाले होते हैं अत एव नग्न दीख पडते नहीं है, तो संभव है कि दिगम्बर का यह अतिशय यह "देवदूष्य" ही है, जिसकी विषमानता में दोनों सम्प्रदायको " तीर्थंकर भगवान् नग्न दीख पडते नहीं है" इस मान्यता का माकुल समाधान हो जाता है।

तीर्थंकर भगवान् वस्त्रधारी भी होते हैं, आहार लेते हैं, निहार करते हैं, तपस्या करते हैं, साक्षरी वानी बोलते हैं, विहार करते हैं, और उनके शरीरका देव अग्नि संस्कार करते हैं इत्यादि बाते पहिले सप्रमाण बताई गई है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि-भगवान् ऋषभदेव का केवल

मान होने के बाद सबसे पहिले मरुदेवा माता हाथी के कंधे से केवलज्ञान पाकर मोक्षमें गई ! दिगम्बर ऐसा मानते नहीं है।

जैन—दिगम्बर समाज मरुदेवा की मुक्ति की एकान्त मना करता है। उसका यही कारण है कि—वह स्त्रीमुक्ति की एकान्त मना करता है मगर दिगम्बर शास्त्रोंसे भी स्त्रीमुक्ति सिद्ध है, जो पहिले के प्रकरणो में सप्रमाण लीख दिया है।

दिगम्बर शास्त्र ५२५ धनुष्य वालेको मोक्ष मानते हैं (राज० पृ० ३६६ श्लो० ५५१)और स्त्रीमोक्ष भी मानते हैं। इस हिसाबसे मरुदेवा माता का मोक्ष भी घटता है।

शेष रही गजासन की बात।

जैसा दिगम्बर शास्त्रमें मूर्छा नहीं होनेके कारण ही "श्रय पाण्डवाः सामरणा मोक्षं गताः" माना गया है वैसे ही यहां मूर्छा नहीं होने के कारण ही गजासन से मोक्ष माना गया है।

दिगम्बर शास्त्र दरख्त के अग्रभागसे भी सिद्धि बताते हैं (नंदी० ३१) वैसे ही यहां गजासन से सिद्धि समझ लेनी चाहिये।

भूलना नहीं चाहिये कि केवलज्ञान या मोक्ष के लिये आसन या मुद्रा की कोई एकान्त मर्यादा है नहीं।

दिगम्बर—२४ तीर्थंकरो में श्रीवासुपूज्यजी, श्री मल्लिनाथजी, श्री नेमिनाथजी, श्रीपार्श्वनाथजी और श्रीमहावीर स्वामी ये ५ आजीवन "कुमार" माने "ब्रह्मचारी" थे। मगर श्वेताम्बर उन पांचो को "कुमार" माने "राजकुमार" युवराज मानते हैं और भ० मल्लिनाथ व भ० नेमनाथ को ही ब्रह्मचारी मानते हैं।

जैन—यहां कुमार शब्द के अर्थमें ही मतभेद है अतः पहिले "कुमार" शब्द की जांच कर लेनी चाहिये।

दिगम्बर—साधारणतया "कुमार" शब्द

(१) युवराजः कुमारो भर्तृदारकः।

(अभिधानचिन्तामणि)

(२) युवराजस्तु कुमारो भर्तृदारकः।

(

आर्यखंड सिवाय के सब खण्डो को भी अकर्मभूमि मानते हैं इस हिसाब से भारत की आर्यखण्ड कर्मभूमि-अकर्मभूमि का समन्वय है देखिये पाठ-

भरतैरावतविदेहेषु विनीत नामक मध्यम आर्यखंड मुक्त्वा शेष पंचखंड निवासिनो मनुष्या अकर्मभूमिजा इति निगद्यन्ते। तेषु धर्मकर्म प्रवृत्ति अभावेन तन्मानं [illegible]।

"भरत ऐरावत और विदेहोंमें "विनीत" नाम के मध्यमखंड (आर्य खण्ड) को छोड़कर शेष पांच खण्डों का निवासी (म्लेच्छ) यहां 'अकर्मभूमिज' इस नाम से विवक्षित है, क्यों कि उन पांच खण्डों में धर्म कर्म की प्रवृत्तियां असंभव होने के कारण उन अकर्मक मानवी उत्पत्ति होती है"

(जयधवला टीका-अनेकान्त, व० २ कि० १ पृ० ११९)

इस हालतमें आर्यखण्डके अनार्य देशोमें विचारकारी अन-गुण्डके तपस्याकालीन विहारका एकान्त अभाव मानना यह ठीक नहीं है।

दिगम्बर—दिगम्बर मानते हैं कि-तीर्थंकरभगवान् नग्न ही होते है किन्तु अतिशयके कारण वे नग्न दीख पड़ते नहीं है।

जैन—तीर्थंकरोको ३४ अतिशय होते हैं उनमें एसा कोई भी अतिशय नहीं है कि जो नग्नता को छीपाते हो।

वास्तविक बात यही है कि-तीर्थंकर भगवान् देवदुष्यवाले होते हैं अत एव नग्न दीख पड़ते नहीं है, तो संभव है कि दिगम्बर का यह अतिशय यह "देवदूष्य" ही है, जिसकी विद्यमानता में दोनों सम्प्रदायकी " तीर्थंकर भगवान् नग्न दीख पड़ते नहीं है" [illegible] का माकुल समाधान हो जाता है।

[illegible] भगवान् वस्त्रधारी भी होते हैं, आहार लेते हैं, तपस्या करते हैं, साक्षरी वानी बोलते हैं, विहार [illegible] उनके शरीरका देव अग्नि संस्कार करते हैं इत्यादि [illegible] गई है।

[illegible] मानते हैं कि-भगवान् ऋषभदेव का केवल

ज्ञान होने के बाद सबसे पहिले मरुदेवा माता हाथी के कंधे से केवलज्ञान पाकर मोक्षमें गई! दिगम्बर ऐसा मानते नहीं है।

जैन—दिगम्बर समाज मरुदेवा की मुक्ति को एकान्त मना करता है। उसका यही कारण है कि—वह स्त्रीमुक्ति को एकान्त मना करता है मगर दिगम्बर शास्त्रोंसे भी स्त्रीमुक्ति सिद्ध है, जो पहिले के प्रकरणो में सप्रमाण लीख दिया है।

दिगम्बर शास्त्र ५२५ धनुष्य वालेको मोक्ष मानते हैं (गम्म० पृ० ३६६ श्लो० ५५१)और स्त्रीमोक्ष भी मानते हैं। इस हिसाबसे मरुदेवा माता का मोक्ष भी घटता है।

शेष रही गजासन की बात।

जैसा दिगम्बर शास्त्रमें मूर्छा नहीं होनेके कारण ही "अथ पाण्डवाः साभरणा मोक्षं गताः" माना गया है वैसे ही यहां मूर्छा नहीं होने के कारण ही गजसान से मोक्ष माना गया है।

दिगम्बर शास्त्र दरयत के अग्रभागसे भी सिद्धि बताते हैं (नंदी० ३१) वैसे ही यहां गजसान से सिद्धि समज लेनी चाहिये।

भूलना नहीं चाहिये कि केवलज्ञान या मोक्ष के लिये आसन या मुद्रा की कोई एकान्त मर्यादा है नहीं।

दिगम्बर—२४ तीर्थंकरो में श्रीवासुपूज्यजी, श्री मल्लिनाथजी, श्री नेमिनाथजी, श्रीपार्श्वनाथजी और श्रीमहावीर स्वामी ये ५ आजीवन "कुमार" माने "ब्रह्मचारी" थे। मगर श्वेताम्बर उन पांचो को "कुमार" माने "राजकुमार" युवराज मानते हैं और भ० मल्लिनाथ व भ० नेमनाथ को ही ब्रह्मचारी मानते हैं।

जैन—यहां कुमार शब्द के अर्थमें ही मतभेद है अतः पहिले "कुमार" शब्द की जांच कर लेनी चाहिये।

दिगम्बर—साधारणतया "कुमार" शब्द के अर्थ ये हैं—

(१) युवराजः कुमारो भर्तृदारकः।

(अभिधानचिन्तामणि कान्ड ३ श्लोक २४६)

(२) युवराजस्तु कुमारो भर्तृदारकः।

(अमरकोष वर्ग ७ श्लोक १२)

आर्यखंड सिवाय के सब खण्डो को भी अकर्मभूमि मानते हैं, इस हिसाब से सारा ही आर्यखण्ड कर्मभूमि-धर्मभूमि हो जाता है। देखिये पाठ–

भरहेरावयविदेहेसु विणीत सण्णिद मज्झिम खंडं मोत्तूण, सेस पंचखंड विणिवासी मणुओ एत्थ अकम्मभूमिओ त्ति विवक्खिओ। तेसु धम्मकम्म पवुत्तीए असंभवेण तब्भावो ववत्तीदो।

"भरत ऐरवत और विदेहक्षेत्रो में "विनीत" नाम के मध्यमखंड (आर्य खण्ड) को छोड़कर शेष पांच खण्डो का विनिवासी (कदीमी वाशींदा) यहां 'अकर्मभूमिक' इस नाम से विवक्षित है, क्यों कि उन पांच खडों में धर्म कर्म की प्रवृत्तियां असंभव होने के कारण उस अकर्मक भावकी उत्पत्ति होती है"

(जयधवला टीका-अनेकान्त, व० २ कि० ३ पृ० १९९)

इस हालतमें आर्यखण्डके अनार्य देशोमें विश्वोपकारी जगपूज्यके तपस्याकालीन विहारका एकान्त अभाव मानना यह ठीक नहीं है।

दिगम्बर—दिगम्बर मानते हैं कि-तीर्थंकरभगवान् नग्न ही होते है किन्तु अतिशयके कारण वे नग्न दीख पडते नहीं है।

जैन—तीर्थंकरोको ३४ अतिशय होते हैं उनमें एसा कोई भी अतिशय नहीं है कि जो नग्नता को छीपाते हो।

वास्तविक बात यही है कि-तीर्थंकर भगवान् देवदुष्यवाले होते हैं अत एव नग्न दीख पडते नहीं है, तो संभव है कि दिगम्बर का यह अतिशय यह "देवदूष्य" ही है, जिसकी विद्यमानता में दोनों सम्प्रदायको " तीर्थंकर भगवान् नग्न दीख पडते नहीं है" इस मान्यता का माकुल समाधान हो जाता है।

तीर्थंकर भगवान् वस्त्रधारी भी होते हैं, आहार लेते हैं, निहार करते हैं, तपस्या करते हैं, साक्षरी वानी बोलते हैं, विहार करते हैं, और उनके शरीरका देव अग्नि संस्कार करते हैं इत्यादि बाते पहिले सप्रमाण बताई गई है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि-भगवान् ऋषभदेव का केवल

ज्ञान होने के बाद सबसे पहिले मरुदेवा माता हाथी के कंधे से केवलज्ञान पाकर मोक्षमें गई ! दिगम्बर ऐसा मानते नहीं है।

जैन—दिगम्बर समाज मरुदेवा की मुक्ति की एकान्त मना करता है। इसका यही कारण है कि—यह स्त्रीमुक्ति की एकान्त मना करता है मगर दिगम्बर शास्त्रोंसे भी स्त्रीमुक्ति सिद्ध है, जो पहिले के प्रकरणों में सप्रमाण लिख दिया है।

दिगम्बर शास्त्र ५२५ धनुष्य वालेको मोक्ष मानते हैं (राज० पृ० १६६ श्लो० ५५१)और स्त्रीमोक्ष भी मानते हैं। इस हिसाबसे मरुदेवा माता का मोक्ष भी घटता है।

शेष रही गजासन की बात।

जैसा दिगम्बर शास्त्रमें मूर्छा नहीं होनेके कारण ही "अप पाण्डवाः श्रामण्यं मोक्षं गताः" माना गया है वैसे ही यहां मूर्छा नहीं होने के कारण ही गजासन से मोक्ष माना गया है।

दिगम्बर शास्त्र दृष्टान्त के आभासोंसे भी सिद्धि बताते हैं (नर्हीट २१) वैसे ही यहां गजासन से सिद्धि समझ लेनी चाहिये।

भूलना नहीं चाहिये कि केवलज्ञान या मोक्ष के लिये आसन या मुद्रा की कोई एकान्त मर्यादा है नहीं।

दिगम्बर—२४ तीर्थंकरो में श्रीवासुपूज्यजी, श्री मल्लिनाथजी, श्री नेमिनाथजी, श्रीपार्श्वनाथजी और श्रीमहावीर स्वामी ये ५ आजीवन "कुमार" माने "ब्रह्मचारी" थे। मगर श्वेताम्बर उन पांचो को "कुमार" माने "राजकुमार" युवराज मानते हैं और भ० मल्लिनाथ व भ० नेमनाथ को ही ब्रह्मचारी मानते हैं।

जैन—यहां कुमार शब्द के अर्थमें ही मतभेद है अतः पहिले "कुमार" शब्द की जांच कर लेनी चाहिये।

दिगम्बर—साधारणतया "कुमार" शब्द के अर्थ ये हैं—

(१) युवराजः कुमारो भर्तृदारकः।

(अभिधानचिन्तामणि कान्ड २ श्लोक २४६)

(२) युवराजस्तु कुमारो भर्तृदारकः।

(अमरकोष वर्ग ७ श्लोक १२)

आर्यखंड सिवाय के सब खण्डो को भी अकर्मभूमि मानते हैं, इस हिसाब से सारा ही आर्यखण्ड कर्मभूमि-धर्मभूमि हो जाता है। देखिये पाठ-

भरहेरावयविदेहेसु विणीत सण्णिद मज्झिम खंडं मोत्तूण. सेस पंचखंड विणिवासी मणुओ एत्थ अकम्मभूमिओ त्ति विवक्खिओ। तेसु धम्मकम्म पवुत्तीए असंभवेण तब्भावो ववत्तीदो।

"भरत ऐरवत और विदेहक्षेत्रो में "विनीत" नाम के मध्यमखंड (आर्य खण्ड) को छोड़कर शेष पांच खण्डो का विनिवासी (कदीमी बाशींदा) यहां 'अकर्मभूमिक' इस नाम से विवक्षित है, क्यों कि उन पांच खडों में धर्म कर्म की प्रवृत्तियां असंभव होने के कारण उस अकर्मक भावकी उत्पत्ति होती है"

(जयधवला टीका-अनेकान्त, व० २ कि० ३ पृ० १९९)

इस हालतमें आर्यखण्डके अनार्य देशोमें विश्वोपकारी जगपूज्यके तपस्याकालीन विहारका एकान्त अभाव मानना यह ठीक नहीं है।

दिगम्बर—दिगम्बर मानते हैं कि-तीर्थंकरभगवान् नग्न ही होते है किन्तु अतिशयके कारण वे नग्न दीख पड़ते नहीं है।

जैन—तीर्थंकरोको ३४ अतिशय होते हैं उनमें एसा कोई भी अतिशय नहीं है कि जो नग्नता को छीपाते हो।

वास्तविक बात यही है कि-तीर्थंकर भगवान् देवदुष्यवाले होते हैं अत एव नग्न दीख पड़ते नहीं है, तो संभव है कि दिगम्बर का यह अतिशय यह "देवदूष्य" ही है, जिसकी विद्यमानता में दोनों सम्प्रदायकी " तीर्थंकर भगवान् नग्न दीख पड़ते नहीं है" इस मान्यता का नाकुल समाधान हो जाता है।

तीर्थंकर भगवान् वस्त्रधारी भी होते हैं, आहार लेते हैं, निहार करते हैं, तपस्या करते हैं, साक्षरी यानी बोलते हैं, विहार करते हैं, और उनके शरीरका देव आदि संस्कार करते हैं इत्यादि बाते पहिले सप्रमाण बताई गई है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते है कि-भगवान् ऋषभदेव का देवता

ज्ञान होने के बाद सबसे पहिले मरुदेवा माता हाथी के कंधे से केवलज्ञान पाकर मोक्षमें गई ! दिगम्बर ऐसा मानते नहीं है।

जैन—दिगम्बर समाज मरुदेवा की मुक्ति की एकान्त मना करता है। उसका यही कारण है कि—वह स्त्रीमुक्ति की एकान्त मना करता है मगर दिगम्बर शास्त्रोंसे भी स्त्रीमुक्ति सिद्ध है, जो पहिले के प्रकरणों में सप्रमाण लीख दिया है।

दिगम्बर शास्त्र ५२५ धनुष्य वालेको मोक्ष मानते हैं (राज० पृ० ३६६ श्लो० ५५१)और स्त्रीमोक्ष भी मानते हैं। इस हिसाबसे मरुदेवा माता का मोक्ष भी घटता है।

शेष रही गजासन की बात।

जैसा दिगम्बर शास्त्रमें मूर्छा नहीं होनेके कारण ही "त्रयः पाण्डवाः साभरणा मोक्षं गता" माना गया है वैसे ही यहां मूर्छा नहीं होने के कारण ही गजसान से मोक्ष माना गया है।

दिगम्बर शास्त्र दरख्त के अग्रभागसे भी सिद्धि बताते हैं (नंदी० ३१) वैसे ही यहां गजसान से सिद्धि समज लेनी चाहिये।

भूलना नहीं चाहिये कि केवलज्ञान या मोक्ष के लिये आसन या मुद्रा की कोई एकान्त मर्यादा है नहीं।

दिगम्बर—२४ तीर्थंकरो में श्रीवासुपूज्यजी, श्री मल्लिनाथजी, श्री नेमिनाथजी, श्रीपार्श्वनाथजी और श्रीमहावीर स्वामी ये ५ आजीवन "कुमार" माने "ब्रह्मचारी" थे। मगर श्वेताम्बर उन पांचो को "कुमार" माने "राजकुमार" युवराज मानते हैं और भ० मल्लिनाथ व भ० नेमिनाथ को ही ब्रह्मचारी मानते हैं।

जैन—यहां कुमार शब्द के अर्थमें ही मतभेद है अतः पहिले "कुमार" शब्द की जांच कर लेनी चाहिये।

दिगम्बर—साधारणतया "कुमार" शब्द के अर्थ ये हैं—

(१) युवराजः कुमारो भर्तृदारकः।

(अभिधानचिंतामणि कांड १ श्लोक २४६)

(२) युवराजस्तु कुमारो भर्तृदारकः।

(अमरकोष वर्ग ७ श्लोक १२)

(३) कुमारवास–कुमाराणामराजभावेन वासे'

(अभिधान राजेन्द्र, पृ. ५८८)

(४) कुमारी–वनस्पति विशेष, कंवार पाठा।

(५) दिक्कुमारी–दिशाओंकी देवीयाँ, जो ब्रह्मचारिणी मानी जाती नहीं है

(६) कौमार, तनुतिगिच्छा, रसायणं, विस, भूद, खारतंतं च॥
सालंकियं च सल्लं, तिगंछदोसे दु अट्ठविहो॥३३॥
टीका–कौमारं बालवैद्यं

(आ॰ वट्टेकरकृत मूलाचार परि॰ ६) (आ॰ वसुनन्दी श्रमणकृत टीका)

(७) यहां आज भी "कुमार" उस व्यक्ति की संज्ञा है, जिस के पिता या बडेभाई जीवित हैं। उनकी मौजुदगी में, वह चाहे फिर तीनसौ साठ वर्षका बूढा ही क्यों न बन जावे, और उसके पांच सात सन्ताने भी हो जावे फिर भी यह 'कुमार' ही कहलाता रहेगा, राजपूताने के सारे क्षत्रिय वंश और वैश्यो के सम्पूर्ण कुल, इस बात की राजघोषणा कर रहे हैं, अरे 'कुमार' शब्द तो घरके बडे बूढे पुरुषोकी जीवित अवस्थामें संतान शब्द के अर्थका वाचक है. 'विवाहित' और 'अविवाहित' आदि अर्थों से इसका सम्बन्ध ही क्या?। भारतके सभी क्षत्रिय नरेशों तथा शेठ-शाहुकारों के घरो में, घरमें बाप या बडे भाईओं की मौजुदगीमें छोटे पुत्रों को आज 'कुमार साहब' कुंवर साहब' या 'कंवर साहब' कह कर पुकारते हैं।

(कल्पित कथा समीक्षाका प्रत्युत्तर पृ॰ १०६)

(८) कुमार–१ पांच वर्षकी अवस्था का बालक। २ पुत्र बेटा। ३ युवराज। ४ कार्तिकेय। ५ सिन्धुनद। ६ तोता सुग्गा, ७ खरासोना। ८ सनक सनन्दन सनत् और सुजात आदि कई ऋषि, जो सदा बालक ही रहते हैं। ९ 'युवावस्था या उस से पहेले की अवस्थावाला पुरुष। १० एकग्रह जिसका असर बालकों पर होता है।

(संक्षिप्त-हीन्दी-शब्दसागर पृ. १४४)

उक्त अर्थोमें से प्रसंग के अनुकूल यहां दो ही अर्थ हैं। १ अविवाहित, २ युवराज, जो विवाहित भी हो सकता है।

दिगम्बर समाज प्रथम अर्थ को मान्य रखकर उन पांचो तीर्थंकरो को 'अविवाहित' मानते हैं और श्वेतांबर समाज दूसरे अर्थको अपनाकर पांचों तीर्थंकरो को 'युवराज' मानते हैं। अब इनमें कोनसा अर्थ ठीक है ! उस का निर्णय करना चाहिये।

जैन—उक्त सब अर्थोमें ब्रह्मचर्य सूचक कोई खास पाठ नहीं है, भगवान् महावीर तीस वर्ष तक घरमें रहे उनको उक्त अर्थो के अनुसार ब्रह्मचारी सिद्ध करना सर्वथा अशक्य ही है।

श्वेताम्बर आगम तीर्थंकर की वानी ही माने जाते हैं। उनमें उन तीर्थंकरों को "कुमार" माने 'युवराज' ही माने गये हैं। कई दिगम्बर शास्त्र भी वैसाही मानते हैं सीर्फ दिगम्बर पुराण-ग्रंथ उन ५ तीर्थंकरो को कुमार माने 'ब्रह्मचारी' ही मानते हैं।

किन्तु दिगम्बर पुराणो में तो कई बातो का आपसी मत भेद है। जैसा कि—

(१) दिगम्बरपद्मपुराण में लीखा है कि-वाली मुनि होकर मोक्ष में गया, दि० महापुराणमें लीखा है कि-वाली लक्ष्मण के हाथ से मारा गया, और मरकर नरक में गया।

(२) दिगम्बर हरिवंश पुराण में लीखा है कि वसुराजा का पिता अभिचन्द्र और माता वसुमती थी।

दिगम्बर पद्मपुराणमें लिखा है कि वसुराजा का पिता ययाति था, माता सुरकान्ता थी।

(३) महापुराण में लीखा है कि-रामका जन्मस्थान बनारस था, माता सुवाला थी। पद्मपुराण में लीखा है कि-रामकी जन्म भूमि अयोध्या था, माता कौशल्या थी।

(४) महापुराण में लीखा है कि-सीता, रावण की पुत्री थी। यहां भामण्डल का कोई जीक्र नहीं है। पद्मपुराण में लीखा है कि-सीता जनकराजा की पुत्री थी। भामण्डल उसका युगल जात भाई था, भामण्डल उससे व्याह करना चाहता था।

(५) महापुराणमें लीखा है कि-रामचंद्र अयोध्या का युवराज

थां, अतः उसे कुमार भुक्ति में बनारस का राज्य मिला था। यह वनमें गया नहीं था किन्तु नारदजीकी करतूत से रावणने रामका ही रूप लेकर बनारस के जंगलसे ही सीताका हरण किया। वगेरह २।

पद्मपुराण में लीखा है कि-कैकई के कहने से राम, लक्ष्मण और सीता को वनवास मीला, भरत को अयोध्या का राज्य मीला। दंडकारण्य में खर-दूषण के पुत्र का वध, चन्द्रनखा ने की हुई शिकायत, खरदूषण से युद्ध, रावणने सीता का हरण किया, जटायुपक्षी का प्रयत्न इत्यादि प्रसंग बने। वगेरह।

(६) आराधना कथा कोष में लीखा है कि-गजसुकुमाल कृष्णजी का बेटा था, उसके शिरमें कील ठोकने के कारण उसकी मृत्यु हुई। हरिवंश पुराण में लीखा है कि-गजसुकुमाल कृष्णजी का भाई था, वह मोक्ष में गया। वगेरह।

(७) हरिवंशपुराण में लीखा है कि-कीचक मोक्षमें गया। पांडव पुराणमें लीखा है कि-कीचक मार दिया गया, वह मर कर के नर्कमें गया।

(८) हरिवंश पुराण संस्कृत में लीखा है कि-द्वीपायन मुनि मरकर अंतर्मुहूर्त में अग्निकुमार देव हुआ उसने द्वारिका को फूंक दी। हरिवंशपुराण दोलतराम कृत भाषा में लीखा है-द्विपायन ऋषिके बांई भुजासे पुतला निकला, उसने द्वारिका को भस्म कर दी।

(९) चंद्रगुप्त की जन्मभूमि १६ स्वप्न आनेका स्थान, इत्यादि में बडा मत भेद है।

(१०) एकांगविद् आचार्यों की संख्या आदि में मत भेद है।

(११) जम्बूचरित्र में लीखा है कि-जम्बूस्वामी राजगृह की पहाडी पर मोक्ष पधारें कीसी २ ने लीखा है कि-जम्बूस्वामी मथुरामें मोक्ष गये।

(१२) हरिवंश पुराण में लीखा है कि-मधुक्रीडभ मुनि हो कर मोक्षमें गया।

अन्यपुराण में लीखा है कि-मधुक्रीडभ मरकर मोक्ष में गया।

(१३) उत्तरपुराण, नेमिनिर्वाणकाव्य, हरी नेमिपुराण,

स्वयंभूस्तोत्र का मराठी कोश्क वगेरह में लीखा है कि-भगवान् नेमिनाथ का जन्म, द्वारिके के "सौरिपुर मुहल्ला" में हुआ।

कोइ २ दिगम्बर ग्रन्थ बताते हैं कि-भगवान् नेमिनाथ का जन्म सौरिपुर में हुआ।

(१४) हरिवंश पुराण में लीखा है कि-करण दुर्योधन वगेरह मुनि होकर मरकर स्वर्गमें गये।

पांडवपुराण में लीखा है कि-दुर्योधन वगेरह महाभारतमें मारे गये।

(१५) दिगम्बर शास्त्रो म भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण समय के लीये बडा भारी मतभेद है। जैसा कि शक संवत् पूर्व ६०५ वर्ष ४६१ वर्ष ७०४ वर्ष ९५९५ वर्ष और १४९७२ वर्ष में भगवान् महावीर स्वामीका निर्वाण हुआ वगैरह।

(ता. १० । ३ । १९३८ का जैनध्वज)

इन २ विरोधों को मद्दे नजर रखकर इस नतीजे पर पहुंचना अनिवार्य है कि-श्वेताम्बर की मान्यता सत्य है।

दिगम्बर शास्त्र भी उन पांचो तीर्थंकर के लीये "कुमार" शब्द का अर्थ अविवाहित नहीं किन्तु 'युवराज" ही करते हैं। अतः मतभेदका अवकाश रहता नहीं है।

दिगम्बर—आप दिगम्बर शास्त्रो के प्रमाण दीजिये।।

जैन—दिगम्बर शास्त्र में लीखा है कि-ये पांचो तीर्थंकर कुमार थे माने विना राज्यप्राप्ति हुए मुनि बने। देखिये पाठ—

(१) वासुपूज्यस्तथा मल्लिर्नेमिः पार्श्वो ऽथ सन्मतिः।
कुमाराः पञ्च निष्क्रान्ताः पृथिवीपतयः परे।

माने—वासुपूज्य, मल्लीनाथ, नेमनाथ पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी ये पांच तीर्थंकर राजा बने विना ही मुनि बने, और शेष उन्नीस तीर्थंकर पृथिवीपति माने राजा बनकर बादमें ही मुनि बने।

(पं. चंपालालजी कृत चर्चासागर, चर्चा ९३, पृष्ठ ९२)

यहां 'पृथिवीपतयः' लीखकर स्पष्ट कर दिया है कि वे पांच तीर्थ. "राजकुमार" ही थे, माने पृथ्वीपति नहीं हुए थे।

२४ तीर्थंकरो में १९ राजा थे ५ राजकुमार थे, २२ विवाहित थे २ मल्लिनाथ और नेमिनाथ आजीवन ब्रह्मचारी थे।

यह विश्लेषण सप्रमाण है विश्वस्य है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि-१९ वे मल्लीनाथ भगवान् स्त्री तीर्थंकर थे।

जैन—वे इस बातको आश्चर्यघटना रूप मानते हैं।

दिगम्बर—दिगम्बर पंडित हेमराजजी लीखते हैं-कि भगवान् मुनिसुव्रतस्वामी के गणधर घुड़ा था, ऐसा श्वेताम्बर मानते हैं।

जैन—यह जूठ बात है, श्वेताम्बर ऐसा मानते ही नहीं है। उनके गणधर मल्लीकुमार वगेरह मनुष्य ही थे।

इसीही प्रकार भगवान् मल्लीनाथके शरीका वर्ण भगवान् नेमिनाथजीका छद्मस्थदीक्षाकाल इत्यादि विषयोंपर श्वेताम्बर और दिगम्बरो में कुछ २ मतभेद पाया जाता है, जो वास्तवमें उनके साहित्य की प्राचीनता और अर्वाचीनता के कारण ही है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर शास्त्र भगवान् महावीर के २७ भव बताते हैं, मगर यह बात ठीक नहीं है।

जैन—यह निर्विवाद् है कि श्वेताम्बर आगम साहित्य समृद्ध है, प्राचीन है, मौलिक है, खानदान है। दिगम्बर साहित्य अल्प है पश्चात् कालीन है पराश्रित है इसका निर्माण श्वेताम्बर साहित्य के आधार पर हुआ है और हो रहा है। देखिए—

(१) एक दिगम्बर विद्वान साफ २ लीखते हैं कि-"इसमें संदेह नहीं कि श्री महावीर भगवान् के ३० वर्ष के विहारका विस्तारपूर्वक वर्णन दिगम्बर शास्त्रो में नहीं मिलता है। यदि श्वेताम्बरो के शास्त्रो में मिलता हो तो संग्रह करनेकी जरुरत है। केवल यह बात ध्यान में रखने की होगी कि यह महावीर चर्या ऐसी न तैयार हो जो सर्वज्ञ वीतरागत्व विशेषणों को खंडन करके उनको केवल एक तपस्वी महात्मा के रूपमें प्रमाणित करे। अरिहंत के स्वरूप को स्थिर रखते हुए उनके उपदेशो का संग्रह किसी भी साहित्यसे करनेमें हानि नहीं है"

(दि० जैनमित्र व० १८ अं. ४० पृ० ६०१ का लेख—
श्री भगवान् महावीर की वाणी [illegible] क्या ?)

उक्त लेख का आशय यह है कि-श्वेताम्बर महावीर चरित्र पर दिगम्बर पने का मुलम्मा चढाकर दिगम्बरीय महावीर चरित्र तैय्यार करो, श्वेताम्बर आगम साहित्यको दिगम्बरत्व के ढांचे में डालकर दिगम्बरीय महावीरउपदेश के रूप में जाहिर करो। इत्यादि॥

(२) दिगम्बर विद्वान पं. नथुराम प्रेमीजीने दिगम्बर साहित्य के निर्माताओं को मुलम्मा चढाने की पद्धतिका जो कुछ परिचय दीया है उसे पढने से भी अपने को दिगम्बर साहित्य की कमी का ठीक ख्याल मीलता है। वे लीखते हैं कि—

"दशवीं शताब्दी के पहिले का कोई भी उल्लेख अभी तक मुझे इस सम्बन्ध में नहीं मीला, मेरा विश्वास है कि दिगम्बर संप्रदाय में जो बड़े बड़े विद्वान् ग्रंथ कर्त्ता हुए हैं प्रायः वे किसी मठ या गद्दी के पट्टधर नहीं थे। परन्तु जिन लोगोंनें गुर्वावली या पट्टावली बनाई हैं उनके मस्तक में यह बात भरी हुई थी कि जितने भी आचार्य या ग्रंथकर्ता होते हैं वे किसी न किसी गद्दी के अधिकारी होते हैं, इसलीये उन्होंने पूर्ववर्ती सभी विद्वानों की इसी भ्रमात्मक विचार के अनुसार खतौनी कर डाली है और उन्हें पट्टधर बना डाला है।

(गुजराती तत्वार्थसूत्रकी प्रस्तावना)

(३) दिगम्बर शास्त्र के प्रकांड अभ्यासी श्रीयुत् लक्ष्मण रघुनाथ भीडे नग्न सत्य जाहिर करते हैं कि-"दिगम्बरोए ब्रह्मचारी क्षुल्लक एलक अने दिगम्बर एवी चार प्रतिमाओ गोठवी चार आश्रमोनुं पण जेम अनुकरण कर्यु तेम श्वेताम्बरोए कर्यु नथी"

"कहेवानी मतलब ए छे के वैदिकोना चतुर्वर्णाश्रमनी जेटली असर दिगम्बरो पर थयली देखाय छे तेटली श्वेताम्बरो पर थयली देखाती नथी, एनुं कारण जिनागमोनो लोप मानी प्रभाविक आचार्यो फेरफार करवामां फावी जाय एवी दशा श्वेताम्बरोए नहीं थवा दीधी एज छे। सत् शास्त्रने श्वेताम्बरो सारी रीते वलगी शक्या तेथी तेओ सुदेवने वफादार रही शक्या अने सद्गुरुओने जाळवी शक्या। आ त्रयी शुद्ध रहेवाथी श्वेताम्बरोनुं समकित शुद्ध रह्युं अने तेओ बीजानी माठी असर पडवाथी बची शक्या।

(जैन पु० ४१ अं. ३ पृ०३७ ता. १८-१-१९४२ का जिन शासननो हिरणीयमी सनातन धर्म; लेख)

(४) दि० पं० चम्पालालजी और दि० पं० लालारामजी शास्त्री लीखते हैं कि—

"वर्तमानकाल में जो ग्रंथ हैं सो सब मूलरूप इस पंचमकालके होनेवाले आचार्यों के बनाए हैं"

(चर्चा सागर चर्चा. २५०, पृ० ५०३)

इत्यादि २ प्रमाणो से स्पष्ट है कि-दिगम्बरीय साहित्य श्वेताम्बरीय साहित्य का अनुजीवी साहित्य है, और कुछ २ कल्पना प्रधान भी है।

प्रत्यक्ष प्रमाण है कि-महावीर चरित्र के सबसे प्राचीन ग्रंथ श्री सुधर्मास्वामी कृत आचारांग सूत्र श्रीभद्रबाहुस्वामी कृत कल्पसूत्र और आवश्यक निर्युक्ति ही हैं सब दिगम्बरीय महावीर चरित्र उनके आधार पर बने हैं। फिर भी इन में उपर के लेख के अनुसार बहोत कमी हैं। बाबू कामताप्रसादजी जैनने हाल में ही महावीर चरित्र का नया आविष्कार किया है, जिस में-कलिकाल सर्वज्ञ आ० श्री हेमचन्द्रसूरि आदि के महावीर चरित्र से भगवान् महावीर स्वामी का छद्मस्थ विहार लेकर तद्दन नये रूपमें दाखल कर दिया है।

इस हालत में भगवान् महावीर स्वामी के चरित्र के लीये श्वेताम्बर साहित्य अधिक प्रमाणिक है यहि निर्विवाद सिद्ध हो जाता है।

इसी प्रकार श्वेताम्बर दिगम्बर के और २ मान्यता भेद है, वे भी साहित्य की प्राचीनता और अर्वाचीनता के कारण ही है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर मानते हैं कि—भगवान् महावीर स्वामी का गर्भापहार हुआ था।

जैन-वे इसको आश्चर्य घटना भी मानते है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर मानते हैं कि—भगवान् महावीर स्वामीने गर्भ में ही अपने माता-पिता के स्वर्गगमन होने के बाद दीक्षा लेनेका अभिग्रह किया था।

जैन—तीर्थंकर तीन ज्ञानवाले होते हैं और वे ज्ञानद्वार भावि भाव को अनुसरते हैं। भगवान् महावीर स्वामीने अपना दीक्षा

बाल को हाथसे देखकर यह अभिग्रह किया था। उनका इस से मातृभक्ति का पाठ सीख सकती है। यही कारण है कि—लोकोत्तर पुरुष का चरित्र लोकोत्तर ही माना जाता है।

तीन ज्ञानवाले भगवान् ऋषभदेव का गोचरी निमित्त बारह महिने तक भ्रमण करना यह भी इसी ही कोटीका प्रसंग है।

महाभारत में अभिमन्यु के चक्रव्यूह ज्ञानका वर्णन है। इत्यादि प्रमाणों से यह पाया जाता है कि—गर्भ में वैसी साधारण जीव को भी अधिक ज्ञानविकास हो जाता है। जब लोकोत्तर पुरुष के लीये तो पूछना ही क्या!

दिगम्बर-श्वेताम्बर मानते हैं कि—भगवान् महावीर स्वामीने जन्माभिषेक के समय इन्द्र के संदेह को दूर करने के लीये मेरुपर्वतको अंगुठासे दबाया और कंपायमान किया। मगर यह बात समर्थित नहीं है अतः दिगम्बर विद्वान ऐसा मानते नहीं है।

जैन-तीर्थंकरो के कल्याणक उत्सवमें इन्द्रका शाश्वत इन्द्रासन भी कंपायमान होता है तो फिर तीर्थंकर की ही प्रवृत्तिसे मेरुपर्वत चलायमान हो तो उसमें आश्चर्य घटना क्या है? दिगम्बर मान्य शास्त्र में भी मेरुकंपन का बात स्वीकार किया गया है। ईतना ही नहीं, किन्तु "महावीर" नाम प्राप्त करनेका कारण भी यही माना गया है। देखिये पाठ—

(१) पादाङ्गुष्ठेन यो मेरु- मनायासेन कम्पयन्।
लेभे नाम महावीर, इति नाकालयाधिपात्॥

(आ० रविषेण पद्मपुराण पर्व २, श्लो. ७६)

(२) रावणने भी वालि मुनिसे वैर विचार कर कैलास पर्वत को उठाया था। उस समय श्री वालि मुनिने वहां के जिनबिंब तथा जिनमन्दीरों की रक्षा के लिये अपने पैरका अंगुठा दबाकर कैलास को स्थीर रखना चाहा था उस समय रावण कैलास के नीचे दब गया था, इत्यादि वर्णन पद्मपुराण में लीखा है। फिर भला भ० श्री महावीर स्वामी के द्वारा मेरुपर्वत के कम्पित होने में क्या संदेह है?

(पं, चम्पालालजी कृत चर्चासागर, चर्चा २ पृ. १)

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि-सिद्धार्थराजाने भगवान् महावीर स्वामी को पढने के निमित्त मदरसा में बैठाये मगर उन्होंने वहां जाकर उसी समय पंडित के संशयो का समाधान किया, और जनताको उनके ज्ञान का परिचय मिल गया। दिगम्बर मानते हैं कि यह बात बनी नहीं हैं, तीर्थंकर को मदरसा में पढने को भेजे जाय यह बात असंभवित है।

जैन—माता-पिता अपनी फर्ज मानकर या व्यामोह से पुत्र का लालन-पालन, शोभावृद्धि, गुण बढाने के लीये शिक्षापाठ-प्रदान, विवाहोत्सव वगेरह करते हैं। वैसे सिद्धार्थराजाने भी भगवान् महावीर को मदरसा में भेजे। तीर्थंकर भगवान् भी गंभीर होते हैं अतः वे अपने मुख से यूं नहीं कहते हैं कि-मैं ज्ञानी हूं मुजे मदरसा में मत भेजो, इत्यादि।

बात भी ठीक है—जैसा भगवान् नेमिनाथजी का विवाह का प्रसग है वैसा यह लेखशाला का प्रसग है। दिगम्बर मत से तो तीन ज्ञानवाले भगवान् ऋषभदेव भी गोचरी का अतराय होने पर भी छै महिने तक गोचरी के लिये फिरे थे, यह क्यों?।

अब लेखशाला का प्रसग तो यहां माता-पिता के अधीन है, जो होना सर्वथा संभवित ही है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि-भगवान् महावीर स्वामी का विवाह "समर वीर" राजा की पुत्री "यशोदा" से हुआ था, उनको उससे "प्रियदर्शना" नामक एक कन्या भी हुई जिसका विवाह भगवान् महावीर स्वामीने अपना भानजा "जमाली" नामक राजपुत्र के साथ कर दिया। उसको भी "शेषवती" नामक कन्या हुई, बादमें राजपुत्र जमालीने भगवान की पास मुनिपद का स्वीकार किया। वगेरह वगेरह।

दिगम्बर शास्त्र इन बातों को मानते नहीं है, वे तो साफ२ कहते हैं कि भगवान् महावीर आजीवन ब्रह्मचारी थे।

जैन—भगवान् महावीर स्वामीने विवाह किया था, यह बात तो दिगम्बर शास्त्रो से भी सिद्ध है, जिस के प्रमाण ऊपर बता दिये गये है।

जमाली भी महान् मुनि थे, मगर बाद में उसीने संघ भेद करके अपना नया संप्रदाय चलाया था, इस प्रकार यह भी ऐतिहासिक व्यक्ति है, जिसका इन्कार हो सकता नहीं है। जमाली निह्नव था, वैसे ९ नव निह्नव हुए हैं। मगर दिगम्बरशास्त्र अर्वाचीन है इस कारणसे उसका हाल बता सकते नहीं है। याती श्वेताम्बरों के हिसाब से दिगम्बर भी निह्नव हैं, अत दिगम्बर विद्वानोंने निह्नवो के इतिहास को ही उड़ा दिया और भगवान् महावीर स्वामी के विवाह प्रसंग को भी हटा दिया है। कुछ भी हो किन्तु जमालीका प्रसंग कल्पित नहीं है, और भगवान् महावीर स्वामी के विवाह की घटना भी कल्पित नहीं है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि—भगवान् महावीरस्वामीने अपना आधा देवदृष्य एक विप्र को दान कर दिया और बाद में उनका शेष रहा हुआ आधा वस्त्र भी गीर गया। जब वह गीरा तब भगवानने उसकी ओर गौर किया था वगैरह २। मगर यहां भगवान का वस्त्र और देखना असंभवित है।

जैन—भगवान् ने उस वस्त्र को देखा था। उस के कारण ये बताये जाते हैं।

(१) अपनी शिष्य सन्तति में मूर्छा कीतनी होगी, उस को जाणना।

(२) भावि संघ में कंटक बहुलता कैसी होगी, उस को जाणना।

(३) छद्मस्थावस्था,

(४) क्षपकश्रेणी में भी संज्वलन लोभ का संभव।

इन कारणो से वस्त्र को देखना संभवित है। फिर भी यह भूलना नहीं चाहिये कि—लोकोत्तर पुरुष का चरित्र लोकोत्तर ही होता है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि—केवली भगवान् महावीर स्वामीने छींक खाया था।

जैन—जंभाई और छींक ये नीरोगता के लक्षण माने जाते हैं। ये युगलिक को भी होते हैं।

तीर्थंकर भगवान् का शरीर औदारिक है तो उनको छींक

आवे यह भी अनिवार्य है। तीर्थंकर भगवान् आहार निहार करते हैं वैसे छींक भी करे।

दिगम्बर— श्वेताम्बर मानते हैं कि-गोशालाने केवली तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी पर तेजोलेश्या फेंकी थी और उपसर्ग किया था, इस से भगवान् को छै महिने तक खूनका दर्द रहा था।

जैन—वे इस को आश्चर्य घटनारूप ही मानते हैं।

दिगम्बर—भगवान् महावीर स्वामीने उस दर्द के लीये औषध के रूपमें जो कुछ लिया था, उसके लीये बड़ा मतभेद है।

उसका वर्णन श्री भगवती सूत्र के १५ वे शतक में है जिसका सार इस प्रकार है—

भगवान् महावीर स्वामी मेंढिक ग्राम के शालकोष्ठ उद्यान में समोसरे। उस समय भगवान् के शरीरमें तेजोलेश्या की उष्मासे उबले हुए पित्तज्वर का जोर था, खून के दस्त हो रहे थे, रोग काफी बढ़ गया था। इसीसे अन्यदर्शनी कहते थे कि-भगवान् महावीर का छे मास में छद्मस्थ दशामें ही मरण हो जायगा। उस समय भगवान के अनन्य रागी 'सींह' नामक अणगार मालुकावनमें तप तपते थे, उसने इस लोकोक्ति का पत्ता लगने से और 'अन्यदर्शनीओं की यह जूठ बात भी सची हो जायगी' इस ख्याल से दुःखपूर्ण करुण रुदन किया, भगवान् महावीरने उस समय सींह मुनिको बुलाकर कहा कि-हे सिंह ! तू दुःख मत कर ! मेरी मृत्यु छे मास में नहीं होगी किन्तु मैं १६ वर्ष पर्यन्त तीर्थंकर दशामें जीवन्त रहूंगा।

फिर भी तुझे इस व्याधि से दुःख होता है तो एक काम कर, कि-इस मेंढिक ग्राम में रेवती नामक गाथा पत्नी है, उसके यहां जा। उसने मेरे निमित्त दो कपोय शरीर तैयार कर रक्खे हैं उनको मत लाना, किन्तु उसके यहां मार्जार हत कुक्कड मंसए है, उनको ले आना। सींह मुनिजी भगवान् की इस आज्ञासे आनन्दित होता हुआ रेवतीके यहां गया, और उस औषध को ले आया।

उस औषध का निरामभाव से आहार लेने से भगवान् को भी रोग की शान्ति हुई। वगेरह वगेरह।

इस पाठमें जो १ दुवे कवोय सरीरा २ मज्जारकडए और ३ कुक्कुड मंसए शब्द हैं उनके लिये विसंवाद है। क्यों कि साधारण-तया उन निरपेक्ष शब्दो का स्थूल अर्थ यही निकलता है कि-भगवान् महावीर स्वामीने मांसाहार किया।

जैन-इस विषय में गौरता से विचार करना चाहिये। किन्तु उस के पहिले और एक बात का सफाई कर देना चाहिये कि-'भगवान् महावीर के मुख से २५०० वर्ष पहिले मागधी भाषामें उच्चरित हुए इन शब्दो को या उनके अर्थ या भावार्थ को अनेक संस्कारो से ओतप्रोत ऐसी प्रचलित भाषा के अनुकुल बना लेना', यह भी कुछ विचारणीय समस्या है।

अतः निम्न बातों को भी शोच लेना आवश्यक हैं

(१) जिनागम की रचना। और अर्थ शैली

(२) प्राकृत-संस्कृत भाषाके अनेकार्थ शब्द।

(३) प्रचलित अनेकार्थ शब्द।

जीनका ब्योरा इस प्रकार हैं।

(१) जिनागम की रचना और अर्थ शैली के लिये प्रमाण मिलता है कि—

इह चार्थतोऽनुयोगो द्विधा, अपृथक्त्वाऽनुयोगः पृथक्त्वाऽनुयोगश्च। तत्राऽपृथक्त्वाऽनुयोगो, यत्रैकस्मिन्नेव सूत्रे सर्व एव चरण-करणादयः प्ररूप्यन्ते अनन्तगम पर्यायार्थकत्वात् सूत्रस्य। पृथक्त्वा-ऽनुयोगश्च-यत्र क्वचित् सूत्रे चरणकरणमेव, क्वचित्पुनर्धर्मकथैव चेत्यादि। अनयोश्च वक्तव्यता-

जावंति अज्जवइरा अपुहुत्त कालियाणुओगस्स।
तेणारेण पुहुत्तं कालिय सुय दिट्ठिवाए य ॥७६२॥

(श्रीहरिभद्रसूरिकृत दशवैकालिकसूत्र टीका)

अर्थात्-आर्यवज्रस्वामी तक जिनागम के अपृथक्त्व माने चार चार अनुयोग थे-गमा पर्याय और अर्थ अनन्त निकलते थे, सामान्य विशेष मुख्य गौण और उत्सर्ग अपवाद से सापेक्ष अनेक

मार्जार-पित्तज्वरनाशक औषधि ।

(शब्द सिन्धु कोष पृ० ८१७)

रम्भा-केलका पेड़, मरकटतंतु(मकड़ी)-अमरबेल ।

(शब्द कोष)

राम-चिरायता	लक्ष्मी-कालीमीर्च(महाभिधान ,,)	
लक्ष्मण-मम्मरक डाली, जड़ी ।	दाम-हल्दी	,,
सीता-मिश्री	पार्वती-देशी हल्दी	,,
ब्रह्मा-पलाशपापड़ा	विभीषण-बरकुल मूल	,,
विष्णु-पीपल	रावण-इन्द्रायण तुम्बा	,,
शिवा-हरड़	इन्द्रजौ-इन्द्रजौ	,,
अर्जुन-अर्जुनछाल	महामुनि-अगस्तछाल	,,
पद्मनाभ-कमलडोडाजाति	चन्द्र-बांवची	,,
कृष्णा-गजपीपल	सूर्य-आक	,,
	रमा-शीतलमीर्च	,,

भावप्रकाश निघण्टु में प्राणिवाचक और प्राणि नाम सूचक अनेक वनस्पति बताई हैं । जिनमें से कतिपय ये हैं—

१ हरितक्यादि वर्गमें-हरीतकी, जीवन्ती, अस्थिमती, पूतना (६ से ११) वैदेही, पिप्पली (५३) गजपिप्पली (६७) चित्रको, व्यालः (६९) अजमोदा, मयूरसा च मायूरो (७७) वचा, गोलोमा (१०१) वंशरोचना, वैष्णवी (११७) ऋषभो वृषभो धीरो विषाणी-न्द्राक्ष (१२५) अश्वगन्धा (१४३-४५) ऋद्धि वृद्धि वाराही (१४२-१४५) कटवी, अशोका, मत्स्यशकला, चक्रांगी, शकुलादनी, मत्स्यपित्ता (१५४) इन्द्रयवं, कयचिदिन्द्रस्य नामैव भवेत्तदभिधायकं (१६०) नाकुली (१६८) मयूरविदला, केशी (१७०) कांगुनी, पारा-वतपदी, (१७४) शृङ्गी, कर्कटशृङ्गी, अजशृङ्गी (१८१) ब्राह्मणी भरद्वाजः (१८२) शृङ्गी (२१४) मातुलानी मादनी विजया जया (२३३) स्वर्जिकाक्षारः कापोतः (१५२)

२ कर्पूरादिवर्गमें-पतंगं (१८, १९) जटायुः कौशिक. (३२) नागः (६९) गोरोचना, गौरी (७९) जटामांसी, तपस्विनी (८९) प्रियंगु, विश्वसेनांगना (१०१) रेणुका राजपुत्री च नन्दिनी कपिला द्विजा पाण्डुपुत्री कौन्ती (१०४) काकपुच्छं (१०७) कुक्कुरं, दोम-नकं (१०९) निशाचरो, धनहरः, कितवो (१११) ब्राह्मणी देवी, मधुमाला (१२५) कपोतचरणा, नटी (१२९)

३ गडूच्यादिवर्गमें—जीवंती (७) नागिनी (१०) जया, जयन्ती (२५) सिंहपुच्छी (३४) सिंही (३६) व्याघ्री (३८) गोक्षुरः श्वदंष्ट्रा (४३-४५) जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया (५०) हयपुच्छिका (५५) व्याघ्रपुच्छः (६१) सिंहतुण्डः वज्री (७५) मातुलः (८७) सिंहिका, सिंहास्यो वाजिदन्तः (८९-९०) विष्णुक्रान्ता अपराजिता (१२३) कर्कटी, वायसी, करंजा (१२५) काकादनी (१२८) कपिकच्छूः मर्कटी, लाङ्गुली, (१३०-३१) मांसरोहिणी (१३३) मत्स्यनिरुद्दन (१३५) लक्ष्मणा (१४७) काकायु (१४८) गोलोमी (१४९) मत्स्याक्षी, शकुलादनी (१७७) वाराही, क्रौष्ट्री (१७६ से १७८) नारायणी (१८२) अश्वगन्धा, हयाह्वया, वाराहकर्णी (१८७) वाराहांगी (१९६) जयपाल (२००) ऐन्द्री (२०१) मुण्डी भिक्षुरपि प्रोक्ता श्रावणी च तपोधना महाश्रावणिका तपस्विनी (२१४-१६) मर्कटी (२१९) कोकिलाक्षस्तु काकेक्षुः (२१४) भिक्षुः (२२५) अस्थि शृङ्खला (२२६) कुमारी गृहकन्या चकन्या घृतकुमारीका (२३२) कृष्णवालः कुमारी राजबला (२३८) श्यामा गोपी गोपवधु गोपी गोपकन्या (२४०-४१) देवी गोकर्णी (२४८-४९) काका वायसी (२५०) काकनासा तु काकांगी काकतुण्डफला च सा (२५२) काकजंघा पारावतपदी दासी काका (२५४) रामदूतिका (२५६) हंसपादी हंसपदी (२६०) त्रिजप्रिया (२६१) चन्द्रा (२६५) मोहिनी रेवती (२६६) मत्स्याक्षी वाल्हीकी मत्स्यगन्धा मत्स्यादनी (२७०) सर्पाक्षी (२७१) शिवा (२८०) मण्डूकपर्णी, मण्डूकी (२८३) कन्या (२९१) मत्स्यादनी, मत्स्यगंधा, लांगली (२९९) गोजीका (३००) सुदर्शना (३१२) आखुकर्णी (३१३) मयूरशिखा (३१५)

४ पुष्पवर्ग में—पद्मिनी (७) पद्मा (१५) महाकुमारी (२१) नैपाली (२३) नलिका (२८) पाशुपत, बक (३२) कुब्जक (३१) माधवी (४०) नट (४३) नटवर दासी (५०-५१) प्रतिविष्णु (५४) कम्बुग्रीव (५६) मुनिपुष्प, मुनिद्रुम (५९) गौरी (६१) कर्णी (६४) मुनिपुत्र तपोधन कुक्कुर (६६) बर्बरी (६८)

५ पटोलादिवर्ग में—बाणांग (१) काम रामपुत्र (२२) राजा (३१) इन्द्रवारुण (६०, १३८, १४०) मामजम्बु (१५४) गोरक्षी (११०)

६ वटादिवर्ग में—वटी (११) अश्वकर्ण (१९, २०) अजकर्ण (२१) अर्जुन वीर (२२, २३) नागवी पक्षिणः (३०, ३१) गुडवीज

(३९, ४०) कच्छप (४४) वासिक (४८) कुमारक (६२) लक्ष्मी (६८) नेमि (७१)

८—शाकवर्गमें दार्वरी (२४) कुक्कुटः, शिखी, (३०) गोजिह्वा (३९) वाराही (१०७)

अनेकार्थवर्गमें-अजशृंगी, मेषशृंगी कर्कटशृंगी च। ब्राह्मी-ब्रह्मणी, मार्ङ्गी स्पृक्का च। अपराजिता-विष्णुकान्ता, शालपर्णी च पारापतपदी-ज्योतिष्मती काकजंघा च। गोलोमी-श्वेतदुर्वा वचा च। पद्मा-पद्मचारिणी, भार्ङ्गी च। श्यामा-सारिवा प्रियंगुश्च। ऐन्द्री-इन्द्रवारुणी, इन्द्राणी च। चर्मकषा-शातला, मांसरोहिणी च। रुहा-दूर्वा, मांसरोहिणी च। सिंही-वृहती वासा च। नागिनी-तांबुली, नागपुष्पी च। नटः श्योनाकः अशोकश्च। कुमारी-घृतकुमारिका शतपत्री च। राजपुत्रिका-रेणुका जाती च। चंद्रहासा-गडूची लक्ष्मणा च॥

मर्कटी—कपिकच्छुः अपामार्गः करंजी च।
कृष्णा—पिप्पली, कालाजाजी, नीली च।
मंडूकपर्ण—स्योनाकः मंजिष्ठा, ब्रह्ममण्डूकी च।
जीवंती—गडूची शाकभेदः वृन्दा च।
वरदा—अश्वगंधा, सुवर्चला वाराही च।

लक्ष्मी:—ऋद्धिः वृद्धिः शमी च। वीरः-ककुभः वीरणम् काकोली च शरश्च। मयूरः-अपामार्गः अजमोदा तुत्थं च।

रक्तसार—पतगः आदि। वदरा-वाराही आदि। सुवहा-मातुली आदि। देवी-स्पृक्का मूर्वा कर्कोटी च। लाङ्गली-कलिहारी जलपिप्पली नारिकेलश्च विशल्या च॥

चन्द्रिका-मेथी, चन्द्रशूरः श्वेतकण्टकारी च।
अक्षशब्दः स्मृतोष्टासु॥१॥
काकाख्यः काकमाची च काकोली काकणन्तिका।
काकजंघा काकनासा काकोदुम्बरिकापि च॥२॥
सप्तस्वर्थेषु कथितः काकशब्दो विचक्षणैः।
सर्पहिरदमेषेषु सीसके नागकेसरे
नागवल्ल्यां नागदन्त्यां नागशब्दश्च युज्यते॥३॥
रसो नवसु वर्तते॥४॥

पारिभाषिक शब्दमालामें—

चंद्रलेखा-बकुची,	इभ्वरम्-पित्तल.	अश्वकर्ण-इसबगोल,
फणी-श्वेतचन्दन,	पातालनृप-सीसा.	लक्ष्मी-लोहा
हरि-गुगल,	पुरुष-गुगल,	माद्री-अतीस,
नागार्जुनी-दुद्धी,	बहुपुत्रा-बचासा,	राक्षसी-राई,
शतसुता-शतावर,	मुकुन्द-कुंदरू,	कुमारी-घीगुवार,
महाबला-सहदेई,	शकारि-कचनार,	रक्तबीज-मूंगफली
मुंज-सरकंडा,	लांगली-कलिहारी,	तरुण-एरंड,
चंडालिनी-लहसुन,	उरग-सीसा,	कृष्णबीज-कालादाना,

ताम्रकूट-तमाखू।

(बम्बई पुस्तक एजेन्सी-कलकत्तासे प्रकाशित साहित्यशास्त्री पं० राम-तेजपाण्डेयकृत टीप्पणीयुक्त, पं. भावमिश्रकृत भावप्रकाशनिघण्टुः प्रथमावृत्ति वि. स. १९९२)

(३) आज भी कई प्रचलित शब्द ऐसे हैं कि-जिनका अर्थ, भाषाभेदादिके कारण प्राणी और वनस्पति ये दोनों होते हैं। जैसा कि—

शब्द	प्राणी-देशमें	वनस्पति-देशमें
कुकडी	मुरघी-गुजरातमें	भुट्टे, पंजाबमें
गलगल	गुट्टारपक्षी —	बीजौरा,
चील	चीलपक्षी, यू.पी. में	चीलकी भाजी
गील्होड़ी	गीलहरी,	शाग,
कवेला		सफेदकोला,पेठा (जि०मेरठ)
पोपटा	बीभत्सभक्ष, मालवामें	डरावना, गुजरातमें
लज्जालु	स्त्री	छोडकी जाति, गुजरातमें

इस घटनासे सम्बन्ध रखनेवाली निम्न बातें भी विचारपथमें ले लेनी चाहिये।

(१) इस औषधको लानेकी आज्ञा देनेवाले सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान श्री महावीर हैं। और लानेवाले हैं पांच महाव्रतधारक महा तपस्वी सिंहमुनिजी ? जो मानसिक, वाचिक और शारीरिक हिंसाके कट्टर विरोधी हैं। जो अहिंसाके महान् उपदेश हैं और स्वयं पालक भी हैं। यदि उपदेश कीसी भी सिद्धान्त की प्रह-

साए कम्मं पकरेत्ता णेरइएसु उववज्जंति, तंजहा-महारंभयाए महापरिग्गहयाए पंचिंदियवहेणं कुणिमाहारेणं।

(श्री उववाइ सूत्र)

( ) भुंजमाणे सुरं मंसं, परिवुडे परंदमे॥ ॥
अयकक्करभोई य, तुंदिल्ले चियलोहिए।
आउयं नरए कंखे, जहां एसं व एलए ॥७॥

(उत्तराध्ययनसूत्र अ० ७ गा० ७)

हिंसे बाले मुसावाई, माइल्ले पिसुणे सढे।
भुंजमाणे सुरं मंसं, सेयमेयंति मन्नई ॥९॥

(उत्तराध्ययनसूत्र अ० ५ गा० ९)

तुहं पियाइं मंसाइं, खंडाइं सोल्लगाणि य।
खाईओ विसमंसाइं, अग्गिवण्णइं ऽणेगसो ॥६७॥

(उत्तराध्ययनसूत्र अ० १९ गा० ६७)

अमज्जमंसासि अमच्छरीआ, अभिक्खणं निव्विगइं गया अ।
अभिक्खणं काउसग्गकारी, सज्झायजोगे पयओ हविज्जा॥

(श्रीदशवैकालिकसूत्र चू० २ गा० ७)

( ) मेसज्जं पियमसं देई, अणुमन्नई जो जस्स।
सो तस्स मइलग्गो, वच्चइ नरयं ण संदेहो॥ ॥
( ) दुग्गंधं बीभत्थं इन्दियमलसंभवं असुइयं च।
वइपण नरयपडणं चियजणिज्जं अभो मंसं॥ ॥
( ) सद्यः संमूर्च्छिता नन्त-जन्तु संतान दूषितम्।
नरकाध्वनि पाथेयं, कोऽश्नीयात् पिशितं सुधीः॥ ॥
आमासु अ पक्कासु अ विपच्चमाणासु मंसपेसीसु।
सययं चिय उववाओ भणिओ उ निगोयजीवाणं॥

(योगशास्त्र, प्रकाश ३ श्लो० मूल व टीका)

इत्यादि पाठो से भगवान् महावीर स्वामी के आदर्श रूप अहिंसक जीवन का और अहिंसा के उपदेश का पूरा परिचय मिल जाता है।

ऐसे अहिंसा के प्रजापति को मांसाहारी मानना-कहना या दीखना, यह मन का जीमका और कलमका ही दोष है।

(२) सींहमुनि उस औषध को कसाई के घरसे या वधस्थान से नहीं लाये थे, एक परम जैनी के घरसे लाये थे, जिसका नाम है रेवती।

जैनागम से उस समयकी दो रेवतीका जीक्र पाया जाता है।

एक रेवती थी, राजगृही के महाशतक की स्त्री। जिसका वर्णन मीलता है कि—

पाठ-तएणं सा रेवइ गाहावइणी अंतोसत्तरत्त अलसएणं वाहिणा अभिभूआ अट्टदुहट्टवसट्टा कालमासे कालं किचा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुए नरए चउरासीई वाससह ट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइएसाए उववण्णा।

(श्रीउपासकदशांगसूत्र)

यह मरकर नारकीमें गई है, सींह मुनि इसके घरसे औषध नहीं लाये थे।

दूसरी रेवती थी, मेंढिक ग्रामकी मतधारिणी जैन उपासिका। जिसका वर्णन मिलता है कि—

पाठ-समणस्स भगवओ महावीरस्स सुलसा रेवइ पामुक्खाणं समणोवासियाणं तिन्नीसयसाहस्सीओ अट्ठारस सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया हुत्था।

(श्री कल्पसूत्र वीरचरित्र)

पाठ-तएणं तीए रेवतीए गाहावइणीए तेणं दव्वसुद्धेणं जाव दाणेणं सीहे अणगारे पडिलाभिए समाणे देवाउए निबद्धे, अहो विजयस्स, जाव जम्मं जीवियफले रेवती गाहावइणीए।

(श्रीभगवतीजी सूत्र श०१५)

सींह मुनि इस मेंढिक ग्रामवाली रेवती के घरसे उक्त औषध को लाये थे, इस रेवती ने भी उक्त औषध को देकर देव आयुष्यका बंध किया और तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया।

दिगम्बर विद्वान् भी इस रेवती के इस औषधदानकी तारिफ करते हैं और तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन करने का कारण यही

दान था ऐसा स्पष्ट एकरार करते हैं। देखिये—

पाठ–रेवती श्राविकया श्रीवीरस्य औषधदानं दत्तम्। तेनौषधिदानफलेन तीर्थंकरनामकर्मोपार्जितमत एव औषधिदानमपि दातव्यम्।

(वि० सम्यक्त्व कौमुदी, पृ०९५)

जो परम जैनी है द्वादशव्रतधारिणी है मरकर देवलोक में जाती है और दानसे ही तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन करती है, यह रेवती मांसाहार करे या उस तीर्थंकर नाम कर्म के कारणभूत दान में मांस का दान करे, यह तो पागल सी ही कल्पना है।

(३) जीस रोग के लीये उक्त औषध लाया गया, वह रोग था 'पित्तज्वर परिगय सरीरे दाह वक्कंतिए' माने–पित्तज्वर और दाहका। जिसमें अरुचि ज्वलन और खूनके दस्त होते रहते हैं।

उसको शांत करने के लीये कोला बीजौरा वगैरह तरी देनेवाले फल, उनका मुरबा, पेंठा, कबेला, पारावतफल, चतुष्पत्री भाजी, खटाईवाली भाजी, वगैरह प्रशस्य माने जाते हैं, और उस रोगमें मांस की सख्त परहेज की जाती है। वैद्यग्रन्थों में साफ २ उल्लेख है कि—

स्निग्धं उष्णं गुरु रक्तपित्तजनकं वातहरं च।

मांस उष्ण है भारी है रक्तपित्त को बढानेवाला है अतः इस रोग में वह सर्वथा त्याज्य है।

इस रोग में कोला अच्छा है और बीजौरा भी अच्छा है
(कय्यदेवनिघटु, सुश्रुत संहिता)

अब तो निश्चित है कि-यह औषध मांस नहीं था किन्तु तरी देनेवाला कोई फल और उसका मुरब्बा था।

इन सब बातों को मद्दे नजर रखते हुए उन शब्दों का अर्थ करना चाहिये।

दिगम्बर–उक्त विषय का मूलपाठ इस प्रकार है

पाठ–तएणं रेवतीए गाहावइणीए मम अट्ठाए दुवे कवोयसरीरा उवक्खडिया तेहिं नो अट्ठो।

अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुड मंसए तमा-हराहि एएणं अट्ठो।

(श्रीभगवतीजी सूत्र शतक-१५)

जैन—इस पाठके विचारणीय शब्द ये हैं—

(१) दुवे (२) कवोय (३) सरीरा (४) उवक्खडिया (५) नो अट्ठो (६) अन्ने (७) पारियासिए (८) मज्जार (९) कडए (१०) कुक्कुड (११) मंसए। जीनका विवरण इस प्रकार है।

(१) दुवे, शब्द पर विचार—

"दुवे" यह शब्द "कवोय" की नहीं, किन्तु "कवोयसरीरा" की संख्या बताता है, माने दो कवोय नहीं किन्तु कवोय के दो मुरबे ऐसे अर्थ का द्योतक है।

यदि कवोय का अर्थ "पक्षिविशेष" लीया जाय तो यहां दुवे और सरीरा इन शब्दों का समन्वय हो सकता नहीं है।

साफ बात है कि सारा कबूतर पकाया जाता नहीं है और अंगोपांग अलग २ करके पकाया जाय तो दो-शरीर ऐसी संख्या रहती नहीं है। माने दुवे और सरीरा इन दोनों में से एक शब्द निष्फल हो जाता है।

इस के अलावा पक्षी के लीये तो "दुवे कवोया" ही सीधा शब्द है, जिस को छोडकर यहां दुवे और शरीरा शब्दों का प्रयोग किया गया है जो इरादापूर्वक कवोय का अर्थ कबुतर करनेसे इनकार कर रहा है।

यदि कवोय का अर्थ 'वनस्पति विशेष' "लीया जाय तो यहां दुवे और शरीरा इन दोनों शब्दो का ठीक समन्वय हो जाता है। बात भी ठीक है कि-कवोय फलका मुरब्बा बना रखा हो तो वे फल सम्पूर्ण और दो वगेरह संख्या से सूचित भी किये जाते हैं। वैसे फल-मुरब्बा के लीये "दुवे कवोय सरीरा" ऐसा प्रयोग भी सार्थक हो जाता है।

इस हालत में मानना ही पड़ेगा कि यहां कवोय शब्द जान-वर-पक्षिके लीये नहीं, किन्तु फल के लीये प्रयोगित किया गया है।

कूष्माण्डं स्यात् पुष्पफलं पीतपुष्पं बृहत्फलम् ॥५३॥
कूष्माण्डं बृंहणं वृष्यं गुरुपित्तास्रवातनुत् ।
बालं पित्तापहं शीतं मध्यमं कफकारकम् ॥५४॥
वृद्धं नाति हिमं स्वादु सक्षारं दीपनं लघु ।
बस्तिशुद्धिकरं चेतो रोगहृत्सर्वदोषजित् ॥५५॥
कूष्माण्डी तु भृशं लघ्वी, कर्कारुरपि कीर्तिता ।
कर्कारु ग्राहिणी शीता, रक्तपित्तहरी गुरुः ॥५६॥
पक्वा तिक्ता ग्निजननी सक्षारा कफवातनुत् ॥५७॥

कोला-पित्त रक्त और वायु दोषको हरता है। छोटा कोला पित्तनाशक शीतल और कफजनक है। बड़ा कोला उष्ण मीठा दीपक बस्तिशुद्धिकारक हृदयरोग का नाशक और सर्व दोषों का नाशक है। छोटा कोला ग्राहक शीतल रक्तपित्त दोषनाशक और पक्का हो तो अग्निवर्धक है।

(भावप्रकाश निघण्टु शाकवर्ग)

(४) मांस के गुण-दोष-

मांसं-स्निग्धं उष्णं गुरु रक्तपित्तजनकं वातहरं च ॥
सर्वं मांसं वातविध्वंसि वृष्यं ॥

मांस खूनकी बिमारी और पित्त विकार को बढाने वाला है।

अब भगवान् महावीर स्वामीके दाह रोग के जरिये सोचा जाय तो निर्विवाद् सिद्ध है कि-यहां १ कपोत जानवर का मांस सर्वथा प्रतिकुल है, २ पारापत वनस्पति मध्यम है ३ पारिस भी मध्यम है, और ४ कोलाफल ही अधिक उपयोगी है।

साथ साथ में यह भी सिद्ध है रेवती श्राविकाने जो "दुवे कवोय सरीरा" रक्खे थे, वे जानवर वनस्पति या पारिशफल नहीं किन्तु कोलाफल के मुरबे ही थे।

भगवतीसूत्र के प्राचीन चूर्णीकार और टीकाकारोंने भी उक्त पाठ का अर्थ "कूष्मांड" फल ही लीया है। जैसा कि—

कपोतकः पक्षिविशेषः तद्वद् ये फले वर्णसाधर्म्यात् ते कपोते-

कूष्माडे, ह्रस्वे कपोते कपोतके ते च ते शरीरे वनस्पतिजीवदेहत्वात् कपोतशरीरे। अथवा कपोतकशरीरे इव धूसरवर्णसाधर्म्यादेव कपोतकशरीरे–कूष्मांडफले एव। ते उपस्कृते–संस्कृते। तेहिं नो अट्ठोत्ति बहुपापत्वात्।

माने–रंगकी समता के कारण कूष्माण्ड फल ही कपोत कहे जाते है। रेवती श्राविकाने उनको संस्कार देकर रख छोडे थे।

(आ० श्रीअभयदेवसूरीकृत भग० टीका पृ० (११)

(आ० श्रीदानशेखरसूरिकृत भग० टीका पृ०)

कूष्मांड फल का मुरब्बा दाह वगेरह रोग को शान्त करता है, यह बात आज भी ज्यों की त्यों सही मानी जाती है। आज भी आगरा वगेरह प्रदेश में गरमी की मोसम में कूष्मांड का मुरब्बा-पेंठा वगेरहका अधिकांश इस्तिमाल किया जाता है। मेरठ जिल्लामें भी सफेद कुम्हड़ा जिसका दूसरा नाम कयेला है उसके पेंठे बहोत खाये जाते हैं।

सारांश–कूष्मांडका मुरब्बा, पेंठा, पाक वगेरह गरमी को शान्त करनेवाले हैं। और रेवती श्राविकाने भी भगवान् महावीरस्वामी के दाह रोग की शान्ति के लीये दुवेकवोयसरीरा माने "कूष्मांड फल का मुरब्बा" बनाकर रक्खाथा।

यहां कवोय शब्द कूष्मांड फलका ही घोतक है।

(२) "सरीरा" शब्द पर विचार—

"सरीरा" यह शब्द कवोय से निष्पन्न पुल्लिंगवाले द्रव्य का घोतक है।

यदि यहां "सरिराणि" शब्द प्रयोग होता तो उसका अर्थ पक्षिका सरीर भी करना पड़ता, क्योंकि–नपुंसक शरीर शब्द ही शरीर या मुरदा के अर्थ में है। किन्तु शास्त्रनिर्माताको यह यहां अभीष्ट नहीं था, अत एव उन्होंने यहां नपुंसक "सरिराणि" प्रयोग लिया नहीं है।

शास्त्रकार ने यहां पुल्लिंग में "सरीरा" शब्दप्रयोग किया है

अतः उसका अर्थ मुरब्बा और पाक ही है। पुल्लिंग प्रयोग होने के कारण ही इतना अर्थभेद हो जाता है; बादमें आनेवाला पुल्लिंग-वाला "अट्ठे" शब्द भी इस मत को पुष्ट करता है।

दुसरी बात यह है कि-मांसके लीये सीधे जातिवाचक शब्द ही बोलेजाते हैं, किन्तु उन के साथ सरीर शब्द लगाया जाता नहीं है। विपाकसूत्रमें मांसाहार का वर्णन है मगर कीसी स्थान में जातिवाचक नाम के साथ शरीर शब्द नहीं है। हां वनस्पति के साथ में "काय" शब्द मीलता है, माने वनस्पति काय-वनस्पति शरीर ऐसा प्रयोग होता है, वास्तव में सरीरा यह शब्द वनस्पति के साथ ठीक संगति पाता है

प्रस्तुत पाठ में कवोय के साथ जो सरीरा शब्द है वह विशेष्य के रूपमें ही है। इसी से भी निर्णीत बात है कि यहां सरीरा शब्द मुरब्बा व पाक के अर्थमें ही है।

तीसरा यह भी विचारणीय बात है कि-"कपोयसरीरा" के पूर्वे "दुवे" शब्द देकर उनकी संख्या बताई है, मांस हो तो टूकडा होना चाहिये मगर यहां टूकडे बताये गये नहीं है इस हिसाब से भी यह बात मुरब्बा के पक्ष में पड़ती है।

सारांश-यहां "सरीरा" शब्द मुरब्बा के लीये और "दुवे कवोयसरीरा" शब्द दो कुष्मांड के मुरब्बा के लीये लीया गया है

(४) "उवक्खडिया" शब्द पर विचार—

"उवक्खड़िया" यह शब्द पुंल्लिङ्गमें है, संस्कारका सूचक है। उपासकदशांग और विपाकसूत्र वगेरह जिनागमों में मांस के लीये 'भज्जिए' 'तलिए' वगेरह शब्दप्रयोग है "उवक्खड़िया" प्रयोग नहीं है और श्रीभगवतीसूत्र आदि में प्रशस्त भोजनके लीये ही "उवक्खड़िया" शब्द प्रयोग है। माने-मांस के संस्कारमें "उवक्खडिया" प्रयोग किया जाता नहीं है।

अतः प्रस्तुत स्थान में "उवक्खड़िया" का प्रयोग हुआ है यह भी 'कवोयसरीरा' से कपोत-मांस की नहीं किन्तु कुष्मांड पेंठा पाक की ही ताईद करता है।

(५) "नो अट्ठो" शब्दपर विचार—

"नो अट्ठो" यह शब्द निषेध के लीये है।

रेवती श्राविकाने कुष्मांड पाक भगवान् महावीर स्वामी के निमित्त बना रक्खा था, किन्तु आधाकर्मीक-दोषयुक्त होने के कारण ही भगवान् ने उसे लाने की मना कर दी।

जहां, निमित्त दोषवाला, आहार लेने का भी निषेध किया गया है, वहां मांसाहार लेनेका मानना, यह तो दुःसाहस ही है।

(६) "अहे" शब्द पर विचार—

"अहे" यह शब्द "कुक्कुड़-मसए" का सर्वनाम है, उसका अर्थ होता है-दुसरे।

यह शब्द पुल्लिंग में है, एवं "कवोयसरीरा" और "कुक्कुड़-मसए" ये दोनों शब्द भी पुंल्लिंग में है। पुल्लिंग होने के कारण ये वनस्पति विशेष ही है ऐसी गवाही 'अहे' शब्द देता है।

(७) "पारियासिए" शब्द पर विचार—

"पारियासिये" यह बीजोरा पाकका विशेषण है, उसका अर्थ होता है, अधिक पुराणा।

मांस असांचयिक चिगई है बासी (पुराणा) मांस तो रोग को अधिक बढाता है. और एकदिन की बासी चीज के लीये 'पर्यासिए' नहीं, किन्तु 'पज्जुसिए' शब्द का प्रयोग किया जाता हैं, इस हालत में यदि, यहां किसी भी प्रकारका मांस होता तो यथानुकूल "पज्जुसिए" शब्द प्रयोग होता, किन्तु यहां यह शब्द प्रयोग न होने के कारण "परियासिए" से सूचित वस्तु मांस नहीं है, यह निर्विवाद बात है॥

यहां अविय शब्द दिया है मगर साथ में 'उवक्खडिए या भज्जिए' शब्द नहीं है, अत: यह वस्तु मांस नहीं है, किन्तु बहुत काल रहेनेवाली कोई वस्तु है। मानें-कोसो भी प्रकार का "पाक" है।

बृहत्कल्पसूत्र उ० ५ वगैरह स्थानो में अधिक काल तक रहनेवाले घी तेल वगैरह के सम्बन्ध में "पारियासिए" प्रयोग किया गया है। इस हिसाब से यहां भी पुराणा "बीजौरा पाक" के लीये "पारियासिए" प्रयोग है यह युक्तियुक्त है।

(८) "मज्जार" शब्द पर विचार-

"मज्जार" यह एक कीमती द्रव्य को वासना भावना याने

पुष्ट देने की चीज है, जिसकी मात्रा गरमी वगैरह रोगों को शान्त करने में उपकारक है।

'मज्जार' का संस्कृत पर्याय "मार्जार" होता है।

मार्जार और मार्जार से बने हुए कतिपय शब्दों के अर्थ निम्न प्रकार हैं—

मार्जार–अश्वसह–चोयाण–हरितग–तंदुलेज्जग–तण–वत्थुल–चोरग 'मज्जार' पोइ–चिल्लीया। एक किस्मकी वनस्पति, भाजी।

(भगवती सूत्र श० २१)

मार्जार–वत्थुल–पोरग 'मज्जार' पोइवल्लीय पालक्का, एक किस्मकी वनस्पति॥

(पन्नवणा-सूत्र पद १ हरित-विभाग)

मार्जार–विरालिकाऽभिधानो वनस्पतिविशेषः। विडालिका नामनी वनस्पति॥

(भगवती श० १५ टीका)

विडालिका–एक किस्मकी औषधी.

(आचारांग सूत्र सू० ४५ पृ० ३४८)

विडालिका–एक किस्मकी औषधी.

(दशवैकालिक सूत्र अ० ५ उ० २ गा० १८)

विडालिका–वृक्षपर्णी

(क० स० श्री हेमचंद्रसूरि कृत निघंटु संग्रह)

विडालिका–स्त्री भूमिकूष्मांडे, पेंठा, भोंयकोला.

(वैद्यक शब्द सिंधु)

विराली–एक किस्मकी वेल.

(पन्नवणा सूत्र वल्ली पद. १, गा० ४४)

विडाली–स्त्री भूमि कूष्मांडे, पेंठा, भुंयकोला.

(शब्दार्थ-चिंतामणि कोष)

मार्जार–रक्तचित्रक.

मार्जार–वायुविशेष.

बिल्ली–वनस्पति विशेष.

(प्रज्ञा० प० १ गा० १९-१४)

मार्जार-मार्जारः स्यात् शट्यांश-विडालयोः। शट्टी चीज.

(क० स० श्री हेमचन्द्रसूरि कृत हैमी अनेकार्थ-नाममाला)

(वैद्यक शब्द-सिन्धु, जैनधर्म प्र० ५४/११/ पृ० ४२७)

मार्जार-दगुर्या तापस तरु मार्जार। दंदुगीका दरख्त, जिस के तेल से बीजोरा दिमज वगेरह भुंजे जाते है

(हैमीनिघंटु सग्रह)

मार्जार-विडाल।

मार्जारी, मार्जारिका, मार्जारगंधमुख्या-कस्तुरी

मार्जार गंधा, मार्जारगन्धिका,-एक किसमका हिरन

(श्री जैन सत्यप्रकाश व० ४ अ० ७ क० ४३)

ये शब्द और इनके अर्थ "मार्जार" शब्द वनस्पति वर्ग में कितना व्यापक है इसका ठीक परिचय देते हैं।

अब भगवान् महावीर स्वामी के दाहरोग की अपेक्षा शोचा जाय तो मानना पड़ेगा कि-यहां बिडाल का तो कोई काम नहीं है, किन्तु मार्जार वनस्पति और शट्यांश ही उपकारक है। अतः उक्त रोग पर इनकी भावनावाला औषध ही दीया गया था।

बात भी ठीक है कि-दाह रोगमें खटाई वगेरह उपकारक हैं।

उक्त रोग में मार्जार नामका वायु भी सामील था, उसकी शान्ति के लीये जो संस्कार दिया जाय वह भी "मार्जारकृत" माना जाता है। इसी तरह यहां मार्जारका अर्थ "वायु" भी है। भगवती सूत्र के प्राचीन टीकाकारोने उक्त शब्द का वायु और वनस्पति अर्थ ही बताया है। जैसा कि—

मार्जारो वायुविशेषः तदुपशमाय कृतम्-संस्कृतं-मार्जार-कृतम्॥ अपरे त्वाहुः-मार्जारो बिडालिकाभिधानो वनस्पतिविशेषः तेन कृतं भावितं यद् तत्।

(आ० श्री अभयदेवसूरि कृत भग० टीका पत्र-)

(आ० श्रीदानशेखरसूरि कृत भग० टीका पत्र—)

माने-मार्जारवायुको दबाने के लीये जो औषध संस्कार दिया जाय वह "मार्जारकृत" माना जाता है। और मार्जार माने बिडालीका नामक वनस्पति से जो संस्कारित किया वह भी "मार्जारकृत" माना जाता है।

सारांश—यहाँ 'मार्जार' शब्द वनस्पति का द्योतक है।

(९) "कडए" शब्द पर विचार—

"कडए' यह शब्द पुंलिंग में है, सप्तमी विभक्ति है, धातु से बना हुआ है और मार्जार का विशेषण है। इसका संस्कृत पर्याय "कृतकः" है।

यदि यहाँ कडए का मारित अर्थ प्रयोग होता तो उसका 'बीडालने मारा हुआ' ऐसा अर्थ भी हो जाता, किन्तु यहाँ कडए प्रयोग है जिस का 'मार्जार से भावित संस्कारित' यानी संस्कारित यह अर्थ ही होता है।

इसके अलावा बीडाल कुकड़ा को मारे और छोड़देवे, अन्य चीजों को ऐसा उठा लेवे, इस रोगमें यही ठीक जान, इत्यादि कल्पना ही यहाँ अप्रासंगिक है।

'मांसए' और 'कडए' का पुंलिंग प्रयोग भी मांस अर्थ के खिलाफ में आता है, और इस कल्पना को निष्फल बना देता है।

औषध विज्ञान में दूसरे से संस्कारित वस्तुओं के लिए दधिकृत शर्कराकृत मातुलिंगकृत इत्यादि प्रयोग होते हैं जिनका अर्थ-दहिसे संस्कारित शक्करसे संस्कारित और विडालिका औषधिसे संस्कारित वगैरह होता है।

सारांश—यहां कडए का अर्थ संस्कारित और 'मार्जारकडए' का अर्थ 'मार्जार वनस्पति की भावना वाला' होता है।

(१०) "कुक्कुड" शब्द पर विचार—

"कुक्कुड" यह एक किस्म की खास 'वनस्पति' है। जो बहुत दिनों तक रह सकती है और जिसके खाने से गरमी रक्तदोष पित्तज्वर और पेचीश इत्यादि रोग शान्त होते हैं।

जिसका संस्कृत पर्याय "कुक्कुट" होता है।

"कुक्कुट" और कुक्कुट से बने हुए कतिपय शब्दों के अर्थ निम्न प्रकार है।

कुकुट—थीवारकः शितिवरो वितन्तुः कुक्कुटः शितिः।

अर्थात्—थीवारक, चतुष्पत्री। (हैमनिघंटु संग्रह)

त्वक् तिक्तकटुका स्निग्धा, मातुलुंगस्य वातजित् ॥
बृहणं मधुरं मांसं, वातपित्तहरं गुरु ॥

बीजौरा का मांस (गुदा) पुष्टिकारक मधुर वातहर और पित्तहर है, वगैरह। - (वाग्भट्ट)

बीजपुरो मातुलुंगो रुचकः फलपूरकः ॥
बीजपुरफलं स्वादु, रसे ऽम्लं दीपनं लघु ॥१३१॥
रक्तपित्तहरं कण्ठ— जीव्हा हृदय शोधनम् ॥
श्वास कासा ऽरुचिहरं हृद्यं तृष्णाहरं स्मृतम् ॥१३२॥
बीजपुरो ऽपरः प्रोक्तो मधुरो मधुकर्कटी ॥
मधुकर्कटिका स्वाद्वी रोचनी शीतला गुरुः ॥१३३॥
रक्तपित्त क्षय श्वास कास हिक्का भ्रमा ऽपहा ॥१३४॥

बीजौरा—रक्तपित्तदोषका नाशक कण्ठ जीभ व हृदयका शोधक श्वास काश व अरुचिका विनाशक और तृष्णाहर है।

मधुर बीजौरा—शीतल रक्तपित्तनाशक है, वगैरह।

(भावप्रकाश निघण्टु फलवर्ग)

(३) स्मरणमें रहे कि गुरुपाक मांस उष्णवीर्य है। मांसाहार वगैरहको बढानेवाला है।

(सुश्रुत संहिता)

अब भ० महावीर स्वामी के दाह वगैरह रोग की अपेक्षा सोचा जाय तो निर्विवाद सिद्ध है कि-वहां गुरुपाक सर्वथा प्रति कूल है बडपत्तिया भाजी और बीजौरा ही उपकारक है।

नतीजा यह है कि-रेवती श्राविकाके घरमें जो 'कुक्कुट-मांसक' था वह 'बीजौरा पाक' था।

भगवतीसूत्र के प्राचीन चूर्णीकार और टीकाकारोंने उस शब्द से बीजौरापाक ही लीया है। जैसा कि--

मार्जारो वायुविशेषस्तदुपशमनाय कृतम्-संस्कृतम्-मार्जारकृतम् ॥ अपरे त्वाहुः—मार्जारो विरालिकाभिधानो वनस्पतिविशेषः

तेन कृतं भावितं यत् तत् तथा किं तदित्याह 'कुक्कुटमांसकं' बीज-पूरकं कटाहं आहराहिचि निरवद्यत्वात्। पत्तगं मोएति पात्रकं पीठरकविशेषं मुंचति, सिकके उपरिक्तं सत् तस्मादवतारयतीत्यर्थः।

(आ॰ श्रीअभयदेवसूरि कृत भग॰ टीका)

(आ॰ श्रीदानशेखरसूरि कृत भग॰ टीका)

माने—'बीजोरा पाक'ही कुक्कुटमांसक कहा जाता है वह रेवती श्राविका के यहां तैयार था।

आज भी दाह वगेरह की शान्ति के लीये बीजोरा अकसीर माना जाता है।

सारांश-यहां कुक्कुड़ शब्द बीजोरा का और 'कुक्कुड़मांसक' बीजोरा पाक का ही द्योतक है।

(११) "मंसए" शब्द पर विचार—

"मंसए" यह शब्द बीजोरा से निष्पन्न, पुल्लिंगवाची 'द्रव्य'का द्योतक है।

जिसका संस्कृत पर्याय "मांसकः" होता है

मांस, और मांस से बने हुए कतिपय शब्दों के अर्थ निम्न प्रकार हैं।

मांस (न०)—गुदा, फलगर्भ, फांक

मांस (न०)—मांस, गर्भ,

मांसक (पु०)—पाक, गुदा,

मांसफला (स्त्री०)—मांसमिव कोमलं फलं यस्याः। वार्तक्याम् बेंगन, भाटा।

(शब्दस्तोम महानिधि)

जटामांसी (स्त्री०)—जटामांसी, भूतजटा, बालछड़ वनस्पति, (भावप्रकाश निघण्टु कर्पूरादि वर्ग श्लो॰ ८९)

रक्तबीज—मूंगफली, (भावप्रकाश पारिभाषिक शब्दमाला)

इन अर्थों से सिद्ध है कि-मांस शब्द मांस का द्योतक है और फल के गर्भ का भी द्योतक है, किन्तु मांसकः शब्द तो पाकका ही द्योतक है।

अब भ० महावीर स्वामी के दाह ज्वर आदि के लीये शोधा जाय तो यहां मांसक का अर्थ पाक ही समुचित है। देखो—

(१) स्निग्धं उष्णं गुरु रक्तपित्तजनकं वातहरं च मांसं॥

सर्वं मांसं वातविध्वंसि वृष्यं॥

मुरघा का मांस उष्णवीर्य है।

इत्यादि वैद्यक वचनो से यहां मांस सर्वथा प्रतिकुल ही माना जाता है

(२) प्राचीन काल में फलगर्भ और बीज के लीये मांस और अस्थि शब्द का विशेष प्रयोग किया जाता था, जिनागम और वैद्यक ग्रन्थो में ऐसे अनेक प्रयोग उपलब्ध हैं। जैसा कि—

विण्टं स-मंसकडाहं एयाइं हवंति एगजीवस्स॥९१॥

टीका-'वृन्तं समंसकडाहं'ति-समांसं सगिरं तथा कटाह एतानि त्रीणि एकस्य जीवस्य भवन्ति-एकजीवात्मकानि एतानि त्रीणि भवन्तीत्यर्थः॥

(-श्री पन्नवणासूत्र पद १, सूत्र १५, पृ० १६, १७)

से किं तं रुक्खा? रुक्खा दुविहा पन्नता, तं जहा-एगट्ठिया य बहुबीयगा य। से किं तं एगट्ठिया? एगट्ठिया अणेगविहा पन्नत्ता, तं जहा-

निंबं य जंबु कोसंब, साल अंकोल पीलु सेलु य।
सल्लइ मोयइ मालुय, बउल पलासे करंजे य॥१२॥
पुत्तंजीवय ऽरिट्ठे, विभेलए हरिडए य भिल्लाए।
उंबेभरिया खीरिणि, बोधव्वे धायइ पियाले॥१३॥
पूइय निंब करंजे, सुण्हा तह सीवणा य असोगे य।
पुण्णाग णाग रुक्खे, सिरिवण्णी तहा असोगे य॥१४॥

जेयावण्णे तहप्पगारा। एएसि णं मूला वि असंखिज्ज जीविया, कंदा वि खंधा वि तया वि साला वि पवाला वि पत्ता पत्तेयजीविया, पुप्फा अणेगजीवियां फला एगट्ठिया॥से त्तं एगट्ठिया॥

(पन्नवणा सूत्र पद-१ सूत्र-२३ पृ० ३१ जीवाभिगम सूत्र प्रति० १, सूत्र २० पृ० ११)

"त्वक्" तिक्ता दुर्जरा तस्य वातक्रिमिकफापहा।
स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं "मांसं" मारुतपित्तजित् ॥
(सुश्रुत संहिता)

"त्वक्" तिक्तकटुका स्निग्धा मातुलुंगस्य वातजित्।
बृंहणं मधुरं "मांसं" वातपित्त-हरं गुरु ॥
(सुश्रुत संहिता)

पूतना स्थिमती सूक्ष्मा कथिता मांसला मृता ॥८॥
(भावप्रकाशनिघण्टु, हरितक्यादिवर्ग)

मांसफला—बेंगन (शब्द स्तोम महा निधि)

एवं 'मांस' का प्रधान अर्थ 'फलगर्भ' भी है।

(३) "नपुंसकलिङ्ग वाला ही मांस शब्द मांसवाचक है किन्तु पुल्लिंगी मांसशब्द मांसवाचक नहीं है। यहां तो मांसक शब्द पुल्लिंग में ही है। कोई भी भाषा शास्त्री यहां भ्रमित अर्थ न कर बैठे, इस के लीये स्पष्टतया यह पुंल्लिंग प्रयोग किया गया है, फिर कोई यहां मांस अर्थ करने लगे तो यह उसकी मनमानी है।

वास्तव में पुल्लिंग होनेके कारण यहां मांसका अर्थ मांस नहीं किन्तु 'पाक' ही होता है।

भगवती सूत्र के प्राचीन चूर्णीकार और टीकाकारोंने भी "कुक्कुटमांसकं-बीजपुरकं कटाहं" लीखकर मांस का अर्थ 'पाक' ही लिया है।

सारांश—यहां 'मंसए' शब्द 'बीजौरा पाक'का घोतक है।

उक्त मुकम्मील पाठ पर विचार—

यह सारा पाठ दाहज्वर के वनस्पति-औषध का घोतक है।

मूलपाठ इस प्रकार है—

तत्थणं रेवतीए गाहावइणिए मम अट्ठाए दुवे कवोयसरीरा उवक्खडिया, तेहिं नो अट्ठो। अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जार कडए कुक्कुडमंसए, तमाहराहि एएणं अट्ठो।

मर्मको मुर्गी बुद्धिसे सोचा जाय तो इस सम्पूर्ण पाठका अर्थ निम्न प्रकार ही है—

वहां रेवती गाथापत्नीने मेरे निमित्त दो पेठे पका रक्खे हैं,

पे कामके नहीं है। किन्तु उस के वहां दूसरा विदेशपुराणा और विराली वनस्पति की भावनावाला बीजोरा पाक है उस को ले आ, यह कामका है ॥

सारांश—इस पाठ में प्राणीवाचक नाम वाली औषधिका ही स्वरूप वर्णन है। उसे लेनेसे ही भगवानका दाह शान्त हुआ था।

दिगम्बर—पं० कामता प्रसादजी दिगम्बर विद्वान् बताते हैं कि–भ० महावीर स्वामीका निर्वाण विक्रम से ४८८ साल पहिले हुआ है, अतः प्रचलीत 'वीर निर्वाण संवत्'में १८ वर्ष बढाने से वास्तविक वी०नि०सं० आता है, वीरनिर्वाण संवत् यही सच्चा है।

जैन–भगवान् महावीर स्वामीका निर्वाण विक्रम पूर्व ४७० में हुआ है, यह मत इतिहास सिद्ध माना जाता है। इस में १७ वर्ष बढाने से तो 'गोशाल संवत्' हो जाता है, क्योंकि भगवान महावीरस्वामी से करीबन १६॥ साल पूर्व मंखलीपुत्र गोशाल की मृत्यु हुई है, और असल में उसी को ही संतान आजका दिगम्बर सम्प्रदाय है अतः दिगम्बर साहित्य में गोशाल संवत ही कहीं 'वीर संवत्' मानलीया गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वास्तव में तो प्रचलीत 'वीर निर्वाण संवत्' सच्चा है कई दिगम्बर ग्रंथ भी इस मान्यता की ही ताईद करते हैं।

दिगम्बर–भ० महावीर का निर्वाण कार्तिककृष्णा१४की रातके अंतभागमें हुआ है ऐसा दिगम्बर मानते हैं, जो ठीक जचता है।

जैन–भगवान् महावीरस्वामिका निर्वाण कार्तिक कृष्णा अमावास्की रातमें हुआ है, श्वेताम्बर ऐसा मानते हैं, दिगम्बर 'निर्वाण भक्ति श्लोक–१७' में यही बताया गया है और सिद्धक्षेत्र पावापुरीजी में यही माना जाता है। किन्तु पावापुरी तीर्थ शुरूसे ही श्वेताम्बरों के अधीन है अत. हो सकता है कि–दिगम्बर समाजने चतुर्दशीको निर्वाण मनानेका यहांके तीर्थ शुरू किया होगा और बादमें और २ ग्राम वालेने भी १४ को 'छोटा दिवाली' बोलकर निर्वाण मानना जारी कर दिया होगा, मगर यह सच्चा नहीं है। कुछ भी हो। भगवान् महावीर स्वामीका 'निर्वाण' का०कृ० अमावास्को ही हुआ है, और यही सप्रमाण माना जाता है।

दिगम्बर–तीर्थंकर पद पाने के 'दर्शन विशुद्धि' वगेरह '१६ कारण' हैं, किन्तु श्वे०'२० स्थानक' बताते हैं, वो ठीक नहीं है।

जैन—जैसे २२ तीर्थंकरों के शासन के ४ महाव्रत और १ ले २४ वे तीर्थंकरके ५ महाव्रत में वास्तविक फर्क नहीं है, वैसे इस १६ कारण और २० स्थानकमें भी कोई वास्तविक फर्क नहीं हैं, परस्पर समन्वय किया जाय तो दोनों में अभेदता ही पायी जाती है। उन सबका परमार्थ यह एक ही है कि—

जो होवे मुज शक्ति इसी, सवि जीव करुं शासन रसी।
शुचिरस ढलते तिहां बांधता, तीर्थंकर नाम निकाचता ॥१॥

दिगम्बर—दिगम्बर मानते हैं कि सभीतीर्थंकरके ५ कल्याणक होते हैं, मगर कोईर तीर्थंकरके ३ या ४ कल्याणक भी होते हैं।

(पं दौलतरामजी कृत आदिपुराण प० ४७ की वचनीका पृ० १४१ पं० सदासुखजीकृत रत्नकरंडश्रावकाचार भाषवचनीका षोडशभावना विवेचन पृ० १४१ पं० परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ कृत चर्चासागर समीक्षा पृ० २४९)

जैन—अब ५ कल्याणक भी अनियत हैं। यदि ५ कल्याणक ही अनियत हैं तब तो तीर्थंकर पद पानेके कारण स्वप्न इन्द्र इन्द्रका वाहन और अतिशय वगैरह भी अनियत हो जाते हैं। इस हालतमें तो कारण १६ हैं या २०, स्वप्न १६ हैं या १४, इन्द्र १०० आते हैं या ६४, इन्द्रका वाहन ऐरावण है या पालक, जन्म के अतिशय १० है या ७ इत्यादि चर्चा ही बेकार हो जाती है। आश्चर्य की बात है कि-तीर्थंकर तो होवे मगर उनके च्यवन आदिका पता भी न चले, देव-देवीयों जन्मोत्सव भी न करे, एवं कई कल्याण भी न मनाये जायें, इसे तो विवेकी दिगम्बर भी शायद ही सत्य मान सकते हैं।

दिगम्बर शास्त्र तो महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकर व उन की संख्या को नियत रूपमें ही जाहिर करते हैं। जैसा कि—

तित्थ ऽद्ध सयलचक्की, सट्ठिसयं पुह वरेण अवरेण।
वीसं वीसं सयले, खेत्ते सत्तरिसयं वरदो ॥६८१॥

(नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती कृत त्रिलोकसार)

(सिद्धांत सार, चर्चा समीक्षा पृ० ८१)

महानुभाव! तीर्थंकरपदका तो तीसरे भवमें ही नियत हो जाता है, उनके ५ कल्याणक अवश्य होते हैं व अवश्य मनाये जाते हैं।

आश्चर्य अधिकारः

दिगम्बर—अब जो अवसर्पिणीकाल चल रहा है वह ज्यादा खराब है, अतः यह "हुंड अवसर्पिणी" काल माना जाता है और इसीमें कई 'अघटन घटनाएँ' बनी हैं। उसके लीये लीखा है कि—

उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य-संख्यातेषु गतेष्वपि।
हुंडावसर्पिणी कालः, इहायाति न चान्यथा ॥७१॥
उपसर्गा जिनेन्द्राणां, मानभंगश्च चक्रिणाम्।
कुदेव-मठ-मूर्त्याद्याः, कुशास्त्राणि अनेकशः ॥७६॥

(सिद्धांत प्रदीप)

माने असंख्यात सर्पिणीकाल से जो एक सी व्यवस्था चली आती है, उसमें कभी कुछ नैमित्तिक फरक पड़ता है और कोई विचित्र किन्तु दोषदार और हास्य बात बन जाती है उसे "अघटन-घटना" कहते हैं। इसीका ही दूसरा नाम 'आश्चर्य' याने 'अच्छेरा' है।

(सिद्धान्तसार त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति पार्श्वनाथ पुराण हिन्दी)

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों अपने २ हिसाब से अलग २ आश्चर्य मानते हैं, और एक दूसरे के आश्चर्य को सर्व साधारण घटना या कल्पना के रूपमें जाहिर करते हैं। मुझे तो इस विषय में दिगम्बर अधिक सच्चे हों, ऐसा प्रतीत होता है।

जैन—आप प्रथम दिगम्बर के और बाद में श्वेताम्बर के सब आश्चर्यों को अलग २ करके लीखिये, कि इस विषय में भी सत्यासत्य का निर्णय हो जाय।

दिगम्बर—दिगम्बर मानते हैं कि (१) सब तीर्थंकरों का जन्म अयोध्या नगरमें ही होना चाहिये किन्तु श्री पार्श्वनाथजी नेमनाथजी वर्धमान स्वामी वगैरह तीर्थंकरोंने भद्दिलपुर द्वारिका कुंडपुर वगैरह शहरोंमें जन्म लीया, यह प्रथम आश्चर्य है।

जैन–तीर्थंकर भगवान् आर्यभूमि में जन्म पावे यह तो ठीक बात है, किन्तु आगे बढ़करके अमुक स्थानमें ही जन्म पावे ऐसा छोटा दायरा मान लेना यही वास्तव में आश्चर्य है। यदि अयोध्या नगर में ही तीर्थंकरों का जन्म होना चाहिए यह अनादि नियम होता तो वहाँ ही चारों कल्याणक होने के कारण उस नगरका वास्तविक नाम 'कल्याणक नगर' ही होता, या यह नगर 'शाश्वत' ही होता और चक्रवर्ती वासुदेव आदि के लीये भी वही जन्म-भूमि रहता ॥१॥

दिगम्बर–दिगम्बर मानते हैं कि-(२) तीर्थंकरों को संतान हो तो 'पुत्र' ही होना चाहिये पुत्री नहीं होनी चाहिये। किन्तु भगवान् ऋषभदेव को ब्राह्मी सुंदरी ये पुत्रीयाँ हुई, यह दूसरा आश्चर्य है।

जैन–तीर्थंकर चक्रवर्ती होकर बादमें भी तीर्थंकर हो सकते हैं, इस हालतमें उन चक्री-तीर्थंकरोंको दिगम्बर हिसाब से ९६००० रानीयाँ होती हैं, यह कैसे माना जाय कि इन सब को कोई भी पुत्री नहीं होती है? क्या इन सबकी ऐसी ही तकदीर बनी होगी?। वास्तव में स्त्रीमोक्ष के खिलाफ में स्त्री जातिकी लघुता बताने के लीये ही यह घटना 'अघट' बन गई है ॥२॥

दिगम्बर–पुत्री की शादी करते समय पिता दामादको नमस्कार करता है, यही परिस्थीति तीर्थंकर की भी होवे, अतः तीर्थंकरके पुत्री होना उचित नहीं है।

जैन–श्वसुरजी दामादको नमें यह नियम न अनादि है, न शास्त्रोक्त है, न जैन विवाहविधि कथित है, न व्यापक है, और न सर्वत्र प्रचलित है।

कभी कोनी समाज में ऐसा व्यवहार चलता भी हो तो उसके आधार पर तीर्थंकरके लीये भी दामादको नमने का करार दे देना, यह तो एक वचार मात्र है। भूलना नहीं चाहिये कि कई समाज में तो ससुरजी व सासुजी पिता व माता के समान माने जाते हैं।

दिगम्बर-दिगम्बर मानते हैं कि (३) तीर्थंकर भगवान् को छद्मस्थ दशामें अपना अवधिज्ञान प्रकाशित करना नहीं चाहिये। किन्तु भगवान् ऋषभदेव ने वैसा किया, यह तिसरा आश्चर्य है।

जैन–तीर्थंकर ये लोकोत्तर पुरुष हैं, वे नफा नुकसान को सोचकर सब काम को करते हैं, परोपकार बुद्धिसे आवश्यकताके अनुसार गृहस्थपने में नीति की शिक्षा देते हैं, वार्षिक दान देते हैं और सर्वज्ञ होने के बाद धर्मोपदेश देते हैं दर्शन ज्ञान व चारित्र का दान करते हैं, इत्यादि सब काम करते हैं। फिर वे उपकार के लीहाज से अवधिज्ञान को प्रकाशे तो उसमें आश्चर्य ही क्या है? ॥३॥

दिगम्बर–दिगम्बर मानते हैं कि-(४) तीर्थंकर भगवान् को उपसर्ग होना नहीं चाहिये, किन्तु भगवान् पार्श्वनाथ को छद्मस्थ दशामें कमठद्वारा उपसर्ग हुआ, यह चौथा आश्चर्य है।

जैन–तीर्थंकरों को जन्म से होनेवाले १० अतिशयोंमें ऐसा कोई अतिशय नहीं है कि जिसके द्वारा उपसर्ग का अभाव मान लीया जाय।

इसके विरुद्धमें दिगम्बर शास्त्र केवलज्ञान होनेके पश्चात ही तीर्थंकरको ",(१५) उपसर्गाभाव" अतिशय उत्पन्न होनेका बताते हैं, इससे भी 'सर्वज्ञ होनेसे पहिले तीर्थंकर भगवान् को उपसर्ग हो सके,' यह बात स्वयं सिद्ध हो जाती है।

इसके अलावा "एकादश जिने" सूत्र से तो केवली भगवान् को भी "वध" परिषह विशेषह का होना स्वाभाविक है, तो फिर छद्मस्थ तीर्थंकर को उपसर्ग नहीं होना चाहिये यह कैसे माना जाय?। उपसर्ग भी कर्मक्षय का साधन है। वास्तव में केवली को भी उपसर्ग हो सकता है और तीर्थंकर को भी उपसर्ग हो सकता है।

हाँ, यह संभवित है कि "जो क्रोडो देवो से पूजित है और जीन का नाम लेने मात्रसे ही अन्यो के उपसर्ग दूर हो जाते हैं ऐसे केवली-तीर्थंकरको उपसर्ग नहीं होना चाहिये"। फिर भी इनको उपसर्ग होवे तो, उस घटना को आश्चर्य में शामील कर देना चाहिये ।४॥

दिगम्बर–दिगम्बर मानते हैं कि-(५) सब तीर्थंकरों का मोक्ष 'सम्मेतशिखर पहाड़' परसे ही होना चाहिये किन्तु श्री ऋषभदेव भगवान् कोटर ४ तीर्थंकरोंने अष्टापद पर्वत कोटर ४ शिखर स्थानों से मोक्षगमन किया, यह पांचवा आश्चर्य है।

जैन–सब तीर्थंकर भगवान् 'सम्मेतशिखर' से ही मोक्ष पावे, यह अनादि नियम होता तो उस पहाड़का वास्तविक नाम ही "जिनमुक्तिगिरि" होना चाहिये था। इतना ही क्यों! सिद्धशिला में भी उसके उपरका भाग 'जिनेन्द्रसिद्धशिला" ख्यात होना चाहिये था, मगर ऐसा कुछ है नहीं अतः तीर्थंकरोका अमुक सीमीत स्थान से ही मोक्ष मान लेना, वास्तव में यही आश्चर्य है ॥४॥

दिगम्बर–दिगम्बर मानते हैं कि–(६) चक्रवर्तिओं का 'मान भंग' नहीं होना चाहिये, किन्तु भरतचक्रवर्तिका बाहुबली के द्वारा 'मानभंग' हुआ, यह छठ्ठा आश्चर्य है।

जैन–चक्रवर्ति जन्म से चक्रवर्ति होता नहीं है, मगर अभिषेक होने के बाद ही वह चक्रवर्ति माना जाता है। मगर अभिषेक होने के बाद चक्रवर्ति का मानभंग होवे तो यहां आश्चर्य का अवकाश भी है, किन्तु उसके पहिले भावि-चक्रवर्ति को कुछ भी सहना पड़े या शत्रुओ से लड़ना पडे तो उसमें आश्चर्य किस बातका? ।

दूसरे २ शलाका पुरुषो के भी वैसे ही दृष्टान्त मीलते हैं। देखिए—

भगवान् पार्श्वनाथ को सर्वज्ञ होने से पहिले उपसर्ग हुआ।

ब्रह्मदत्त को चक्रवर्त्ति होनेसे पहिले अपने जीवको बचानेके लीये भागना पड़ा।

कृष्णवासुदेव को वासुदेव होने से पहिले जरासंघ के भय से मथुरा छोड़कर द्वारिका जाना पड़ा।

कृष्णवासुदेव को भगवान् नेमिनाथ से हार माननी पड़ी, माने मानभंग हुआ।

राज्य छोड़कर नीकले हुए चक्रवर्त्ति मुनि को परिषह और उपसर्ग भी होते हैं। चक्रवर्ति तो मरकर नरक में भी जाता है।

सारांश—चक्रवर्ति होने से पहिले भरत का चक्रवर्ती पद और मानभंग मानना ही फजूल है ॥६॥

दिगम्बर–दिगम्बर मानते हैं कि·(७) वासुदेव की मृत्यु भाई के हाथ से होनी नहीं चाहिये, किन्तु 'जरत्कुमार' के हाथसे वासुदेवजी की मृत्यु हुई, यह सातवां आश्चर्य है।

जैन–इस असार संसार में पुत्र पिता को, पिता पुत्र को, पति पत्नी को, पत्नी पति को, माता पुत्र को और भाई भाई को मारते हैं, पूर्व कर्म के कारण ऐसा बनता है, तो इसमें आश्चर्य भी क्या है? । राज कुटुम्बो में तो भाईको भाई ही मारे यह तो सहज बात मानी जाती है। यह भी माना जाता है कि 'जिसको कोई न पहोंचे उसको पेट पहोंचे' माने–दूसरेसे अजेय व्यक्तिको समता उसका भाई या पुत्र ही कर सकता है। भरत चक्रवर्तिके सामने गुडा टेकने वाला बाहुबलजी भी उसका भाई ही था, यह आम बात है।

फिर भी इनका मामला तो दूसरा ही है। पूर्वकर्म के कारण वासुदेव की मृत्यु भाई के हाथ से होनेवाली थी, जराकुमारने भी इस कातिल पापसे बचने के लीये पुरी कोशिश की बनमें वास भी किया, किन्तु होनहार मीटती नहीं है। जराकुमारने हरिण के भ्रमसे बाण मारा, और उसी ही बाण प्रहारसे वासुदेव की मृत्यु हुई। यहां न द्वेष था न युद्ध हुआ मगर भावी भाव बलवान है; आयुःकर्म के समाप्त होने पर मृत्यु हुई है किन्तु उस मृत्यु का निमित्तकारण 'जराकुमार' ही है।

दिगम्बर–६३ शलाका पुरुष को उत्तम देह के हिसाब से 'अनपवर्त्य' आयुष्य होता है, वे दूसरे के हाथसे कैसे मरे?।

जैन–अनपवर्त्य आयुवाले जीव आयु के पुरे होने से पहिले मरते नहीं है, वे आयु के पुरे होने पर ही मरते हैं। मगर भूलना नहीं चाहिये कि उनकी मृत्यु जिस २ निमित्त से होनेवाली है उस २ निमित्तसे ही होती है। शलाका पुरुष भी इस चुंगल से पर नहीं है। दृष्टान्त भी मीलते हैं कि–सुभूम चक्रवर्ती पानीसे मरा, सब प्रतिवासुदेव वासुदेव के शस्त्रप्रहारसे ही मरे, इत्यादि९।

दिगम्बर–दिगम्बर मानते हैं कि–२४ तीर्थंकर १२ चक्रवर्ती ९ वासुदेव ९ प्रतिवासुदेव और ९ बलदेव ये ६३ 'शलाकापुरुष' हैं। और ६३ शलाकापुरुष ९ नारद ११ रुद्र २४ कामदेव १४ कुलकर २४ जिनेन्द्रपिता और २४ जिनमाता ये १६९ 'पुण्य पुरुष' कहलाते हैं।

(पं० मूलचन्दजी संग्रहीत जैन सिद्धान्त संग्रह पृ० १४)

यहां (८) ६३ जीव ही ६३ शलाका पुरुष होना चाहिये, किन्तु शान्तिनाथ कुंथुनाथ व अरनाथ अंतिम भवमें चक्रवर्ति हुए और तीर्थंकर भी हुए, श्री महावीर स्वामी एक भवमें वासुदेव बने और अंतिम भवमें तीर्थंकर भी बने, इस प्रकार ५९ जीव ६३ शलाका पुरुष हुए, यह आठवां आश्चर्य है।

जैन—एक जीव एक भव में या अनेक भव में अनेक पदवीओं को प्राप्त करे, उसकी मना तो है नहीं। दिगम्बर शास्त्रों में श्री शांतिनाथ कुंथुनाथ और अरनाथजी 'चक्रवर्ति' और 'तीर्थंकर'ही नहीं किन्तु 'कामदेव'भी माने गये हैं। इस हालत में जीवों की संख्या कम रहे यह स्वाभाविक है।

तीर्थंकर के लीये यह भी कोई कानून नहीं है कि-वे ब्रह्मचारी ही हो या गृहस्थी हो, एवं कुमार ही हो, राजा ही हो, या चक्रवर्ति ही हो। अत एव वे चक्रवर्त्ति होकर भी तीर्थंकर हो सकते हैं।

धर्म चक्रवर्ति होनेवाला पुरुष राष्ट्रपति भी हो सके, यह तो सहज बात है। फिर तो ६३ जीव ही ६३ शलाका पुरुष बनें यह ना मुमकीन ख्याल है।

दिगम्बर—दिगम्बर मानते हैं कि-(९) नारद और रुद्र नहीं होना चाहिये, किन्तु ९ नारद और ११ रुद्र हुए। यह नौवां आश्चर्य है।

जैन—दिगम्बर समाज एक तरफ तो १६९ पुण्य पुरुषों में ९ नारद और ११ रुद्रको पुण्य पुरुष बताते हैं और दूसरी तरफ उनको अघटन घटना में करार दे देती है। यह क्यों?

पुण्य पुरुष का होना बजा माना जाता है फिर भी उसे बेजा मानना और उस पर आश्चर्य की महोर लगाना, यह तो दूना आश्चर्य है ॥९॥

दिगम्बर—दिगम्बर मानते हैं कि (१०) जैन धर्मका लोपक व मुनि भिक्षा पर भी कर (टेक्स) डालनेवाले कल्की न होना चाहिये, किन्तु हजार२ वर्ष पर ११ 'कल्की'व ठीक बीचर में ११ 'उपकल्की' होंगे (त्रिलोक सार गा० ८५० से ८५७) यह दसवां आश्चर्य है।

जैसा कि—

१ आचार्य कुंदकुंदस्वामी सीमंधर तीर्थंकरको भरत करते हैं।

श्वेताम्बराः स्वामिन्, श्वमतस्थापने रताः।
मिथ्यात्वपोषकाः मान-माया-मात्सर्यसंभृताः ॥२४७॥
जैनग्रन्था न दृश्यन्ते ॥२४८॥

माने—आज जो जिन—आगम विद्यमान हैं वे श्वेताम्बरके ही पोषक हैं, दिगम्बर के पोषक कोई भी जैन शास्त्र विद्यमान नहीं है (२४६ से २४८)।

सिद्धान्तान् प्रकटीचक्रे, पुनः सोऽपि यतीश्वरः ॥३४४॥
आचार्य कुन्दकुन्दस्वामिने नये सिद्धान्त जाहिर किये। पृ० ७०।

इत्यादि सकलान् ग्रन्थान्, चेतकान्त सुधर्मभाक्।
करिष्यति प्रभावार्थं, जिनधर्मस्य धर्मधीः ॥३५२॥

धर्मका विरोध करनेवाले और सद्धर्मको भजनेवाले आचार्य कुन्दकुन्दस्वामीजी, दिगम्बर जैन धर्मको प्रभावनाके लीये उन्हीं सर्वमन्थों का निर्माण करेगा। (३५२, पृ० ८०)

स्वामीजी को ७०० साधु हुए, उन्होंने गीरनार तीर्थ की यात्रा की और श्वेताम्बर गुरुआचार्य से शास्त्रार्थ किया।×(३५७से३३८)

यह शास्त्रार्थ वि० सं० १३६ में श्वेताम्बरो से हुआथा।
(श्लोक १४० से १७९)

सीमंधर जिनेन्द्रस्य, दर्शकः संयताग्रणीः।
नाम्ना श्रीकुंदकुंदो वै जिनधर्म प्रकाशकः ॥६९०॥
आ० कुंदकुंदने जैनधर्म प्रकाशित किया (६९०)

× इस शास्त्रार्थ में आचार्य कुन्दकुन्दको जय नहीं प्राप्त हुआ था—

यहविध बहु विवाद हुओ पण कोई न हारे।
पद्मनदी राय तदा पण एम विचारे॥
शास्त्रवाद नहीं यहा तो मंत्रवाद सुखकारे...... ॥५॥
नेमि जिनेश्वर तणी यक्षिणी गोमुख राणी ॥६॥

(सं. १६१० का० शु० १३ रविवार को कारंजा के श्रीचंद्रप्रभु मंदिरमें दिगम्बर विद्यासागर कृत रास, सूर्यप्रकाश पृ. ८१ से ८४ फूटनोट)।

(आ. नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ति के 'अनागत प्रकाश' के आधार पर विद्वद्वर नेमिचंद्र कृत और म० ज्ञानचंदजी महाराज संपादित 'सूर्यप्रकाश')

२—"जिस समय श्वेताम्बर आम्नाय विशेष होय रही थी। दिगम्बर आम्नायमें कुछ कुछ विक्षेप पड़ गया था।"

"४७० की सालमें धारानगरमें श्रीकुंदकुंद मुनिराज थे।"

"वे विदेह क्षेत्रमें जाय पहुंचे"

"ग्रन्थोंके नाम ये हैं—मतांतर निर्णय ८४०००, सर्व शास्त्र ८२००० कर्मप्रकाश ७२०००, न्यायप्रकाश ६२०००, ऐसे चार ग्रन्थ लेकर भगवानसु आज्ञा मांगी"।

"लाखों प्राणियोंने श्वेताम्बर धर्म छुडाय दिगम्बर किये। धर्ममार्ग प्रवर्तायो"॥

"कुन्दकुन्दस्वामीके संघमें ५९४ मुनियोंकी संख्या दी गई"। माने—आचार्य कुन्दकुन्द ने धर्ममार्ग बताया।

(एलक पन्नालालजी दिगम्बर जैन सरस्वती भुवन-बम्बईका गुटका सूर्यप्रकाश श्लो० १५१ की फूटनोट पृ० ४१ से ४०)

३ तेन मण्डपदुर्गे श्रीवसन्तकीर्ति स्वामिना चर्यादिवेलायां तट्टीसादरादिकेन शरीरमाच्छाद्य चर्यादिकं कृत्वा पुनस्तन्मुञ्चन्तीत्युपदेशः कृतः।

इस समयसे दिगम्बर मुनिधर्मका विच्छेद हुआ और भट्टारकों का प्रारम्भ हुआ।

(दर्शनप्राभृत गा० २४ की श्रुतसागरी टीका पृ० २१)

धारमें आचार्य शान्तिसागरसूरिजीने दिगम्बर मुनि मार्गका पुनर्विधान किया है।

४ तेरहपंथी मानते हैं कि—

पञ्चमकाले किल मुनयो न वर्तन्ते।

इस पांचवे आरेमें दिगम्बर मुनि है नहीं।

(दर्शनप्राभृत गा० १ की श्रुतसागरी टीका)

जिनवाणी का विच्छेद होने पर चारो संघ की कोई किमत ...ी है एवं मुनिधर्म का विच्छेद होने पर भी औरर संघ की ...क. किमत नहीं है। वास्तवमें इसीका नाम ही 'धर्मविच्छेद'

"वर्त्तमान में कहीं कहीं एकसो बीस वर्षसे भी अधिक आयु सुनने में आती है, सो हुंडावसर्पिणी के निमित्तसे है। इस हुंडा कालमें कई बातें विशेष होती हैं। जैसे चक्रवर्तिका अपमान तीर्थंकर के पुत्रीका जन्म और शलाका पुरुषों की संख्यामें हानि।'
(जैन आचार्य भा० १ पृ० ११)

माने–यह भी एक आश्चर्य घटना है।

जैन–महानुभाव! जो जो अटल नियम है इसमें विशेषता होनेसे 'अघटन घटना' मानी जाती है। किन्तु ऐसी २ साधारण बातो में अघटन घटना नहीं मानी जाती है।

इसके अलावा जिसके जीमें आया वह किसीको भी अघटन घटना का करार दे देवे, यह भी किसी भी सम्प्रदाय को इष्ट नहीं है। वास्तव में प्राचीन शास्त्र निर्माता जिसे आश्चर्य रूप बता गये हैं उसे ही आश्चर्य मानना चाहिये।

दिगम्बर–दिगम्बर शास्त्र में भी १० आश्चर्य बताये हैं किन्तु जहां तर्क का उत्तर नहीं पाया जाता है इसे भी हम आश्चर्य में शामिल कर देते हैं, इस हिसाब से उपर की बात आश्चर्य में शामील हो जाती है।

जैन–इस प्रकार तो और २ भी अनेक बातें दिगम्बर मत में आश्चर्यरूप मानी जायगी। जैसा कि

१ किंग एडवर्ड कॉलेज–अमरावती के प्रो॰ श्रीयुत हीरालालजी (दिगम्बर-जैन) लिखते हैं कि दिगम्बर जैन ग्रन्थों के अनुसार भद्रबाहु का आचार्यपद वी॰ नि॰ सं॰ १३३ से १६२ तक २९ वर्ष रहा, प्रचलित वी॰ नि॰ संवत के अनुसार इस्वी पूर्व ३९४ से ३६५ तक पड़ता है, तथा इतिहासानुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्य इस्वी पूर्व ३२१ से २९८ तक माना जाता है। इस प्रकार भद्रबाहु और चंद्रगुप्त के कालमें ६७ वर्षोंका अन्तर पड़ता है।

([illegible] जैन [illegible]–जैन [illegible] [illegible] पृ॰ ११, १०, ११)

दिगम्बर विद्वानो के मतसे भी भद्रबाहुस्वामी व सम्राट् चंद्रगुप्त समकालीन नहीं है पर भी दिगम्बर समाज में वे दोनों एककालीन माने जाते है। यह भी आश्चर्य है।

२ वीरनिर्वाण संवत् ६८३ में अंग ज्ञान का विच्छेद हुआ है अतः बाद में कोई अंगज्ञानी नहीं होना चाहिये, तो भी बाद के

आचार्य धरसेनजी पूर्वधर माने जाते हैं। यह आश्चर्य है।

इत्यादि २ अनेक बातें खड़ी हो जायगी। अत. मनमानी बातों को आश्चर्य में सामील करना नहीं चाहिये।

मानना पड़ता है कि—

आश्चर्य की मान्यता प्राचीन है, और १० की संख्या भी प्राचीन है, इन दोनों बातें और अपने संप्रदाय की रक्षाको सामने रखकर ही दिगम्बर शास्त्र निर्माताओंने उक्त आश्चर्य व्यवस्थित किये हैं। क्योंकि इनमें कई तो नाम मात्र ही आश्चर्य हैं और कई निराधार हैं। जो वस्तु ऊपर दी हुई विचारणा से स्पष्ट हो जाती है।

दिगम्बर–श्वेताम्बर मान्य आश्चर्य भी ऐसे ही होंगे?।

जैन–उनकी भी परीक्षा कर लेनी चाहिये। आप उसे भी अलग २ करके बोलो।

दिगम्बर–श्वेताम्बर कहते हैं कि-(१) उत्कृष्ट अवगाहनावाले १०८ जीव एक साथ एक समय में सिद्ध नहीं हो सकते हैं, किन्तु १ भगवान् ऋषभदेवजी, उनके भरत सिवाय के ९९ पुत्र, और ८ पौत्र एवं १०८ उत्कृष्ट अवगाहना वाले मुनिजी एक समय में ही सिद्ध बने। यह प्रथम 'अट्ठसय सिद्ध' आश्चर्य है।

जैन–१ समय में उत्कृष्ट अवगाहना वाले १०८ जीव मोक्ष पा सकते नहीं हैं, मगर इन्होंने मोक्ष पाया, अत एव यह 'अघट घटना' है।

दिगम्बर–इसमें आश्चर्य किस बात का? दिगम्बर शास्त्र तो १ समय में १०८ का मोक्ष बनाते हैं। देखिए पाठ—

अवगाहनं द्विविधं, उत्कृष्टजघन्यभेदात्। तत्र उत्कृष्टं पंचधनुःशतानि पंचविंशत्युत्तराणि, जघन्यमर्द्धचतुर्था रत्नयः देशोनाः।

(तत्वार्थ राजवर्तिक पृ० ३६६ श्लोकवार्तिक पृ० ५११)

एकसमये कति सिध्यन्ति? जघन्येनैकः उत्कर्षेणा ऽष्टशतमिति संख्या ऽवगन्तव्या।

(तत्वार्थ राजवर्तिक पृ० ५२९)

माने उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ धनुष्य की और जघन्य अवगाहना कुछ कम ३॥ रत्नी की है, और १ समय में जघन्य से १ व उत्कृष्ट से १०८ जीव मोक्ष में जाते हैं।

इसी प्रकार श्वेताम्बर शास्त्रों में भी उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष्य से अधिक मानी गई है (तत्त्वार्थ भाष्य पृ० ५२) और १ समय में १०८ का मोक्ष बताया है, अत: यहां अघट घटना को अवकाश ही नहीं है।

जैन—जैसे क्षपकश्रेणी वाले पुरुष स्त्री और नपुंसककी संख्या में फर्क माना जाता है (धवला टीका पु० ३ पृ० ४१६ से ४२२) वैसे मोक्ष को पाने वाले उत्कृष्ट मध्यम और जघन्य अवगाहना के जीवों की संख्या में भी फर्क माना जाता है। श्वेताम्बर शास्त्र एक समय में १०८ जीवों का मोक्ष बताते हैं यह सिर्फ मध्यम अवगाहना वाले पुरुषों के लिये है, न कि उत्कृष्ट व जघन्य अवगाहना वाले जीवों के लिये, वे १ समय में उत्कृष्ट अवगाहना वाले १०८ जीवोंके मोक्ष की साफ मना करते हैं। यह बात अवगाहना की तरतमता के कारण ठीक भी है। इस हिसाब के जरिए १ समय में उत्कृष्ट अवगाहना वाले १०८ का मोक्ष होना, आश्चर्यरूप माना जाता है।

दिगम्बर—भगवान् और उनके पुत्र पौत्रों की उम्र में फर्क है तो फिर उन सब की अवगाहना में भी फर्क होगा।

जैन—उत्कृष्ट अवगाहना तो साधारणतया जवानी में ही हो जाती है। देखिए, दिगम्बर आ० श्रुतसागरजी साफ लिखते हैं कि—

यः किल षोडशे वर्षे सप्तहस्तपरिमाणशरीरो भविष्यति 'स गर्भाष्टमे वर्षे अर्धचतुर्थारत्निप्रमाणो भवति'। तस्य च मुक्ति र्भवति मध्ये नाना भेदावगाहनेन सिद्धि र्भवति।

मतलब ७ हाथ की अवगाहना के हिसाब से १६ वें वर्ष में ७ हाथ और ८ वें वर्षमें ३॥ हाथ की अवगाहना होती है उसको मुक्ति होती है।

(तत्त्वार्थसूत्र, अ० १०, सूत्र ९, टीका)

उस समय भगवान ऋषभदेव और बाहुबली की वय में करीबन १ लाख पूर्व का फरक था। अंत और ... को वय में भी फरक था। किन्तु अवगाहनामें फर्क नहीं था वे सब जवान थे या वृद्ध थे, कोई भी बालक नहीं थे। अत: वे उत्कृष्ट अवगाहना

वाले ही थे। फलस्वरूप जैसिये मान लो कि-किसी एक दो की अवगाहना में कुछ फर्क भी हो, किन्तु चौथे आरे के मध्यकालके योग्य मध्यम अवगाहनावाले तो ये नहीं थे अतः ये पूरी अवगाहनावाले माने जाते हैं। इस तरह उत्कृष्ट अवगाहना होने के कारण ही यह 'आश्चर्य' माना जाता है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर कहते हैं कि-(२) श्री सुविधिनाथ के तीर्थकालमें 'असंयति ब्राह्मणो की पूजा' जारी हुई। यह दूसरा "असंयतपूजा" आश्चर्य है।

जैन-इसे तो प्रकारांतसे दिगम्बर शास्त्र भी आश्चर्य मानते हैं। अतः यह ठीक आश्चर्य ही है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर कहते हैं कि (३) भोग भूमि हरिवर्ष क्षेत्र का 'युगल' भरतक्षेत्रमें लाया जाय, वह मरके नरक में जाय और उसकी 'अयुगलिक' संतान परंपरा चले ऐसा बनता नहीं है किन्तु भगवान् शीतलनाथजी के तीर्थकालमें ऐसा प्रसंग बना और उससे "हरिवंश" चला है। यह तिसरा "हरिवंशोत्पत्ति" आश्चर्य है।

जैन-हरिवर्ष वगैरह भोगभूमि का युगलिक भरत का वासीन्दा बने और उसका कर्म भूमिज वंश चले इस बातको तो श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों मना करते हैं। फिर भी यह हुआ, अतः यह 'अघट घटना' ही है।

दिगम्बर-दिगम्बर हरिवंश पुराण में भी हरिवंश की उत्पत्ति बताई है, जो यह है—

"१० वे श्री शीतलनाथ भगवान के तीर्थ में कौशाम्बी में सुमुख राजा था वहां एक शेठ रहता था उसको खुबसुरत शेठानी थी। राजाने एक दिन वसन्तोत्सव में शेठानी को देखा, और वह उस पर मोहित हुआ, शेठानी भी राजा पर मोहित हो गई, राजाकी इच्छानुसार बुद्धिमान मंत्री शेठानी को समझाकर राजमहेल में ले आया। वहां राजा और शेठानीजी प्रेमसे मिले, संभोग किया और राजाने शेठानी को 'पटरानी' बनाई। इन दोनोंने दिगम्बर मुनि को दान दिया और उसके द्वारा बहोत पुण्य उपार्जित किया। एक दिन बीजली गीरने से ये दोनों एक साथ

मर गये, और मुनि दान के प्रभाव से दूसरे भव में विद्याधरोंके पुत्र-पुत्री बने। यहां भी इन दोनों का एक दूसरे से व्याह हुआ और राजा रानी बनकर आनन्द सुख भोगने लगे।

इधर कौशाम्बी का सेठजी सेठानी के वियोग से तड़पता रहा और आखीर में दिगम्बर मुनि बन गया, वह मरकर देव बना और अनेक देवांगना से भोग भोगने लगा। उसने एक दिन अवधिज्ञान से विद्याधर के वैभव में राजा और सेठानी को देखा, देखते ही उसे गुस्सा आया। उसने पूर्वभवके वैरका बदला लेने के लीये इन विद्याधरों को धमकाकर उठाकर भरतार्ध के चंपा नगर में ला पटके। और यहां के राजा-रानी बनाये। इनको हरि नामका लड़का हुआ, जिसकी संतान-परंपरा चली, वही 'हरिवंश' है।"

यह हरिवंशपुराण में कहा हुआ "हरिवंश" का इतिहास है। मगर इसे आश्चर्य माना नहीं है।

जैन-श्वेताम्बर और दिगम्बर में साहित्य निर्माण के भेद के कारण इस कथा में भी भेद पड़ गया है। श्वेताम्बर शास्त्र में हरिवंश की उत्पत्ति इस प्रकार है।—

"एक राजाने कौसी शालापति की खूबसूरत पत्नी वनमाला को उठाकर अपने अंतःपुर में रख ली, शालापति पत्नी के वियोग से पागल बन गया, एक दिन उसे देखकर राजा और वनमाला 'हमने यह बड़ा भारी पाप किया है' ऐसा पश्चात्ताप करने लगे और उसी समय वे बीजली से मरकर हरिवर्ष क्षेत्र में युगलिक रूप में उत्पन्न हुए।

इधर शालापति भी इनकी मृत्यु देखकर 'इन पापीओं को पाप का फल मिला' ऐसा सोच के ही अच्छा हो गया और साधु बनकर मरकर व्यंतर हुआ। वह इन्हें अवधिज्ञान से देखकर विचार करने लगा कि-अरे ये पूर्वभव में सुखी थे हाल युगलिक रूप से सुखी है और मरकर देव ही होयगे यहां भी सुखी होयगे मगर ये मेरे पूर्वभवके शत्रु है अतः इनको दुःखी और दुर्गति के भागी बनाना चाहिये। ऐसा सोचकर व्यंतरने अपनी शक्ति से इनको छोटे शरीरवाले बनाकर यहां ला रक्खे, राज्य दिया और सातों कुव्यसन सिखलाये। वे भी पाप में मग्न रह कर मर गये और नरकमें गये। इनकी संतान परंपरा चली, वही 'हरिवंश' है।"

यदि विद्याधर से वंश चलता तो इस में आश्चर्य की कोई बात नहीं थी क्यों कि भूचर और विद्याधरों का सम्बन्ध तो होता ही रहता है इतना ही क्यों ? दिगम्बर शास्त्र तो जम्बूद्वीप और धातकी खंड में भी आपसी वैवाहिक सम्बन्ध मानते हैं, वहां काल देहमान और आयुष्य आदि की समता होने के कारण आश्चर्य को अवकाश नहीं है। मगर यहां तो मामला ही दूसरा है, भोगभूमि और कर्मभूमि का ही भेद है, साथ साथ में आरा अवगाहना और आयुष्य का भी फर्क है। इस फर्क को हटा देना यही तो 'अघटन घटना' है।

यह घटना भी सच्ची है। इस में साम्प्रदायिक पुष्टि की कोई बात नहीं है कि-ऐसी कल्पित घटना खड़ी करनी पड़े और इसे आश्चर्य का मुलम्मा भी चढ़ाना पड़े।

दिगम्बर-देव करामत तो अजीब होती ही है। अतः देवके द्वारा बने हुए कार्य को कल्पना मानना निरर्थक है मगर यह तो बताओ कि इस में आश्चर्य क्या है !।

जैन-इस घटना में युगलिकों को यहां ले आना, उनके शरीर को छोटा कर देना, अनपवर्त्य आयुष्य को भी घटा देना युगलिकों का नरक में जाना और उनसे 'कर्म भूमिज वंश' चलाना ये सब आश्चर्य है। "हरिवंश कुलोत्पत्ति" शब्द से ये सब आश्चर्य लीये जाते हैं।

दिगम्बर-श्वेताम्बर कहते हैं कि-(४) स्त्री केवलीनी होकर मोक्षमें जा सकती है सिर्फ तीर्थंकरी बनता नहीं है, किन्तु मिथिला नगरी के कुंभ राजा की पुत्री मल्लीकुमारी मनःपर्यव ज्ञानी व केवलीनी होकर और १९ वे तीर्थंकर बनकर मोक्ष में गई और उसका शासन चला। यह चौथा "स्त्री तीर्थ" आश्चर्य है।

जैन-"पज्जत्ते विय" (गो० कर्म० गा० ३००) व "मणुसिणि ए" (गा० ३०१) से स्पष्ट है कि पुरुष को कभी स्त्रीवेद का उदय होता नहीं है एवं स्त्री को कभी पुरुषवेद का उदय होता नहीं है, और "थी-पुरिस०" (गो० कर्म० गा० ३८८) व "अव-गयवेदे मणुसिणी०" (गो० जीव० ७१४) से निश्चित है कि स्त्री मोक्ष में जाती है, किन्तु तीर्थंकरी बनती नहीं है, इत्यादि तो

दिगम्बर भी मानते हैं। फिर भी 'मल्लीकुमारी' तीर्थंकरी हुई अतः यह 'अघट घटना' है।

दिगम्बर—क्या दिगम्बर शास्त्र भी स्त्रीके तीर्थंकर पद की साफ२ मना करते हैं?

जैन—हां जी, दिगम्बर शास्त्र भी साधारणतया स्त्रीको "तीर्थंकर नामकर्म" का उदय मानते नहीं हैं। देखिए प्रमाण—

मणुसिणिए त्थी सहिदा, तित्थयरा हार पुरिस–संढूणा।

मनुषीणी को तीर्थंकर, आहारक द्वय, पुरुषवेद और नपुंसक वेदका कभी भी उदय होता नहीं है।

सारांश—पर्याप्त मनुषीणी को कभी भी १-अपर्याप्त नामकर्म का उदय नहीं है, २-तेरहवे गुणस्थान में जाने पर तीर्थंकर नाम प्रकृति का उदय नहीं है। ३-४-प्रमत्तसंयत गुणस्थान में जाने पर भी आहार द्विक का उदय नहीं है। ५-नौवे गुणस्थान तक पुरुष वेद का उदय नहीं और ६-नौवे गुणस्थान तक नपुंसक वेद का उदय नहीं है। पर्याप्त स्त्रीको इन ६ प्रकृति को छोड़कर शेष ९६ प्रकृति का उदय होता है।

(दिगम्बर आचार्य नेमिचन्द्रजी कृत गोम्मटसार कर्मकांड गा. [illegible])

साफ निरूपण है कि स्त्री मोक्ष में जाय मगर तीर्थंकर न बने।

दिगम्बर—दिगम्बर इसे इस रूपमें क्यों मानते नहीं हैं?।

जैन—उन्होंने दिगम्बरत्व को पुष्ट करनेके लिये वस्त्र की मना की, साथ साथ में स्त्री मोक्षकी भी मना की। इस परिस्थिति में वे 'तीर्थंकरी'को व इस आश्चर्य को तो माने ही कैसे?। फिर भी गोम्मटसारमें उपरोक्त वस्तु सुरक्षित है यह भी खुशीकी बात है

दिगम्बर—तीर्थंकरीके स्त्री अंगोपांग दीख पड़ते होंगे।

जैन—वास्तव में तीर्थंकरी सवस्त्र ही होती है फिर भी जैसे सब तीर्थंकर की नग्नता दीख पड़ती नहीं है वैसे तीर्थंकरीके अंगोपांग भी दीख पड़ते नहीं है।

दिगम्बर—यदि मल्लिनाथजी तीर्थंकरी थे, तो आपके लीये

समुद्र के किनारे आकर शंख बजाया, इस प्रकार दोनों के शंख शब्द मीले। यह पांचवा "अपरकंका गमन" आश्चर्य है।

जैन—तीर्थंकर चक्रवर्ति, बलदेव व वासुदेव दूसरे क्षेत्र में आवे और क्रमशः दूसरे तीर्थंकर आदिसे मीले इत्यादि बातें दिगम्बर भी मना करते हैं, फिर कृष्ण वासुदेव धातकी खंड में गये यह 'अघट घटना' है ही।

दिगम्बर—समुद्र के जलको हटाना, उसमें तो कोई आश्चर्य है नहीं, दिगम्बर शास्त्र में इस विषय की और भी नजीरें मीलती हैं। देखिए—

(१) गंगादेवीने भरत चक्रवर्ती का सत्कार किया, और भरत चक्रवर्तीने रथ द्वारा समुद्रके जलमार्ग में गमन किया।

(२) देवने समुद्र को हटा कर कृष्ण के लीये द्वारिका नगरी बनाई।

दिगम्बरी पद्मपुराण में तो वाली के पातालगमन तक का उल्लेख है तो फिर धातकी खंड में जाना कोई विशेष बात नहीं है।

द्रौपदीका हरण और उसे वापिस लाना, और कीसी राजाका पराजय करना उसमें भी कोई आश्चर्य नहीं है।

जैन—यहां वासुदेव का ही दूसरे वासुदेव के क्षेत्र में आना, और दो वासुदेवों का शरीर से नहीं किन्तु शंख शब्द से मीलना यही आश्चर्य माना जाता है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर कहते हैं कि (६) तीर्थंकर उग्रकुल भोगकुल राजन्यकुल इक्ष्वाकुकुल क्षत्रियकुल या हरिवंश में गर्भरूप से आते हैं और जन्म लेते हैं। किन्तु भ० महावीर स्वामी ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवानंदा ब्राह्मणी की कोख में गर्भरूपमें आये, इन्द्रके देवने उनका सिद्धार्थ राजा की त्रिशला रानी की कोख में परावर्तन किया, और भ० महावीर स्वामीने त्रिशला रानी की कोख से जन्म पाया। यह छट्ठा 'गर्भापहार' आश्चर्य है।

जैन—तीर्थंकरों का अयोध्या में राजकुल से ही जन्म, सबके हरिवंश में ही मोक्ष इत्यादि कुछ कुछ नियम दिगम्बर भी मानते हैं, ब्राह्मण की मान्यता तो साधारण है किन्तु गर्भापहार

होना तो खास बात है। अतः भ० महावीर स्वामी ब्राह्मण के कुल में आये यह "अघट घटना" है ही। दिगम्बर शास्त्र कई वर्ष के बाद रचे गये अतः उसमें इस आश्चर्य का जीक्र नहीं है।

दिगम्बर—ऐसा क्यों बना ?

जैन—भगवान् महावीर स्वामीने मरीचि के भव में भरत राजा के वांदने पर तीनों उत्तम पदवीयों के निमित्त कुलका अभिमान किया था, और नीचगोत्र कर्म को बांधा था। देवानंदा ब्राह्मणी के कुल में जन्म लेने का कारण यही कर्म है।

इसी कर्म के उदयसे भ० महावीर स्वामीने कई भवों तक ब्राह्मण कुलमें जन्म पाया है।

मगर इसका सर्वथा क्षय नहीं हुआ, परिणामतः शेष रहा हुआ कर्म आखीर के भव में उदयमें आया, और भगवान महावीर स्वामी का देवानंदा की कोखमें च्यवन हुआ।

दूसरी तरफ एक दौरानी और जेठानी का युगल था, जेठानी ने धोखा बाजी से दौरानी के रत्न चूरया लीये, दानोंमें काफी लड़ाई हुई, कुछ रत्न पीछे दीये गये, इसी समय दौरानीने आवेश में आकर कह दिया कि—'यदि मैं सच्ची हुं और तू जूठी है तो इसका बदला दूसरे भवमें तुझे यही मिलेगा कि-तेरा धन-माल पुत्र सब मेरा हो जाय !' बस ऐसा ही हुआ। दौरानी धर्मिष्ठ थी वह मर करके सिद्धार्थ की रानी बनी, जेठानी मर करके ऋषभदत्तकी पत्नी बनी, और पूर्वभवके लेन-देनके अनुसार देवानंदा का पुत्र देवके द्वारा त्रिशला रानीको मीला। कर्मोकी गति विचित्र है।

दिगम्बर—क्या ब्राह्मणकुल यह नीचगोत्र है ?

जैन—नहीं जी। किन्तु यहां तो मरीचिने जिस कुलका अभिमान किया था उसके मुकाबले में यह उच्चता और नीचता मानी जाती है। वास्तवमें ब्राह्मणकुल यह भीक्षा प्रधानकुल है ब्राह्मण व ब्राह्मण कन्या को भीक्षुक भीक्षुकी बताये की नजीर महाभारत वगैरह में उपलब्ध है इस हिसाब से हरिवंश के मुकाबले में ब्राह्मणकुल उत्तम नहीं है। तीर्थंकर सार्वभौम होते हैं अतः उनका जन्म भीक्षुककुल में होता नहीं है, राजवंश में ही

होता है। तीर्थंकर सिवाय औरों के लीये तो ब्राह्मणकुल भी उच्च कुल है। उस कुल के गणधर हुए हैं कई मोक्ष में भी गये हैं।

दिगम्बर—क्या एक भव में भी गोत्रकर्म बदल जाता है? उच्चगोत्री नीच और नीचगोत्री उच्च बन जाता है?

जैन—दिगम्बर शास्त्र से भी यह सिद्ध है कि-एक ही भव में भी गोत्रकर्म का परावर्त्तन हो जाता है। मोक्ष योग्य शूद्र के अधिकार में (पृ. ८८, ८९) इस विषय के काफी दिगम्बर प्रमाण दिये गये हैं। पाठक वहां से पढ लेवे। गोत्रकर्म बदल जाता है। भगवान् महावीर के गोत्रकर्म बदलने पर ही गर्भका परावर्त्तन हुआ है। गर्भ का परावर्त्तक था इन्द्र के आज्ञांकित 'हरिणगमेषी देव'।

दिगम्बर—देवशक्ति तो अजीब मानी जाती है। दिगम्बर शास्त्र में भी ऐसी अनेक बात हैं। देखिये—

(१) देवने सीताके लीये धधकता हुआ अग्निकुंडको जलका कुंड बना दिया और उसमें कमल भी खील उठे।

(पद्मपुराण)

(२) देवने शूली का ही स्वर्णसिंहासन बना दिया, तलवार कों मोतियन की माला बना दी। (सुदर्शन चरित्र)

(३) देवने काले सर्प की फूल माला बना दी।

(सोमारानी चरित्र)

(४) देवने मुरदेरे निकाले हुए दांत और हड्डिओंको खीर के रूपमें बना दिये, थाली का चक्र के रूप में परावर्त्तन कर दिया।

(पद्मपुराण, परशुराम अधिकार)

(५) मुनिसुव्रत स्वामी का आहार होने पर देवने ऋषभदत्त शेठके घर पर रत्नों की व फूलों की वर्षा की, भोजन अक्षय हो गया, उस भोजन से हजारो आदमी तृप्त हुए।

(हरिवंश पुराण)

(६) जटायु (गीध) एक परिन्दा था। मुनि के दर्शन से वह सोनेका बन गया। और उसके सिरपर रत्न तथा हीरों की जटा निकल आई। इसमें भी देव करामत दिख पड़ती है।

(पद्मपुराण)

इसी प्रकार देवद्वारा गर्भ परावर्त्तन होना तो संभवित है। मगर इस विषय में और भी कई बातें विचारणीय है।

जैन—इस गर्भ परावर्त्तन से तत्कालीन भारतीय विज्ञान कितना विकसित था उसका पता चलता है। गर्भ परावर्त्तन यह कल्पित गप्प नहीं है आजके डॉक्टर भी ऑपरेशन द्वारा गर्भ परावर्त्तन करके आलम को आश्चर्य चकित करते हैं। थोडे ही वर्ष पहिले की बात है कि—

एक अमेरिकन डोक्टरने एक भाटिया ज्ञातिकी गर्भवती जनानाके पेटका ऑपरेशन किया था। शुरूमें डॉक्टरने गर्भवती-बकरी के पेटको चीरकर उसके बच्चेको बीजलीके सन्दूक में रख दिया और जनाना का पेट चीर कर उसके बच्चेको बकरीके गर्भस्थान में रख दिया, बादमें उस जनाना के पेटका ऑपरेशन किया। ऑपरेशन खतम होते ही उस बच्चेको जनानाके पेटमें और बकरीके बच्चेको बकरी के पेटमें पुनः स्थापित कर दिये। दोनोंको टांके लगा दिये और दोनोंको जिन्दे रक्खे। समय होने पर उन दोनोंने अपनेर बच्चेको जन्म दिया।

इस प्रकार नड़ियाद, बोरसद, वगेरह स्थानों में कई करामती ऑपरेशन होते रहते हैं।

आजका यह विज्ञान भी गर्भपरावर्त्तन विषयक सब शंकाओ को रफे दफे करा देता है।

यह भी मार्के की बात है कि-तीसरे महिने का गर्भ पींड-रूप बनकर उठाने योग्य होता है, अतः हरिणगमेषीने भगवान् को ८३ वे दिन त्रिसला के उदर में रखा है। और त्रिसलारानी के उदर में जो कन्या गर्भ था उसे उठाकर देवानंदा के उदरमें ला रक्खा है।*

* जुदा जुदा प्राणीओमां गर्भ विकास काळ जुदो जुदो होय छे. देडकामां पंदर दिवसनो गर्भ विकास काळ होय छे अने देडकानी मादा पाणीमां इंडां मुके त्यारथीज पंदर दीवसमां ते इंडानी अंदर गर्भनो विकास थाय छे अने त्यारे पानी माछली जेवुं इंडपोल जन्मे छे मीनीपीगमां एकवीस दिवसनो गर्भ विकास काळ छे. बतका अने सीसकोली पांत्रीस दीवस, बिलाडीनो पंचावन दीवस, कुतराओ बासठ दीवस, सिंहमां त्रण महिना, हरकरमां चार महिना,

जिनागम में यह भी खुलासा कर दिया है कि-गर्भ को देवानंदा के योनिमार्ग से लिया था और कुछ विरफाड़ करके सीधा त्रिशला के उदर में रक्खा था। यात भी ठीक है कन्या गर्भ की मोजुदगी में भगवान के गर्भ को सीधा उदरमें रखना ही उचित मार्ग था।

इन सब घटनाओं को मद्दे नजर रखकर शोचने से 'गर्भ-परावर्त्तन' विषयक सब विचारणिय बातें हल हो जाती हैं।

दिगम्बर—इस हालत में 'त्रिशला रानी' सती मानी जायें?

जैन—उसके सतीत्वमें कीसी भी प्रकार की बाधा आती नहीं है। कारण? ८३ वे दिन गर्भपरावर्त्तन हुआ उस समय वह गर्भ न वीर्य स्वरूप था न शुक्र स्वरूप था और न प्रवाही द्रव्य था, किन्तु छ पर्याप्तिपूर्ण पांचो इन्द्रियवाला पींड रूप था, और इसमें न पर पुरुषका सेवन हुआ है, न पर वीर्य ग्रहण हुआ है न योनिमार्ग से गर्भ आया है और न स्वेच्छापूर्वक कार्य हुआ है।

ढोरमां छ महिना, गायमां नवमहिना अने दश दीवस, घोडामां अगीआर महिना अने हाथीमां बावीस महिनानो गर्भ विकास काळ होय छे. मनुष्य गर्भनो विकास काळ नव महीना अने दश दीवसनो होय छे.

(गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी अमदावाद प्रकाशित स्व० लालभाई दुलीचंदास शरीफ स्मारकविज्ञान अने इन्डस्ट्रीझ ग्रंथमाळा अं. १, 'जीव विज्ञान' प्र० ४३ गर्भ पोषण प्रकार अने गर्भविकास काल पृ. २७९

जे जातीनो गर्भ होय ते जातीना अंगोनो पूर्ण विकास गर्भमां पोषणथी अमुक काळमां थाय छे. (जुओ गर्भपोषण अने गर्भ विकास काळ) आ काळने गर्भ विकास काळ कहेवामां आवे छे. आ प्रमाणे मनुष्य गर्भनो संपूर्ण विकास १८० दीवसमां थाय छे. मनुष्य गर्भना अंगोनी प्राथमिक रचना तो प्रथम त्रण महिनामां थइ जाय छे परन्तु तेमनी संपुर्ण खिलवट करवा तेमने बराबर मजबूत करवा अने तेमनो पूर्ण विकास साधी मनुष्य शरीरना पूर्ण रंग रूप अने लक्षणो आपवा बीजा छ महीना जोइए छे.

पहेला त्रण महिनामां गर्भने काचो गर्भ एम्बीओ Embeyo कहेवामां आवे छे अने पछीना छ महीनामां तेने पक्व गर्भ एटले फीटस Foetus तरीके ओळखवामां आवे छे.

(जीवविज्ञान पृ० ४४ गर्भ विज्ञान प्र० २८७–२८८)

वास्तवमें देवद्वारा थोर फाड़ पूर्वक सीधा उदरमें ही गर्भ स्थापन हुआ है। इसमें असतीत्व को अवकाश ही नहीं है।

क्या दूसरे के बच्चेको अपनाने से या उसका तबादला करनेसे सतीत्व नहीं रहता है ?

गर्भपरावर्तनमें सतीत्वका विनाश हो वैसी एक भी बात बनती नहीं है, अतः 'त्रिशला रानी' सती ही है।

देवकी के छै छै गर्भों का परावर्तन हुआ है किन्तु देवकीरानी सती ही मानी जाती हैं।

दिगम्बर-इस हालतमें भगवान् महावीर स्वामी कीसके पुत्र माने जायं ?

जैन-गर्भपरावर्तन होने पर या गोद लेने पर बच्चा दोनोंका माना जाता है। इसके दृष्टान्त भी मीलते हैं। जैसे कि—

(१) इन्द्रने हरिणगमेषी द्वारा देवकी रानी के ६ पुत्रों का भद्दिलपुरकी वणिक पुत्री अलकाके ६ पुत्रों से परावर्तन करवाया वे लड़के मुनिजी बनकर मोक्षमें भी गये हैं इन सबके दो दो मातापिता माने जाते हैं।

(हरिवंश पुराण, भा० प्राकृत गा० ४६ की टीका पृ० १७५)

(२) कृष्ण वासुदेवका भी नन्द और यशोदाके यहां परावर्तन हुआ है, अतः वेभी नंदकेलाला, नंददुलारे, यशोदानंदन, वसुदेवपुत्र, देवकीनंदन, यादवराय, इत्यादि नामसे पुकारे जाते हैं।

इसी प्रकार भगवान् महावीर स्वामी भी ऋषभदत्त व देवानंदाके और सिद्धार्थराजा व त्रिशला रानीके पुत्र हैं

भगवान महावीरस्वामीने भगवतीजी सूत्र में ऋषभदत्त और देवानंदाकी जीवनी आलेखित की है और वहीं देवानंदा ब्राह्मणी को अपनी माताके रूपमें जाहिर की है।

वाकई में यह घटना कल्पित होती तो इसे आगममें स्थान नहीं मीलता। और इस घटना में कोई सांप्रदायिक वस्तु तो है नहीं।

दिगम्बर-मान्नीय पूर्वों की वैसी २ घटनायें सुरक्षित रहे यह ठीक नहीं है, अतः इस वरिबाराको आगममें दाखिल नहीं करना चाहिये था, इसे तो साफ उड़ा देना था।

जैन—स्वयं तीर्थंकर भगवानने श्रीमुख से जो फरमाया है उसे उड़ा देना, यह तो भारी अज्ञानता है, सत्यका द्रोह है, महा पाप है। इस घटना के पीछे अनेक सत्य छीपे हुए हैं।

जैसे कि—जगत्कर्तृत्वका निरसन, कर्मकी स्थीति स्थापकता, जीवकर्मका सम्बन्ध, कर्म विपाककी विषमता, बन्ध, मोक्ष, आत्माका विकास, उत्क्रमवाद, अप्पा सो परमप्पा, और जैनदर्शन की सिद्धि वगेरह वगेरह।

दिगम्बर—सुना है कि—खरतरगच्छके आ० जिनदत्तसूरिजी असलमें दिगम्बर हुमड थे, मगर बादमें श्वेताम्बर मुनि बने हैं, वे इस गर्भापहार को कल्याणक भी मानते हैं।

जैन—कीसी अंशमें यह ठीक बात है। आ०जिनवल्लभसूरिजी ने ६ कल्याणककी प्ररूपणा करके 'षट्कल्याणक मत' चलाया है, और आपके ही पट्टधर आ० जिनदत्तसूरिजी ने उसे अपनाकर 'खरतर' मत चलाया है। इस प्रकार आ०जिनदत्तसूरिजी गर्भापहार मानक छठे कल्याणक के स्थापक नहीं किन्तु समर्थक हैं।

यहां वास्तविक सत्य इतना ही है कि—भगवान् महावीर स्वामीका गर्भापहार हुआ है और वह प्रसंग कल्याणक के रूपमें नहीं किन्तु जीवनी की विशेष घटना के रूपमें माना जाता है, इसके अतिरिक्त गर्भापहारको मना करना यह एकांत पक्ष है, और गर्भापहार को कल्याणक मानना यह भी सर्वथा एकांत पक्ष है यूं ये दोनों एकांत पक्ष ही हैं। मगर यहां एक बात स्पष्ट हो जाती है कि—दिगम्बर मत गर्भापहारको मना करता है, अत एव संभवतः दिगम्बर की हैसियत से ही आ० जिनदत्तसूरिजीने गर्भापहार पर ज्यादह जोर दिया है, माने एक खास घटना पर विशेष प्रकाश डाला है।

यहां भ०महावीरस्वामी के नीचगोत्र कर्मका उदय, ब्राह्मणी की कोखमें आना, हरिनैगमेषी के द्वारा गर्भका परावर्तन होना, १४ स्वप्नों का अपहरण और त्रिशला रानी के उदरमें आने के [illegible] अहिंसा [illegible], ये सब इस घटनामें में शामील हैं।

दिगम्बर—श्वेताम्बर कहते हैं कि—(७) [illegible] स्वप्नमें ही आना नहीं है, किन्तु 'पूरण' नामका तापसी [illegible]

'चमरेन्द्र' बना, और उसने ऊपरके सौधर्म देवलोकमें अपने ठीक शिर पर बैठे हुए 'सौधर्मेन्द्र' को वहांसे हटानेके लीए सुसुमार पुरमें खडे२ ध्यान करते हुए भगवान महावीरस्वामी का शरण लेकर प्रथम देवलोकके सौधर्मावतंसक विमानमें प्रवेश किया, और इन्द्र को कोसा। यह सातवां 'चमरोत्पात' आश्चर्य है।

जैन-देव और असुरोंमें स्वाभाविक वैर बना रहता है, अतः यह घटना बनी है।

आ० नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ति भी फरमाते हैं कि—

चमरो सोहम्मेण य, भूदाणंदो य वेणुणा तेसिं।
विदिया बिदिएहिं समं, इसंति सहावदो नियमा ॥२१२॥

चमरेन्द्र सौधर्मेन्द्रसे इर्षा रखता है, भूतानंद वेणुसे इर्षा रखता है और वैरोचन धरणेन्द्र वगेरह असुरेन्द्र ईशानेन्द्र वगेरह देवेन्द्रों से इर्षा रखते हैं, उनका यह वैरभाव स्वाभाविक ही निश्चय से बना रहता है।

(त्रिलोक सार गाथा २१२)

यद्यपि भूवनपति देव इतनी ऊर्ध्वगति करनेकी ताकात रखते हैं मगर वे इतनी ऊर्ध्वगति करते नहीं है, फिर भी यह चमरेन्द्र ऊपर गया अत यह 'अघट घटना' मानी गई है।

इस घटनामें सौधर्मेन्द्र की जिनेन्द्रभक्ति का भी अच्छा परिचय मीलता है। क्योंकि-सौधर्मेन्द्र ने भी चमरेन्द्र को वज्र फेंक कर भगाया सो सही, किन्तु भगवान् महावीर स्वामीके शरण लेने के कारण छोड़ भी दीया।

यहां असुरेन्द्र सोधर्म देवलोकमें गया, यह 'आश्चर्य' माना जाता है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर मानते हैं, कि-(८) तीर्थंकर भगवान का उपदेश निष्फल जाता नहीं है, किन्तु ऋजुवालुका नदीके किनारे पर प्रथम समोसरनमें दिया हुआ भ० महावीर स्वामीका उपदेश सीर्फ देव-देवीओंकी ही पर्षदा होनेके कारण निष्फल गया। यह आठवा 'अभाविता परिषद्' आश्चर्य है।

जैन-दिगम्बर शास्त्र भी इस घटनाकी गवाही प्रकारान्तर

दिगम्बर-श्वेताम्बर मानते हैं कि-(९) तीर्थंकर भगवान् का सर्वज्ञ होने के पश्चात् उपसर्ग होते नहीं है, इतनाही नहीं, उनके नाम लेने वालेके भी उपद्रव शान्त हो जाते हैं। किन्तु भ० महावीर स्वामी को शिष्याभास गोशाल द्वारा उपसर्ग हुआ, पच छै महिने तक असाता वेदनीय का उदय रहा। यह नौवां 'उपसर्ग' आश्चर्य है।

जैन-दिगम्बरशास्त्र छद्मस्थ तीर्थंकर को और खास करके "उपसर्गाभाव" अतिशय द्वारा सर्वज्ञ-तीर्थंकर को सर्वथा उपसर्ग रहित जाहिर करते हैं, और भगवान् पार्श्वनाथ के उपसर्ग को 'आश्चर्य'में दर्ज भी मानते हैं तो फिर सर्वज्ञतीर्थंकर को उपसर्ग होवे यह 'आश्चर्य' है ही।

श्वेताम्बर शास्त्र सिर्फ सर्वज्ञ तीर्थंकर के लिए ही उपसर्ग की मना करते हैं, अत मंखलीगोशाल द्वारा सर्वज्ञ भ० महावीर स्वामी को उपसर्ग हुआ यह अघटघटना मानी जाती है।

इस मंखलीपुत्र गोशाल का जीक्र दिगम्बर शास्त्र में भी मीलता है।

दिगम्बर-केवली भगवान् को असातावेदनीय और पच परिषह होते हैं, फिर उपसर्ग होवे उसमें 'आश्चर्य क्या है?'

जैन-३४ अतिशय होने से तीर्थंकरों को उपसर्ग होता ही नहीं है, अत पच तीर्थंकर को 'उपसर्ग होना' यह आश्चर्य माना जाता है।

यहां मुनि सुनक्षत्र और मुनि सर्वानुभूति की तेजोलेश्या से मृत्यु, भगवान् को उपसर्ग और छै महिने तक पित्तज्वर-दाह का रोग इत्यादि सब इस 'आश्चर्य' में दर्ज है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर मानते हैं कि-(१०) सूर्य और चन्द्र अपने मूल विमान के साथ कभी भी यहां आते नहीं है किन्तु सूर्य और चंद्र अपने मूल विमान के साथ भ० महावीरस्वामी को वंदन करने के लीये कौशाम्बी में आये, यह दसवां 'सूर्य-चन्द्रावतरण' आश्चर्य है।

जैन-इन्द्र वगैरह को यहां आना हो तो वे अपने स्वाभाविक वैक्रिय रूप से नहीं किन्तु उत्तरवैक्रिय रूप से ही यहां आते है।

व्यंतर संगमक वगेरह सामान्य जाति के देव कभी २ यहां मूल देह से भी आ जाते हैं। सूर्य और चंद्र जो ज्योतिषीओं के इन्द्र हैं वे भी मूलवैक्रिय रूप से यहां आते नहीं है और उनके असली विमान भी यहां लाये जाते नहीं है, फिर भी वे अपने मूलरूप से ही अपने असली विमान में बैठकर श्रीजीके पास आये तो वह आश्चर्य रूप है ही।

दिगम्बर–उस समय सारे भरतक्षेत्र में तो अंधेरा छा गया होगा?

जैन–सूर्य और चन्द्रने परिक्रमा और प्रकाश करने के कार्य चालु रक्खे थे, अतः अंधेरा नहीं हुआ था।

दिगम्बर—वे विमान में बैठकर तीर्थंकर के पास आये इसी से धर्म की प्रभावना होती है, मगर वह कार्य तो उनके नकली देहसे नकली विमान में बैठ आने पर भी हो सकता है, तो संभव है कि वे इसी तरह आये होंगे?

जैन—इसी तरह तो वे कई दफे आते जाते हैं और उनमें आश्चर्य भी गीना जाता नहीं है, मगर जब 'अघटन घटना' बनती है तभी उसे 'आश्चर्य' माना जाता है। यहां वे मूल रूप से और असली विमान में आये यह 'विशेषता' है और वही 'आश्चर्य' है, उसमें जैन धर्म की प्रभावना भी विशेष रूप में मानी जाती है।

दिगम्बर–यदि यह घटना वास्तविक होती तो दिगम्बर भी धर्म प्रभावना का अंग मान कर इसे स्वीकार लेता, मगर दिगम्बरोने इसे अपनाया नहीं है, अतः शका होता है कि–यह घटना शायद ही बनी हो।

जैन–दिगम्बर शास्त्र इस घटना को अवश्य ही अपना लेते। मगर इस घटना के पीछे एक ऐसा सत्य छीपा हुआ है कि जो दिगम्बर मान्यता के खीलाफ में है, अत एव दिगम्बरोने अपनाया नहीं है। जो यह है—

सूर्य और चंद्र अपने विमान को लेकर कौशाम्बी के समोसरन में आये उस समय वहां चकाचौंध हो गया था, आर्या मृगावती वगेरह 'अभी तो दिवस है' ऐसे ख्याल से वहां ही बैठे

रहे। उनके विमान के चले जाने पर देखा तो अंधेरा सा ही हो गया था, अतः आर्या मृगावती भी एकदम अपने उपाश्रय में जा पहुंची। उस समय उनकी गुरुणी आर्या चंदनबालाने फरमाया कि-"तुम्हें इतना उपयोग शून्य बनना नहीं चाहिये कि दिवस है या नहीं है उसका पत्ता भी न लगे, इत्यादि" इतना सुनते ही आर्या मृगावती अपनी गलती का पश्चात्ताप करने लगी और उस समय वहां ही उसी ही शुभ भावना के जरिए घातियें कर्मो को हटा कर 'आर्या मृगावती'ने केवल ज्ञान प्राप्त किया। उन्हें केवलीनी देख कर 'आर्या' चंदनबाला'ने भी मैंने केवली की अशातना की ऐसा मानकर उसका पश्चात्ताप करते करते केवलज्ञान पाया। इस प्रकार सूर्य और चंद्र के अवतरण के साथ दो आर्याओं के केवलज्ञान की घटना भी जुड़ी हुई है।

महानुभाव! दिगम्बर समाज स्त्रीमुक्ति की तो मना करता है, फिर वह चंदनबाला और मृगावती के केवलज्ञान और उनके आदि कारण रूप सूर्य चंद्र के अवतरण को अपने शास्त्र में कैसे दाखिल करे! बस इस कारण से ही दिगम्बर शास्त्रोंने इस घटना को अपनाया नहीं है।

यहां सूर्य और चंद्र का मूल विमान के साथ आना और कृत्रिम विमान से ज्योतिर्मंडल का कार्य करना, ये सब आश्चर्य रूप हैं।

दिगम्बर-इन १० उपसर्गों के वास्तविक स्वरूप जानने पर श्वेताम्बर और दिगम्बर में कोन सच्चा है और कोन जूठा है? उसका ठीक ज्ञान हो जाता है।

जैन-जब तो आपने इस विषय में श्वेताम्बर कितने प्रमाणिक है? उसका ठीक निर्णय भी कर लीया होगा। अस्तु।

वाकई में जो सच्चा है वह सदा सच्चा ही रहता है।

दूसरा भाग समाप्त